थैंक यू इंडिया

भारत और तिब्बत

संपादक : विजय क्रान्ति

प्रकाशक : भारत–तिब्बत समन्वय केंद्र
10–एच, दूसरी मंजिल, लाजपत नगर–3, नई दिल्ली–110024, भारत

संपादक : विजय क्रान्ति

प्रिंटर : वि ईन प्रिन्ट्–ओ–पेक, ए–5, एफ एफ सी, ओखला, नई दिल्ली–110020
डिज़ाइन एवं प्रोडक्शन : वी के मीडिया ग्रुप, बी सी 48, पश्चिमी शालीमार बाग, दिल्ली–110088

iFke lLdj.k % 2018

हम इन महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं जिनके व्यक्तिगत समयानुकूल सहयोग के बिना इस पुस्तक का वर्तमान रूप में प्रकाशन संभव न हो पाता। उनका योगदान हमें लेखों के अनुवाद और अन्य प्रकार के मार्गदर्शन और सहयोग के रूप में प्राप्त हुआ :

सुश्री सुनीता गुप्ता
श्री सोनम नोंबू दागपो
श्री नोडुप डोंगछुंग
श्री कर्म दारग्यल

– संपादक

आवरण फोटो : विजय क्रान्ति

विषय सूची

1. इस पुस्तक का संदर्भ : भारत–चीन रिश्ते और तिब्बत – **fot; ØkfUr** 5

निर्वासित तिब्बत

2. खामोश तमाशबीन दुनिया में तिब्बत – **ik- lkenkx fjiksN** 10
3. तिब्बत को भी उसके मानवाधिकार मिलने चाहिएं – **jQhd t dkfj;k** 18
   (सं. राष्ट्र की 1965 की आम सभा में भारतीय प्रतिनिधि का बयान)
4. तिब्बत : संसार का अंतिम उपनिवेश – **fuely oek** 22
5. भारत की चीन नीति कैसी हो? – **Vh- ,u- dky** 25
6. तिब्बत – कैसा होगा भविष्य ? – **ek/kjh lFkkue lk/kh** 30
7. तिब्बत मुक्ति साधना को समर्थन राष्ट्रधर्म की मांग है – **jktho okjk] uh: okjk** 35
8. तिब्बत में जनसंहार का चीनी महिमामंडन कब तक चलता रहेगा ? – **DykM vkih** 41
9. तिब्बत का प्रश्न आज भी अर्थवान है – **j.kthr xlrk**, *पूर्व आईएफएस* 45
10. अज्ञान, उपेक्षा व आशंका का त्रिकोण कब टूटेगा? – **Mk- vkuUn dekj** 50
11. 'वृहत्तर–चीन' का मिथक और अरुणाचल पर चीन का दावा – **ekgu x#Lokeh** 58
12. मैकमहोन रेखा, तिब्बत और भारत – **lunk d- nRrk j** 62
13. एशियाई जल युद्ध से बचना होगा – **cã pykuh** 67
14. निर्मल वर्मा और तिब्बत – **fuely th** से **'kdj 'kj.k** की बातचीत 70
15. तिब्बत का सवाल और कश्मीर एक जैसे सवाल नहीं हैं – **ek/kjh lFkkue lk/kh** 78
16. भय–मुक्त नीतिकी आवश्यकता – **tkt QukMhl** 81
17. तिब्बत में चीन : मार्क्सवाद के दामन पर धब्बा – **lcr e[kth** 85
18. तिब्बत से जुड़ी है हिमालय और भारत की सुरक्षा – **Mk- dynhi pn vfXug¨=h** 88
19- तिब्बत मुक्ति–साधना में एक अनूठा प्रयोग – **dyHk"k.k cD'kh** 91
20. तिब्बती चिकित्सा प्रणाली का समाजशास्त्र – **Mk- eukt dekj flg** 93
21. अहिंसा का संत सिपाही – दलाई लामा – **fot; ØkfUr** 97
22. मेरा शत्रु भी मेरी करुणा का अधिकारी है – **nykbl ykek** 101
23. चीन और तिब्बत में सहयोग जरूरी – **nykbl ykek** 107
    अमेरिका में चीनी छात्रों और बुद्धिजीवियों के सामने दिया गया भाषण
24. चीनी कब्जे में तिब्बत का केवल विनाश हुआ – **nlo ipu ykek** 110

frCcr ij Hkkjrh; urk

25. भारत के प्रति चीन के असली इरादों को समझो – **ljnkj iVy**, *7 नवंबर 1950* 115
26. गूंगी बहरी दुनिया और असहाय तिब्बत – ***ykduk;d*** **t;idk'k ukjk;.k** 120

27. चीन की चुनौती हमें स्वीकार है – **i- tokgj yky ug:** 125
(भारत पर चीनी हमले के बाद लोकसभा में 8 नवंबर, 1962 का वक्तव्य)
28. तिब्बत, चीन और हिंदुस्तान – **Mk- jkeeukgj ykfg;k** 128
2 जनवरी, 1963 को दिल्ली में दिए गए भाषण से
29. दो आखिरी खत : **i- tokgj yky ug:] ykduk;d t;idk'k ukjk;.k** 132
30. भारत को चीन के बजाए तिब्बत सरकार को मान्यता देनी चाहिए थी 134
– **Mk- Hkhejko vkcMdj**
31. तिब्बत में चीन शिशु–हत्या कर रहा है –– **Mk- jke eukgj ykfg;k** 135
32. तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता मानना भारत की भूल – **vVy fcgkjh okt i;h** 136
33. चीन पर भरोसा मत कीजिए – **vkpk;l t ch d iykuh** 139
34. भारत की अखंडता और स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी – **nhu n;ky mik/;k;** 142
35. तिब्बत पर चीनी कब्जा – विश्व की असभ्यता का प्रतीक है – **vkpk;l jtuh'k** 143
36. तिब्बत में न्याय, समाज और संस्कृति के दमन पर 146
vrjk"Vh; fof/koRrk vk;kx की रिपोर्ट (1960)
37. तिब्बत की हालत पर **vrjk"Vh; fof/koRrk vk;kx** की रिपोर्ट (1997) 149

frCcr&phu ckrphr

38. उपनिवेशवाद की 17–सूत्री 'संधि', 23 मई, 1951 का आलेख 157
39. यूरोपीय संसद में दलाई लामा का ऐतिहासिक पांच–सूत्री प्रस्ताव 160
40. 'वास्तविक स्वायत्ता' पर तिब्बती पक्ष का मेमोरेंडम 164
41. तिब्बत का शांतिपूर्ण हल चीन के हित में : 176
यूरोपीय संसद के पूर्ण सत्र को दलाई लामा का संबोधन (ब्रसेल्स, 4 दिसंबर, 2008)

nLrkot

42. तेरहवें दलाई लामा द्वारा तिब्बत की स्वतंत्रता की ऐतिहासिक घोषणा (1913) 182
43. 821–22 ई. में हुई तिब्बत–चीन संधि 184
44. चीनी सेना को तिब्बत से निकालने की संधि – 12 अगस्त 1912 186
45. तिब्बत–मंगोलिया संधि (29 दिसंबर 1912 और 11 जनवरी, 1913) 189
46. मैकमहोन लाइन और शिमला समझौता (3 जुलाई, 1914) 191
47. तिब्बत पर संयुक्त राष्ट्र संघ के तीन प्रस्तावों (1959, 1961, 1965) का सारांश 195

इस पुस्तक का संदर्भ

भारत–चीन रिश्ते और तिब्बत
तिब्बत के मुद्दे को समझे बिना भारत–चीन रिश्तों में शांति संभव नहीं

पिछले सात दशक में एक साल भी ऐसा नहीं गया जब चीन ने भारत के लिए कोई नया सिरदर्द पैदा ना किया हो। दुर्भाग्य से लगभग हर मामले में उसने भारत को परेशान करने के लिए भारत की हिमालयवर्ती सीमा से लगने वाले तिब्बत की धरती का इस्तेमाल किया है। भले ही बात 1962 में चीनी सेना द्वारा भारत पर हमले की हो या फिर 2017 में भूटान के डोकलाम पर कब्जा जमा कर भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों को शेष भारत से काटने की कोशिश की हो। हर बार इस चीनी अक्खड़पन का साझा कारण यह रहा कि 1951 में तिब्बत पर जबरन कब्जा करके चीन भारत की सीमा पर आ धमका है।

तिब्बत पर जबरन कब्जे से ठीक दो साल पहले 1949 में चीन की कम्युनिस्ट सरकार ने एक और पड़ोसी देश पूर्वी तुर्किस्तान को भी जबरन चीन में मिला लिया था। यही काम उसने मंगोलिया के दक्षिणी हिस्से के साथ भी किया। बाद में चीन ने पूर्वी तुर्किस्तान को नया चीनी नाम 'शिंजियांग' दे दिया। चीन की इन उपनिवेशवादी हरकतों का नतीजा यह हुआ कि इतिहास में पहली बार भारत–तिब्बत सीमा 'भारत–चीन' सीमा में बदल गई। तिब्बत पर कब्जा करते ही चीन की सीमाएं भारत, भूटान, नेपाल और पाकिस्तान के साथ आ लगीं। दूसरी ओर पूर्वी तुर्किस्तान पर उसके कब्जे ने अफगानिस्तान तथा तत्कालीन सोवियत संघ के ताजिकिस्तान, किरगिज़स्तान और कज़ाखस्तान को भी चीन के आमने सामने ला खड़ा किया। इसके साथ–साथ पूर्वी तुर्किस्तान से सटे हुए और पाकिस्तान के गैर कानूनी कब्जे वाले जम्मू–कश्मीर के गिलगित और बाल्टिस्तान के रास्ते से चीन पाकिस्तान के साथ भी जुड़ गया। आज के चीन के क्षेत्रफल में तिब्बत और शिंजियांग का योगदान लगभग 42 प्रतिशत है। उसके प्राकृतिक संसाधनों में तिब्बत और पूर्वी तुर्किस्तान का हिस्सा लगभग दो तिहाई है।

इस बदलाव ने भारत के लिए कई नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। हजारों साल के इतिहास में लगभग चार हजार किमी लंबी भारत–तिब्बत सीमा को दुनिया की सबसे शांत सीमा माना जाता था। लेकिन आज जबरन हथियाए हुए तिब्बत को आधार बनाकर चीन कभी भारत के लद्दाख के हिस्सों पर दावा जताता है तो कभी हिमाचल प्रदेश, असम और अरूणाचल के हिस्सों को 'दक्षिणी तिब्बत' बताकर अपनी सेनाएं भेजने की धमकी देता है। उधर धुर पश्चिम में चीन ने पाकिस्तान के साथ मिलकर शिंजयांग को अरब सागर में ग्वादर को जोड़ने वाला जो सैनिक–आर्थिक राजमार्ग बनाया है उसके लिए भी उसने कब्जाए हुए शिंजियांग और पाकिस्तान के अवैध कब्जे वाले जम्मू कश्मीर का इस्तेमाल किया है।

भारत के प्रति चीन का रवैया कैसा रहने वाला है इसका संकेत चीन की सत्ता पाने से पहले माओ ने तब दे दिया था जब उसने तिब्बत पर चीनी कब्जे के इरादे की घोषणा करते हुए कहा था, ''तिब्बत हमारी हथेली है और लद्दाख, नेपाल, सिक्किम, भूटान और नेफा (आज का अरुणांचल) हमारी उंगलिया हैं। 1949 में जिस समय चीन की नई कम्युनिस्ट सरकार ने तिब्बत को 'मुक्त' कराने के इरादे की घोषणा की तब इतिहास के उन निर्णायक क्षणों में अकेला भारत ऐसा देश था जिसके रवैये पर शेष विश्व की प्रतिक्रिया निर्भर रहने वाली थी। लेकिन इतिहास के उन निर्णायक क्षणों में भारत सरकार की उदासीनता ने न केवल प्रभावशाली देशों की सरकारों को बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ को भी इस विवाद से परे रहने को मजबूर कर दिया। तिब्बत में चीन ने वही किया जिसकी किसी कम्युनिस्ट देश से अपेक्षा की जा सकती थी। तिब्बत की नाममात्र सेना को पहले झटके में हराने के बाद 1951 में चीन ने वहां के सोलह वर्षीय धर्म–शासक दलाई लामा के प्रतिनिधियों को चीन की ओर से तैयार '17–सूत्री समझौते' पर हस्ताक्षर करने पर मजबूर कर दिया। समझौते का मूल यह था कि तिब्बत ने खुद को चीन में शामिल करने की मंजूरी दे दी।

बाद में भारत सरकार ने 1954 में 'पंचशील समझौता' करके तिब्बत में पहले से चले आ रहे अपने वाणिज्य दूतावास, वहां अपने सैनिक तैनात करने के अधिकार, टेलिफोन–तार तंत्र और परंपरागत व्यापारिक अधिकार बनाए रखने के अधिकार को भी बिना किसी तरह की चीनी छूट पाए छोड़ दिया। चीन–तिब्बत की 17–सूत्री 'संधि' में चीन सरकार की ओर से साफ शब्दों में आश्वासन दिया गया था कि न तो तिब्बत की राजनीतिक व्यवस्था में फेरबदल किया जाएगा और न दलाई लामा के अधिकारों को बदला जाएगा (सूत्र–4)। 'संधि' में यह आश्वासन भी दिया गया था कि तिब्बत में सुधारों के लिए दबाव नहीं डाला जाएगा (सूत्र–11)। पंचशील–समझौते के तहत भारत के आत्मसमर्पण ने इस संभावना को भी समाप्त कर दिया कि तिब्बत में 17–सूत्री संधि में बीजिंग द्वारा दलाई लामा को दिए गए आश्वासनों के पालन पर नजर रखी जा सके और उनका पालन सुनिश्चित किया जा सके।

परिणाम यह हुआ कि तिब्बती मामलों में चीनी सेना और कम्युनिस्ट पार्टी की दखलंदाजी, धार्मिक केंद्रों के अपमान, भारी संख्या में चीनी सैनिकों के आने की वजह से भोजन की कमी और कीमतों के बढ़ने से तिब्बती जनता और चीनी सेना के बीच टकराव शुरू हो गया। 1956 में भारत में भगवान बुद्ध की 2500वीं निर्वाण जयंती में भाग लेने के लिए जब दलाई लामा भारत–यात्रा पर आए तब तक स्थिति इतनी विस्फोटक हो चुकी थी कि 21 वर्षीय दलाई लामा ने भारतीय प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के सामने भारत में शरण लेने का प्रस्ताव रखा। दलाई लामा अपनी आत्मकथा में बताते हैं कि उनके प्रस्ताव को मानने के बजाए पं. नेहरू उलटे नाराज़ हो गए और उन्हें चीन सरकार की ओर से मिले आश्वासनों का हवाला देते हुए तिब्बत लौटने और स्थिति का मुकाबला करने की सलाह देकर उन्हें वापस तिब्बत भेज दिया।

चीनियों के प्रति तिब्बती जनता की नाराजगी और चीनी सेना के साथ इस टकराव ने मार्च 1959 में एक निर्णायक मोड़ ले लिया। ल्हासा में चीनी सेना द्वारा दलाई लामा के अपहरण की आशंका के चलते वहां वार्षिक प्रार्थना समारोह 'मोन्लम' में दूर–दूर से आए लगभग एक लाख तिब्बती तीर्थयात्रियों और चीनी सेना के बीच सीधा टकराव शुरू हो गया। चीनी सेना ने दलाई लामा के महल पर तोप के गोले फेंककर खुले हिंसक टकराव को जन्म दे दिया। ऐसे में अपनी जान बचाने के लिए दलाई लामा अपने परिवार और सहयोगियों के साथ 17 मार्च की रात भारत में शरण लेने के लिए चोरी छिपे रवाना हो गए। उधर ल्हासा में तिब्बती जनता और चीनी सेना के बीच हुई हिंसा पूरे तिब्बत में फैल गई। बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सं. रा. महासचिव को बताया कि इस हिंसा में चीनी सेना ने 80 हजार से अधिक तिब्बतियों की हत्या की और तिब्बती

संस्कृति और पहचान नष्ट करने के गंभीर कदम उठाए। बाद में 1997 में अपनी एक अन्य रिपोर्ट में आयोग ने फिर से कहा कि तिब्बत में चीन की यह नीति अभी भी जारी है। (दोनों रिपोर्टों का विवरण इस पुस्तक में शामिल है)। मार्च 1959 की इन घटनाओं के बाद भारत में शरण लेने से पहले दलाई लामा ने '17–सूत्री संधि' को रद्द करने की घोषणा करते हुए तिब्बत को चीन से मुक्त कराने का संकल्प घोषित किया। उधर चीन ने भी दलाई लामा के अधिकारों को निरस्त करते हुए तिब्बत पर पूरी तरह से चीनी शासन लागू कर दिया।

दलाई लामा के साथ उस समय लगभग 80 हजार तिब्बती नागरिकों ने भी भारत में शरण ली। इन घटनाओं को 60 साल बीत चुके हैं। इस बीच चीन ने तिब्बत के खम और आम्दो प्रांतों के अधिकांश हिस्सों को तिब्बत से काटकर आसपास के चीनी प्रांतों युन्नान, सिचुआन, गांसू और चिंघाई में मिला दिया है। बचे हुए एक तिहाई तिब्बत को अब वह 'तिब्बत आटोनॉमस रिजन' (टार) नाम से दुनिया के सामने 'असली तिब्बत' के रूप में पेश करती है।

तब से चीन तिब्बत को अपनी एक छावनी की तरह विकसित करने में लगा हुआ है। सांस्कृतिक–क्रान्ति के दशक में चीन सरकार और वहां की कम्युनिस्ट पार्टी ने तिब्बती धर्म, ललित कलाओं, हस्तकलाओं, भाषा और सामाजिक परंपराओं को सुनियोजित तरीके से नष्ट करने का अभियान चलाया। उसके बाद जनसंख्या नियंत्रण को हथियार बना कर तिब्बतियों को अपने ही देश में अर्थहीन अल्पसंख्यक बनाने और तिब्बत समस्या का 'अंतिम समाधान' निकालने का अभियान आज भी जारी है। भारत सरकार को अब समझ में आने लगा है कि तिब्बत का इस्तेमाल करके चीन किस तरह पाकिस्तान, नेपाल, म्यांमार और बांगलादेश के रास्ते भारत को घेर रहा है। भारत की चिंता है कि तिब्बत में बैठी चीनी सेनाएं भारत, नेपाल और बांगलादेश के भारत विरोधी आतंकवादी संगठनों की मदद से भूटान और बांगलादेश के बीच से होकर गुजरने वाले तंग सिलिगुड़ी गलियारे (जिसे सैनिक भाषा में 'चिकन नेक' कहा जाता है), को काट कर भारत के सातों उत्तर–पूर्वी राज्यों को शेष भारत से काट सकती हैं। डोकलाम में चीनी सेनाओं को रोकने के लिए भारतीय सेना की कार्रवाई के पीछे सबसे बड़ी चिंता यही थी।

2006 में चीन सरकार ने गोरमो–ल्हासा रेलवे लाइन बिछाकर तिब्बत को चीन से जोड़ दिया। बाद में इस लाइन को वह शिगात्से तक ले आई। और अब नेपाल सरकार के साथ मिलकर वह इस रेलवेलाइन को नेपाल तक बिछाने की योजना पर काम कर रही है। इसके अलावा चीन नेपाल और तिब्बत के बीच कई नई सड़कों का जाल भी बिछा चुका है। तिब्बत पर कब्जे के इस पूरे दौर में चीन ने तिब्बत में लाखों चीनी नागरिकों को बसाने का जो अभियान चलाया उसके कारण लगभग सभी छोटे–बड़े तिब्बती शहरों और कस्बों में तिब्बती लोग अल्पसंख्यक होकर रह गए हैं। ये सब कदम उठाकर चीन ने भारत की सुरक्षा के लिए एक अभूतपूर्व खतरा खड़ा कर दिया है। और यह सब इस गलती का नतीजा है कि तिब्बत पर चीन के कब्जे के समय भारत सोता रह गया।

तिब्बत पर कब्जे के बाद चीनी प्रचारतंत्र दुनिया को यह समझाने में लगा रहा है कि दलाई लामा के 'सामंतवादी' धार्मिक शासन से 'मुक्ति' पाकर तिब्बती जनता चीनी शासन में बहुत खुश है । लेकिन 1959 के बाद 1987 और 1989 के तिब्बती प्रदर्शनों और 2008 मार्च–अप्रैल में चीन विरोधी जनक्रान्ति के ल्हासा से ढाई हजार किमी दूर तक 54 से अधिक स्थानों पर फैलने के बाद बार–बार इन दावों की पोल खुल चुकी है। पिछले कुछ साल में तिब्बत में 150 से ज्यादा तिब्बतियों के आत्मदाह ने दुनिया को दिखा दिया है कि तिब्बत के बारे में चीन सरकार और उसकी प्रोपेगेंडा मशीनरी के दावे खोखले हैं। अब चीन सरकार यह आरोप लगा रही है कि दलाई लामा तिब्बती लोगों को भड़का रहे हैं।

निर्वासन में बैठे दलाई लामा के आसपास तिब्बत के समर्थन में एक व्यापक अंतराष्ट्रीय आंदोलन खड़ा हो चुका है। 2008 में बीजिंग ओलंपिक को लेकर महीनों तक दुनिया भर में चले चीन विरोधी प्रदर्शनों को देखकर चीनी नेताओं को समझ आ गया कि दलाई लामा और तिब्बत आंदोलन महज कागजी शेर नहीं। पिछले कई साल से चीनी नेता यह देखकर परेशान रहे हैं कि हर साल 10 मार्च के दिन तिब्बती जनता के साथ एकजुटता दिखाने के लिए पश्चिम के एक हजार से ज्यादा शहरों के म्युनिसपैलिटी भवनों पर आधिकारिक तौर पर तिब्बती झंडा फहराया जाने लगा है। कनाडा, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, फ्रांस और न्यूज़ीलैंड जैसे देशों के प्रधानमंत्रियों को बीजिंग की मांग पर दलाई लामा से न मिलने के सार्वजनिक वादों के बाद भी अपनी जनता और मीडिया के दबाव को देखते हुए अपने फैसले बदलने पड़े। दुनिया भर की संसदों में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित दलाई लामा को बुलाने और उनके सम्मान में खड़े होकर ताली बजाने की होड़ लगी रहती है। यह कोई छोटी बात नहीं है कि इस संत को सलाम करते हुए अब तक कुछ दर्जन संसदें तिब्बत के समर्थन में 50 से ज्यादा प्रस्ताव पारित कर चुकी हैं। और यह सब उस एक संत–नेता के व्यक्तित्व का असर है जो चीनी अत्याचार के खिलाफ अपने अहिंसक आंदोलन के लिए नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते हुए भी नोबेल मंच से मुस्कारते हुए घोषित करता है, ''तिब्बत का शत्रु भी हमारी करुणा का अधिकारी है।'' दलाई लामा की लोकप्रियता और तिब्बती जनता के प्रति दुनिया भर में बढ़ते समर्थन से चीन सरकार इतना खिसिया चुकी है कि पिछले कुछ साल से उसने अपनी आर्थिक और व्यापारिक शक्ति का इस्तेमाल करके विभिन्न देशों की सरकारों की बाहें मरोड़नी शुरू कर दी हैं।

जहां तक दलाई लामा की बात है, वह भी निर्वासन में आने के बाद साठ साल से तिब्बती समाज और तिब्बती संघर्ष को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए ठीक उसी तरह काम कर रहे हैं जिस तरह कोई बौद्ध भिक्षु इस जीवन में अगले जीवन की तैयारी करता है। भारत में मिली सुविधाओं और स्वायत्ता के बूते पर अब वह तिब्बती शरणार्थी समाज के लिए एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था खड़ी कर चुके हैं जो जनता के चुने हुए 'सिक्योंग' (राष्ट्रपति) और संसद के दम पर चलती है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त और लगभग आत्मनिर्भर शरणार्थी समाज का यह तंत्र अब दलाई लामा की सीधी भागीदारी पर निर्भर नहीं है। वह वर्तमान दलाई लामा की मृत्यु के बाद भी अपनी गतिविधियां अनंतकाल तक पूरे प्रभावी तरीके से चलाए रख सकता है और समय आने पर आजाद तिब्बत का नेतृत्व संभाल सकता है।

दलाई लामा के दूरंदेशी नेतृत्व, भारत में मिलने वाली आजादी और सहयोग का सही फायदा उठाते हुए तिब्बती शरणार्थी समाज ने अपने अथक परिश्रम और लगन के बूते पर भारत में तिब्बत की सांस्कृतिक–राष्ट्रीय पहचान को अपने मूल रूप में खड़ा कर लिया है। दुनिया के इतिहास में अपनी तरह का शायद यह पहला उदाहरण है कि मात्र एक लाख शरणार्थियों की संख्या वाले किसी समाज ने विदेशी धरती पर अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और पहचान को नए सिरे से खड़ा कर लिया हो – और वह भी उस हालत में जब उनके देश पर कब्जा जमाए बैठी सरकार ने उनकी संस्कृति और पहचान को नष्ट करने में कोई कसर न रख छोड़ी हो। भारत के लिए भी यह गर्व की बात है कि उसकी छत्रछाया में इस छोटे से मेहमान तिब्बती समाज ने भारत को दुनिया में तिब्बती संस्कृति के सबसे बड़े और विश्वसनीय भंडार के रूप में स्थापित कर दिया है।

चीन के कम्युनिस्ट नेता यकीनन इस बात से खुश नहीं हैं। अपने सत्तर साल के राज में हान जाति के दबदबे वाली चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन का यह हाल किया है कि 56 राष्ट्रीयताओं वाले चीन की जनसंख्या में आज हान जाति का अनुपात 82 प्रतिशत है जबकि बाकी ''55 बहनों'' की कुल जमा हैसियत केवल 8 प्रतिशत रह गई है। चीन के भीतर हान जाति द्वारा सुनियोजित तरीके से किए

गए इस सांस्कृतिक विनाश को देखते हुए तिब्बती शरणार्थी समाज और उसके नेता दलाई लामा की यह उपलब्धि छोटी नहीं है।

चीनी नेता यह आशा लगाए बैठे हैं कि वर्तमान दलाई लामा के देहावसान के बाद तिब्बत का सवाल अपने आप खत्म हो जाएगा। ऐसे बयान चीनी नेताओं में कूटनीतिक सभ्यता की कमी के साथ–साथ दलाई लामा के सामने उनकी हताशा को भी बखूबी प्रतिबिंबित कर रहे हैं। चीन के भीतर पनपते लोकतांत्रिक दबाव, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार तथा तिब्बत की तरह गुलामी से परेशान राष्ट्रीयताओं के विस्फोटक दबाव से बेखबर चीन के कम्युनिस्ट नेता यह नहीं समझ पा रहे हैं कि यह चीन के हित में है कि वे चीन के भीतर कुचले जा रहे तिब्बती, उइगुर और मंगोल जैसी दर्जनों राष्ट्रीयताओं, ईसाई और मुस्लिम धर्मावलंबियों, फालुन गांग जैसे सांस्कृतिक संगठनों और लोकतंत्र की मांग करने वाले आंदोलनों का दमन करने के बजाए उन्हें कम से कम मूलभूत स्तर की आजादी और स्वायत्तता तो जरूर उपलब्ध कराएं। वरना इस मामले में उनकी हेकड़ी चीन को उतनी ही महंगी पड़ सकती है जितनी सोवियत संघ के अड़ियल कम्युनिस्ट आकाओं को सोवियत संघ के टूट जाने से पड़ी थी।

यह पुस्तक ऐसे समय प्रकाशित की जा रही है जब भारत में तिब्बती शरणार्थी समाज और उसके विलक्षण नेता दलाई लामा भारत में अपने निर्वासन काल के छह दशक पूरे कर रहे हैं। यह पुस्तक कई विद्वान लेखकों और विचारकों के तिब्बत, चीन और भारत से जुड़े ऐसे चुनिंदा लेखों, भाषणों और दस्तावेज़ों का संग्रह है जो पाठकों को तिब्बत के विभिन्न पहलुओं तथा भारत के लिए तिब्बत के महत्व को समझने में योगदान देगा। यह पुस्तक एक विचार संग्रह के साथ–साथ भारत के नेतृत्व और भारत की जनता के उस बड़प्पन और स्नेह के प्रति एक स्नेहांजलि है जो उन्होंने तिब्बत के शरणार्थियों को पिछले साठ साल में दिया है।

– विजय क्रान्ति

संपादक

खामोश तमाशबीन दुनिया में तिब्बत

प्रो. सामदोंग रिंपोछे

इतिहास

तिब्बत की वर्तमान स्थिति एवं उसके भविष्य की संभावनाओं पर विचार के लिए उसके इतिहास का भी संक्षेप में अवलोकन करना अपेक्षित है। भोट या 'बोद' जो आज तिब्बत के नाम से प्रसिद्ध है उसका केवल दो हजार वर्ष पुराना इतिहास है। 127 ई.पू. में अठी चनपो तिब्बत के प्रथम सम्राट बने। उस काल से लेकर 836 ई. तक इकतालीस रावंशजों ने तिब्बत में राज किया। उन्होंने अपने राज्य की सीमाएं चतुर्दिक बढ़ाकर चीन, तुर्किस्तान, नेपाल, मंगोलिया आदि के पर्याप्त भूभाग को अपने अधीन किया। चीन के साथ अनेक बार युद्ध और संधियां हुई। 841 ई. में लड्. दरमा की हत्या के बाद तिब्बत अनेक भागों में बंट गया। 1220 ई. में चंगेज खान का आक्रमण हुआ और 1240 ई. तक सभी छोटे तिब्बती राज्य उसके अधीन हो गए। उनके पौत्र कुबलाई खान ने संपूर्ण तिब्बत को एक राष्ट्र के रूप में गठित करके अपने गुरु साक्य पंडित के भतीजे फग्सपा को दुरुदक्षिणा के रूप में उसे अर्पित कर दिया। उस समय से लेकर छियानवें वर्ष तक साक्य शासन रहा। तत्पश्चात डेसी फाग्मों डुब पा, डेसी रिड्. पोड्. पा और डेसी चड्.पा ने क्रमशः राज्य करते हुए 1642 ई. तक शासन को आगे बढ़ाया। मंगोल सेनापति गुस्नी खान ने डेसी चड्.पा को अधीन बनाकर तिब्बत के शासन को अपने हाथ में लिया और पुनः अपने गुरु पांचवें दलाई लामा को गुरु–दक्षिणा के रूप में दिया। उस काल से गंदेन फोडांग नामक जो सरकार बनी वह 1959 तक अनेक उतार–चढ़ाव के साथ चलती रही।

इस बीच मंगोलिया के सेनापति जुड्.गर ने 1717 में तिब्बत पर आक्रमण कर तीन वर्ष स्वयं वहीं शासन किया। उसे भगाने के लिए चीन से चार हजार सैनिक तिब्बत आए जो चीनी शक्ति द्वारा तिब्बत में प्रवेश पाने का प्रारंभ था। कुछ महीनों के बाद चीनी सेना वापस चली गई और शासन की बागडोर पुनः सातवें दलाई लामा के हाथ में आई।

1728 में तत्कालीन मंत्रिपरिषद में विभाजन और गृहयुद्ध के कारण फुलावा ने चीन से सैनिक सहायता मांगी जिसके पश्चात चीन के स्थायी प्रतिनिधि 'अंबन' की स्थापना तिब्बत में हुई और वहां चीनी हस्तक्षेप का दौर प्रारंभ हो गया। चीन की दुर्भावपूर्ण राजनीति के कारण 9वें से लेकर 12 वें तक सभी दलाई लामा अल्पायु थे जिसके चलते तिब्बत का शासन लड़खड़ाता गया।

अठारहवीं शती के अंत में ब्रिटिश भारत ने कई बार चीन के साथ तिब्बत संबंधी संधियां कीं जिनके कार्यान्वित न होने पर 1904 ई. में यंग हसबैंड एक्सपीडिशन के नाम से ब्रिटेन द्वारा ल्हासा पर सैनिक आक्रमण किया गया और तिब्बत से सीधे संधि हुई। 1912 ई में तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत से अंबन तथा उसके सहयोगियों को निष्कासित कर तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा को पुनः दोहराया। अगले वर्ष मंगोलिया के साथ उल्नवर संधि तथा 1914 में ब्रिटिश के साथ 'शिमला समझौता' हुआ। इस प्रकार तिब्बत 127 ई. पू. से लेकर 1728 ई तक बराबर स्वतंत्र राष्ट्र रहा। 1728 से 1911 तक विदेशी हस्तक्षेप विभिन्न रूपों में बना रहा फिर भी उसके आंतरिक शासन पर इसका कोई प्रभाव नहीं रहा। जिसे पश्चिमी विद्वानों ने de facto स्वतंत्रता की संज्ञा दी। 1912 इ से 1950 तक विदेशी

हस्तक्षेप पूर्णतया समाप्त हो गया और तिब्बत ने एक de jure स्वतंत्र देश के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखा।

द्वितीय महायुद्ध के समय एक तटस्थ राष्ट्र के रूप में तिब्बत ने अपनी भूमि से शस्त्रास्त्र के यातायात पर प्रतिबंध लगा दिया। इसे ब्रिटेन और चीन दोनों को मानना पड़ा। बौद्ध धर्म को राष्ट्र का धर्म एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति मानकर अपनी अत्यंत संपन्न परंपराओं के साथ यह देश शेष दुनिया से अलग–थलग सुख–शांति से जीवन बिताता रहा।

orZeku

विचारणीय क्षेत्र : तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति को चित्रांकित करने के लिए सन् 1949 से लेकर आज तक के विगत चालीस वर्ष के घटनाक्रम को समग्र रूप में देखना होगा जिसमें चीन–अधिकृत तिब्बत में एक स्वायत्त प्रांत के रूप में आठ वर्ष के कार्यकाल, 1959 के पश्चात अधिकृत तिब्बत और प्रवासी शरणार्थी तिब्बती–जन के बीच घटित घटनाओं और अंतर्राष्ट्रीय जगत में तिब्बत विषयक सारी गतिविधियों को सम्मिलित करना होगा।

i"BHkwfe

उक्त चालीस वर्षों की परिस्थितियों के बीज तिब्बत में सन् 1728 में ही पड़ चुक थे। उस समय से लेकर 1912 ई. तक की प्रायः दो सौ वर्षों की राजनीतिक घटनाएं वर्तमान परिस्थिति की पृष्ठभूमि है जिनका संक्षेप में पहले उल्लेख किया जा चुका है।

volj [kks fn;k % सन 1912 ई. में तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत में उपस्थित चीन की सारी शक्तियों को निष्कासित करके तिब्बत की संप्रभुता एवं स्वतंत्रता का पुनः उद्घोष किया। उस समय से 1933 तक का युग तिब्बत के इतिहास में एक स्वर्ण युग रहा। वह एक ऐसा अवसर तिब्बतवासियों को मिला जब वे विश्व के विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के मंचों पर अपनी स्वाधीनता की स्थिति को साधिकार प्रवेश करा सकते थे परंतु तत्कालीन स्वार्थप्रेरित और अदूरदर्शी तिब्बती अफसरशाही ने सरल तिब्बती समुदाय के साथ उस अवसर को खो दिया जिसका परिणाम आज प्रत्यक्ष हमारे सामने है।

rsjgosa nykbZ ykek dh psrkouh % तेरहवें दलाई लामा ने अपने अंतिम उपदेश में स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि तिब्बती शासक वर्ग स्वार्थनिहित कार्यों का परित्याग नहीं करेगा तो कुछ दशकों में ही तिब्बत चीन के अधीन हो जाएगा और संपूर्ण तिब्बतवासी ऐसी यातनाएं भोगने के लिए विवश हो जाएंगे जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि समय से सब लोग अपने को परिवर्तित करके राष्ट्र के हित में जुट कर निःस्वार्थ भाव से कार्य करें तो पचास–सौ वर्ष और स्वाधीन तिब्बत के वैभव को अक्षुझण बना सकेंगे। परंतु तेरहवें दलाई लामा के उपदेश की अवहेलना होती रही और उनके निर्वाण के बाद लोग अपने निहित स्वार्थों में लग गए। परिणामतः 1949–50 ई में तथाकथित साम्यवादी चीन ने तिब्बत पर अचानक आक्रमण कर दिया। तिब्बत के लोगों द्वारा किए गए अपने राष्ट्र को बचाने के सभी प्रयत्न विफल रहे। तिब्बतवासियों के लिए यह शर्म की बात थी। इतिहास इसके लिए उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा।

lkE;oknh phfu;ksa dk vkØe.k % साम्यवादी चीनियों की दृष्टि तिब्बत पर प्रारंभ से ही रही है। माओ के नेतृत्व में साम्यवादी संगठन का ऐतिहासिक 'लांग मार्च' भी तिब्बत को लक्ष्य कर ही संचालित हुआ था। तिब्बत को मुख्य केंद्र बनाकर वहां से चीन पर अधिकार करने का विचार था। परंतु तत्कालीन तिब्बती सीमावर्ती जनता और सुरक्षा बलों ने मिलजुल कर उन्हें पराजित कर तिब्बत में प्रविष्ट

नहीं होने दिया।

अतः 1949 में चीन में सत्ता परिवर्तन होते ही तिब्बत पर आक्रमण करने के कारणों में 'लांग मार्च' की विफलता–जनित प्रतिशोध की भावना भी एक कारण बनी। इसके अतिरिक्त तिब्बत की भौगोलिक संरचना और उसके प्राकृतिक संसाधन चीन के तिब्बत पर सत्ताधिग्रहण के कारण रहे। साम्यवादी चीन ने 1949 के अक्तूबर मास में अपनी सरकार के कायम होते ही अविलंब तिब्बत को विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्ति दिलाने के लिए मुक्ति सेना भेजने की घोषणा की और तिब्बत पर आक्रमण प्रारंभ कर दिया।

rFkkdfFkr l=g&l=h; le>krk % तिब्बत की पूर्वी सीमा पर चीन के आक्रमण से लगभग छम्दो तक उनका अधिकार हो जाने पर देश की सुरक्षा असंभव देखकर तिब्बत के रीजेंट ने सत्ता चौदहवें दलाई लामा जी को सौंप दी। परमपावन उस समय मात्र 15 वर्ष के थे। सुरक्षा की दृष्टि से वे भारतीय सीमा डोल्मो में जाकर निवास करने लगे। छमदो के प्रांतीय शासक को युद्ध बंदी बनाकर पेंकिंग ले जाया गया। उनसे 1951 में बंदूक की नोक पर बलपूर्वक चीन द्वारा तैयार किए गए *'सत्रह सूत्रीय समझौता पत्र'* पर हस्ताक्षर करा लिए गए। वह तिब्बत सरकार के अधिकृत प्रतिनिधि नहीं थे, फिर भी उन्हें चीन ने प्रतिनिधि मान लिया और संसार भर में इसका प्रचार किया गया तथा नेहरूजी को आश्वस्त किया गया कि उस समझौते में उल्लिखित प्रावधानों का पालन करते हुए वे तिब्बत में विकास कार्य करेंगे। और पूर्वी सीमा से बढ़ते हुए चीनी दस्ते आगे बढ़ते रहे। भारत से होकर चीन के कुछ असैनिक अधिकारी डोल्मो में दलाई लामा जी के पास पहुंचे। इस प्रकार संपूर्ण तिब्बत कुछ ही समय में चीन के अधीन हो गया।

fo'o e vdykiu % 1950–51 में तिब्बत ने विश्वभर से सहायता की प्रार्थना की कि वे चीन के क्रूर आक्रमण से उन्हें बचाएं। राष्ट्रसंघ में भी तिब्बत ने आवेदन–पत्र भेजा। परंतु तिब्बत का राष्ट्रसंघ का सदस्य न होना और उसके किसी सदस्य द्वारा अग्रसारित न होने के कारण निर्देश के साथ उसे वापस कर दिया गया। तिब्बत ने अपने को संपूर्ण विश्व में नितांत अकेला एवं असहाय पाया। परंतु इसके उत्तरदायी स्वयं तिब्बत के ही लोग हैं।

bfrgkl e dky nkx % बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मानव ने चंद्रमा पर विजय पाने का गौरव प्राप्त किया है, ज्ञान और सभ्यता के विकास की चरम सीमा तक पहुंचने का दावा प्रस्तुत किया जाता है और मानवाधिकार, समता, न्याय, विश्वबंधुत्व आदि की चर्चा चतुर्दिक फैली हुई है। लेकिन उसी समय तिब्बत को विस्तारवादी चीन निगल गया और वहां अपूर्व नरसंहार एवं सांस्कृतिक संहार द्वारा मानवाधिकारों का खुलकर हनन हुआ, परंतु संपूर्ण विश्व मूक दर्शक बनकर मौन रहा। यही मानव इतिहास में अवर्णनीय काला दाग है जो कभी मिट नहीं सकता।

ug: th dh foo'krk % यह एक साधारण मान्यता बन गई है कि तिब्बत को चीन के एक स्वायत्तशासी प्रांत के रूप में मान्यता देकर नेहरूजी ने ऐतिहासिक गलती की। परंतु मैं इसे नेहरूजी की गलती नहीं, अपितु विवशता मानता हूं। भारत के स्वतंत्र होने के पहले से ही तत्कालीन भारतीय नेतागण तिब्बत को एक स्वतंत्र देश के रूप में देखना चाहते थे। सन् 1947 के प्रारंभ में हुए एशियाई संबंधों के अधिवेशन में चीन के कड़े विरोधों के बावजूद तिब्बत को एक स्वतंत्र देश का स्थान देकर आमंत्रित किया गया। उसके प्रतिनिधिमंडल को नेहरू आदि नेताओं ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में अपने राजनीतिक संबंधों को विकसित करने की सलाह भी दी, परंतु तिब्बती शासक इसे समझ नहीं पाए। भारत के स्वतंत्र होने पर तिब्बतवासियों ने जून 1948 तक उसे मान्यता ही नहीं दी। व्यापार आयोग के अध्यक्ष श्री शाकब–पा को नेहरूजी ने सलाह दी कि ब्रिटिश भारत के साथ हुई सभी तिब्बती

संधियों का नवीनीकरण होना चाहिए तथा नई संधियों की प्रक्रिया प्रारंभ करनी चाहिए जिससे स्वतंत्र भारत के साथ तिब्बत के वैधानिक संबंध सुदृढ़ हो सकें। इस आशय का तार ल्हासा 'काशाग' (मंत्रिपरिषद) को देने पर शाकब–पा को उत्तर आया कि "तुम्हें जिस कार्य के लिए भेजा गया है उसके अतिरिक्ति किसी अन्य कार्य में रुचि लेने की आवश्यकता नहीं है।"

इस प्रकार तिब्बत–भारत की सभी पुरानी संधियां समयच्युत हो गई और कोई नई संधि नहीं हो सकी। कुल मिलाकर तिब्बत की सरकार भारत के सामने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपने को प्रस्तुत करने में अक्षम रही। इन सबकी तह में ब्रिटिश राज द्वारा तिब्बत शासकों को दिए गए दुर्भावपूर्ण भ्रामक परामर्श थे।

इन सब घटनाओं के बाद नेहरूजी के पास ब्रिटिश राज से विरासत में प्राप्त तिब्बत के संबंध में घिसीपिटी नीतियों को जारी रखने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रहा। अतः नवंबर, 1949 में नेहरूजी ने लंदन में एक वक्तव्य दिया जो संभवतः तिब्बत के संबंध में स्वतंत्र भारत का प्रथम वक्तव्य था। उसमें यह कहा गया कि 'शिमला समझौते' में माना गया है कि तिब्बत एक स्वायत्त प्रांत है जिस पर चीन का अधिराज्य स्थापित है। वह हमें मान्य है। फिर भी हम तिब्बत के साथ विशेष संबंध रखने के इच्छुक हैं, क्योंकि भारत और तिब्बत के बीच धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संबंधों की सुदीर्घ एवं दृढ़ परंपरा रही है।

ruko d: vkB o"k : सन् 1951 से 1959 तक चीन के सैन्यबल की उपस्थिति में तिब्बत की सरकार के वैधानिक कार्य चलते रहे। तिब्बत पर चीन का अधिकार होते ही पेकिंग–ल्हासा मार्ग के निर्माण को प्राथमिकता दी गई और 1955 में पेकिंग से ल्हासा तक भारी सैनिक वाहनों, टैंकों आदि के यातायात का मार्ग बन गया। उस समय से बराबर सेनाओं का संचालन जारी रहा। उसके साथ तथाकथित 'प्रिपरेटरी कमेटी फॉर टिबेट्स आटोनॉमस रीजन' का गठन हुआ। 1954–55 ई. में दलाई लामा और पंचेन लामा आदि को पेकिंग ले जाकर शक्ति प्रदर्शन द्वारा उन्हें प्रभावित करने और उनका विचार परिवर्तन (ब्रेनवाश) करने का प्रयास किया गया। 1956–57 में नेहरूजी ने दलाई लामा और पंचेन लामा को भारत में 25सौंवी बुद्धजयंती के अवसर पर आमंत्रित किया। उस समय दलाई लामा जी ने भारत में रह जाने की इच्छा व्यक्त की थी। परंतु नेहरू जी ने यह परामर्श दिया कि "मैंने चाऊ–एन–लाई से वार्तालाप किया है। तिब्बत को संपूर्ण स्वायत्तता देने में चीनी कभी पीछे नहीं हटेंगे। वे आपके आंतरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसलिए आपको वापस जाना चाहिए। यदि चीन अपना वचन पूरा नहीं करता है तो मैं स्वयं तिब्बत आकर देखूंगा।"

उक्त आश्वासन पर दलाई जामा जी तिब्बत वापस लौट गए और 10 मार्च, 1959 तक किसी प्रकार शासन चलाते रहे।

tuØkfr dk mn; : चीन के निर्मम अत्याचार से संत्रस्त तिब्बत वासियों में जनक्रांति का उदय खम् प्रांत में 1954 के प्रारंभ से ही हो चुका था। परंतु इस जनक्रांति की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने में कोई भी माध्यम समर्थ नहीं हुआ। संघर्ष चलता रहा और 1958 तक उसने संगठित होकर दक्षिण प्रांत के अधिकांश भू–भाग को समावृत कर लिया जिससे परमपावन दलाई लामाजी को भारत में शरण लेने का मार्ग मिल सका।

चीन जैसे असंख्य सैन्य बल वाले राष्ट्र के विरोध में मुट्ठीभर लोगों का बिना किसी आधुनिक शस्त्रास्त्र के संघर्षरत रहना और कोई पांच बरस तक अपना अस्तित्व बनाकर एक विशाल भूखंड को बचाए रखना विश्व इतिहास में एक अद्वितीय घटना है। संघर्ष के हिंसात्मक होने के कारण मैं उसका अनुमोदन तो नहीं कर सकता, फिर भी उस संघर्ष में अपना जीवनोत्सर्ग करने वालों का साहस और

राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा प्रशंसा का विषय है।

l:i.k fouk'k % ल्हासा में चीन के साथ स्वायत्त शासन चलाने के समस्त प्रयासों की विफलता 10 मार्च, 1959 को अपने चरम रूप में परिलक्षित हुई। अत्यंत विवश जनसमुदाय ने दलाई लामा जी की प्राण रक्षा तथा देश की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए इसी दिन अपना आक्रोश प्रदर्शित किया। जनता ने समवेत होकर चीन की अधीनता को अस्वीकार कर दिया। 18 मार्च को दलाई लामाजी भारत के लिए प्रस्थान करने में सफल हुए। 19–20 मार्च की रात्रि में संपूर्ण ल्हासा जनपद चीनी तोपों और बमों के अंधाधुंध प्रहार से झुलस गया जिससे असंख्य निहत्थे लोग अपने वतन के लिए शहीद हो गए।

vf/kd`r frCcr e: % तत्पश्चात संपूर्ण अधिकृत तिब्बत में जनक्रांति को दबाने में चीन की सारी शक्ति लग गई। फिर भी क्रांति को संपूर्ण रूप से दबाने में चीनी असफल रहे। मार्च, 1959 के बाद दमन की घटनाओं में अब तक जो तिब्बती चीन द्वारा विभिन्न तरीकों से किए गए नरसंहार में मारे जा चुके हैं उनकी अनुमानित संख्या दस लाख से ऊपर है। यह पूर्ण तिब्बती जनसंख्या के 16 प्रतिशत से भी अधिक है। इनमें से कई लाख लोग जनक्रांति में भाग लेने के अपराध में दी गई अमानवीय यातनाओं के शिकार हुए। 1965 से 1976 तक चलने वाले तथाकथित सांस्कृतिक आंदोलन ('कल्चरल रिवोल्यूशन') में तिब्बती संस्कृति को समूल नष्ट करने का अभियान चलाया गया। इस अभियान के क्रम में हजारों विहारों (गोम्पा) और उनमें अवस्थित ग्रंथों और कलाकृतियों को नष्ट किया गया। इस तरह कितनी ही पुरातात्विक संपत्तियों को क्षति पहुंची।

rFkkdfFkr mnkj uhfr % 1976 से चीनी सरकार ने सांस्कृतिक क्रांति को अपनी भूल के रूप में स्वीकार करते हुए तथाकथित 'उदार नीति' अपनाई। 1979 में चीन में फैले भयंकर आर्थिक संकट के कारण अन्य देशों के साथ वह एक 'खुली नीति' अपनाने के लिए बाध्य हुआ। अपनी इस नीति के तहत उसने इसी परिप्रेक्ष्य में दलाई लामा तथा उनके प्रवासी अनुयायियों को स्वदेश लौट आने के आमंत्रण भी दिए जिसमें निहित उसकी दुरभिसंधिपूर्ण चालें और कपटनीतियां शीघ्र पहचान में आ गईं। 1979 से लेकर 1983 तक चार बार दलाई लामा जी की ओर से तिब्बत में तथ्यान्वेषक शिष्टमंडल भेजे गए और अनेक बार दलाई लामा जी से वार्ता प्रारंभ करने की अर्थहीन चर्चा भी हुई। 1983 के बाद विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के उद्देश्य से तिब्बत में कुछ सीमित स्थान विदेशी पर्यटकों के लिए खोल दिए गए।

इस तथाकथित 'उदार–नीति' के काल में भी तिब्बत की पहचान को समाप्त करने की नीति का त्याग नहीं किया गया। चीनी मूल के लोगों को तिब्बत में लाकर बसाने का कार्य अविच्छिन्न रूप से चलता रहा। चीनी आंकड़ों के अनुसार 1986 के अंत तक पचहत्तर लाख चीनी मूल के लोग तिब्बत के विभिन्न भागों में बसाए जा चुके थे जबकि तिब्बत की अपनी संपूर्ण जनसंख्या साठ लाख है।

phu dh vlfy;r lkeus vkbZ % चीन की समस्त तथाकथित उदारनीतियों के रहते भी तिब्बत की जनाकांक्षा को कभी अपेक्षित महत्व नहीं मिला। इसके फलस्वरूप अक्तूबर, 1987 में तिब्बत में चीन के विरोध में विशाल शांतिपूर्ण प्रदर्शन हुआ। उस समय से लेकर अठारह मास में इक्कीस और प्रदर्शन हुए जिनमें सौ से अधिक लोग मार दिए गए और दो हजार से अधिक लोग जेलों में यातनाएं झेलते रहे। फिर भी दमन के कार्यों से जनता का मुंह नहीं बांधा जा सका। 1989 में 5 मार्च के दिन पुनः हजारों शांतिपूर्वक प्रदर्शन करने वाले नागरिकों पर गोलियां बरसाई गईं। जब स्थिति नियंत्रण से बाहर पाई गई तो 'मार्शल–लॉ' की घोषणा कर सारे देश को सेना के अधीन कर दिया गया। इस प्रदर्शन के दौरान, चीनी सूत्रों के अनुसार 256 लोग मारे गए और कुछ हजार गिरफ्तार किए गए। परंतु ये वास्तविक आंकड़ों से बहुत कम हैं। समस्त विदेशी राजनयिकों, पत्रकारों और पर्यटकों को जबर्दस्ती

अधिकृत तिब्बत से निष्कासित कर दिया गया है। उस समय से तिब्बत और बाकी विश्व के बीच एक अभेद्य दीवार (आयरन कर्टेन) खड़ी कर दी गई है। इस समय वहां क्या हो रहा है इसकी कोई अधिकृत सूचना उपलब्ध नहीं है।

1987 और 1989 के दो वर्ष के बीच के इन जनांदोलनों को विश्वभर के माध्यमों में समुचित प्रचार मिला जो हम लोगों के लिए एक नई घटना है। पत्रकार स्वयं किसी घटना में फंसते हैं तो उस घटना का सही मूल्यांकन करते हैं। तिब्बत में पत्रकारों के साथ ऐसा ही हुआ है।

iokl h 'kj.kkFkh % मार्च 1959 में परमपावन दलाई लामा के साथ लगभग अस्सी हजार तिब्बती शरणार्थी भारत आए। भारतीय जनता एवं भारत सरकार ने अत्यंत आत्मीयता और सहानुभूति के साथ इन्हें शरण दी। सभी शरणार्थियों को कृषि, लघु उद्योग एवं छोटे स्तर के व्यापारों में लगाकर लगभग दो दशक में उनके पुनर्वास के कार्य को संपन्न किया गया। आज वे भारत के विभिन्न प्रांतों में काफी सुख–सुविधा से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके पांचों धार्मिक संप्रदायों की मुख्य पीठों और अधिकांश विहारों का पुनःस्थापन कर दिया गया है जिससे परंपरागत तिब्बती संस्कृति के संवर्द्धन और संरक्षण के कार्य व्यापक रूप से चलते रहें।

उनके बच्चों के लिए शिक्षा की व्यापक व्यवस्था की गई है। केंद्रीय तिब्बती स्कूल प्रशासन द्वारा संचालित पचासों स्कूलों में लगभग पचीस हजार छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। सैकड़ों की संख्या में तिब्बती विद्यार्थियों को विभिन्न विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के अवसर भी प्राप्त हैं। लद्दाख संस्थान, लेह, सिक्किम रिसर्च इंस्टीट्यूट, गंगटोक, केंद्रीय उच्च तिब्बती शिखा संस्थान, सारनाथ आदि में विशेष अध्यापन एवं अनुसंधान के कार्य चल रहे हैं और लुप्त प्राचीन बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के पुनरुद्धार कार्य से भारतीय संस्कृत परंपरा को, जो हजारों वर्षों से तिब्बत में सुरक्षित थी, भारत को सौंपे जाने का कार्य भी चल रहा है। उसके साथ अपनी स्वाधीनता के आंदोलन में भी तिब्बती जन लगे हुए हैं।

Hkkjrh; lg;kx % जब से तिब्बत का प्रश्न हमारे समक्ष आया, उस काल से चक्रवर्ती राजगोपालाचारी , डा. राजेंद प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्रदेव, अच्युत पटवर्धन, श्यामा प्रसाद मुखर्जी आदि बड़े राष्ट्रीय नेताओं का इस दिशा में विशेष सहयोग रहा है। आचार्य जे.बी.कृपलानी ने सेंट्रल रिलीफ कमेटी स्थापित करके शरणार्थियों को विशेष सहायता दिलवाई। जयप्रकाश नाराण ने 1960 में ऐफ्रो–एशिया कन्वेंशन बुलाकर तिब्बती प्रश्न के लिए विश्व जनमत संग्रह की चेष्टा की। इसी तरह कई जनआंदोलन चलाए जाते रहे जिन सबका उल्लेख यहां संभव नहीं है।

l;Dr jk"V l?k % निर्वासित तिब्बतियों ने क्रमशः 1959, 61 तथा 65 में संयुक्त राष्ट्र संघ में स्मृति–पत्र दिए। उनमें तिब्बत में मानवाधिकार हनन की समाप्ति संबंधी प्रस्ताव पारित हुए। दो प्रस्तावों में भारतीय प्रतिनिधि मतदान प्रकिया में अनुपस्थित रहे। परंतु 1965 के तीसरे प्रस्ताव में भारतीय प्रतिनिधि श्री जकारिया ने ऐतिहासिक भाषण देकर तिब्बती प्रश्न की वकालत की जो भारत सरकार की ओर से तिब्बती प्रश्न के विषय में एक रचनात्मक परिवर्तन था।

1959 में ही अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (International Commission of Jurists) ने तिब्बत में मानवाधिकारों के गंभीर हनन की सूचना देने वाली अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की।

Hkkoh lfo/kku dk ik:i % परमावन दलाई लामा जी ने 1961 में सूत्ररूप में तथा 1963 में भावी तिब्बत राष्ट्र के एक संपूर्ण संविधान का प्रारूप जो आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है– प्रस्तुत किया, जिसमें राष्ट्रीय संसद को दलाई लामा को भी शासन से हटाने का अधिकार दिया

गया है। संविधान के उक्त प्रारूप के अनुकूल धर्मशाला के प्रशासन को पुनर्गठित किया गया है और निर्वाचित सदस्यों की परिषद को शासन के सूत्र सौंपे गए हैं।

Hkkjr ljdkj dh ekU;rk % नेहरूजी ने तिब्बत को चीन के सवायत्तशासी प्रांत के रूप में मान्यता देते हुए भी तिब्बत के भविष्य का निर्णय तिब्बतियों द्वारा ही किए जाने का समर्थन किया। संसद में अथवा उसके बाहर कहीं पर भी तिब्बत देश के विषय में बोलते हुए आत्मनिर्णय (सेल्फ डिटर्मिनेशन) के अधिकार का उल्लेख वे अवश्य करते थे। श्री लालाबहादुर शास्त्रीजी उनसे भी आगे बढ़कर तिब्बत की प्रवासी सरकार को मान्यता देने पर भी विचार करने लग गए थे परंतु उन्हें इसका अवसर नहीं मिला। साठ के दशक के अंत से भारत सरकार के तिब्बत विषयक वक्तव्यों में से आत्म–निर्णय वाले अंश निकल गए। अब वे कब जुड़ते हैं देखने की बात है।

^lR;&vkanksyu* % साठ के दशक के अंत में तिब्बती शरणार्थियों के पुनर्वास की प्रक्रिया के संपन्न हो जाने से लोगों में कुछ शिथिलता आती दिखाई दी। इसी तरह धर्मशाला प्रशासन में भी वित्त के अभाव से कार्यों में गिरावट आई। इसे देखते हुए सारनाथ से मेरे कुछ छात्रों और लामा थुपस्तन जुगनेस की पहल से 'सत्य आंदोलन' प्रारंभ हुआ जिसने प्रवास में रहने वाले सभी तिब्बतियों को धर्मशाला प्रशासन को स्वेच्छा से मौलिक–कर, आयकर तथा लाभांश–दान देने के लिए प्रतिबद्धता विषयक प्रस्ताव पारित कराए। इससे धर्मशाला प्रशासन की वित्तीय व्यवस्था कुछ जमी और हर तिब्बती पुनर्वास क्षेत्र में 'सत्य आंदोलन' की उपसमितियां गठित हुईं। इस प्रकार तिब्बती स्वाधीनता आंदोलन को जीवित रखने का निश्चित और सराहनीय प्रयास किया गया है।

f'k{kk vkSj laLd`fr dk foLrkj % तिब्बत से आकस्मिक रूप से भारी संख्या में विद्वानों के बाह्य जगत में आ जाने से प्राचीन भारतीय शिक्षा और संस्कृति की धारा जो तिब्बत में सुरक्षित थी, का प्रचार और प्रसार संपूर्ण विश्व में हुआ जिससे सभी देशों को विशेष रूप से 'विकसित' देशों को, लाभ मिला। आज विश्व में छः सौ से अधिक तिब्बती धार्मिक और शिक्षा विषयक केंद्र स्थापित हो चुके हैं। साठ से अधिक विश्वविद्यालयों में तिब्बती या बौद्ध अध्ययन और शोध विभाग खोले गए हैं। भारत में तिब्बती अध्ययन, बौद्ध अध्ययन, दर्शन तथा इतिहास विषयक अध्ययनों में पिछले तीन दशकों में एक नए युग का आरंभ हुआ है। दलाई लामाजी के कार्यक्षेत्र का संपूर्ण विश्व में विस्तार हुआ है जिससे बहुजन हित संपादित हुआ है। इन सबको अभिशाप में छिपा वरदान मानना चाहिए।

phu ls okrkZ % सन 1978 के अंत से ही चीन ने दलाई लामाजी से वार्ता की इच्छा व्यक्त करनी शुरू कर दी और इसी संदर्भ में चार बार तिब्बती शिष्ट मंडलों ने तिब्बत और चीन की यात्राएं कीं। काफी भाग–दौड़ हुई, परंतु उसका परिणाम आज तक कुछ भी सामने नहीं आया। *(बाद में यूरोपीय संसद और अन्य पक्षों के दबाव में आकर चीन सरकार ने धर्मशाला के साथ 2002 से 2008 के बीच वार्ता की। लेकिन बीजिंग ओलंपिक सफलता पूर्वक संपन्न होने के तुरंत बाद चीनी पक्ष ने तिब्बती प्रस्तावों को अस्वीकार करते हुए वार्ताओं को भंग कर दिया। – संपादक)*

iapl=h; "kkfr ;kstuk % चीन से की गई वार्ताओं के विफल परिणामों के उपरांत और तिब्बत में सैनिकों और शस्त्रों के जमाव, वहां चीनी मूल की जनवृद्धि तथा तिब्बतवासियों के मानवाधिकारों के हनन और परमाणु शस्त्रों के निर्माण–परीक्षण आदि गतिविधियों से उत्पन्न पर्यावरण के असंतुलन आदि के तीव्र गति से प्रभावी होते जाने के क्रम को रोके जाने के उद्देश्य से दलाई लामा जी ने 21 दिसंबर, 1987 को एक पंचसूत्रीय शांति योजना अमेरिकी कांग्रेस में रखी। पुनः 1988 के 15 जून को स्ट्रासबर्ग में यूरोपीय पार्लियामेंट में तिब्बत वार्ता का आधार–प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया जिसमें तिब्बत के विदेशी मामलों और सुरक्षा के अधिकार चीन को देते हुए संपूर्ण तिब्बत को एक संवैधानिक स्वायत्तशासी देश बनाने की संयोजना उपनिहित है। इन दोनों प्रस्तावों को चीन के अतिरिक्त विश्व के अधिकांश देशों

की जनता ने समर्थन दिया है।

vrjk"Vh; lg;kx % पंचसूत्रीय शांति प्रस्ताव को अमेरिकी कांग्रेस, पश्चिम जर्मनी की पार्लियामेंट तथा ग्रीन पार्टी आदि संगठनों के समर्थन मिले। इससे अधिक महत्व इसका यह है कि इस पर विश्व के जन–साधारण का आशातीत समर्थन प्राप्त हुआ जिससे समस्त तिब्बतवासियों को एक नया मनोबल मिला है।

ifjorlu dh ygj % पूर्वी यूरोप में परिवर्तन की एक शांतिपूर्ण लहर आई जो मानव इतिहास में असाधारण है। इससे तिब्बत जैसे देश के पराधीन जन को उल्लेखनीय प्रेरणा मिली है। विशेषतः चीन में युवा छात्र वर्ग ने शांतिपूर्ण परिवर्तन की जो मांग की है वह अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। जन–समूह का निर्मम संहार कर तात्कालिक रूप से उन्हें भले ही दबा दिया गया हो, परंतु उन हजारों तरूणों का बलिदान कभी निष्फल नहीं जा सकता।

ukcy 'kkfr ijLdkj % 1989 में परमपावन दलाई लामाजी को नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किए जाने के कारण विश्व के शांतिप्रिय जन–समुदाय को विशेष रूप से तिब्बतवासियों को सांत्वना और विश्वास की संप्राप्ति हुई है।

milgkj % उपर्युक्त तथ्यों से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि अधिकृत तिब्बती जन–समुदाय जिस प्रकार विषम परिस्थितियों में मानव के मौलिक अधिकारों से वंचित रहकर क्रूर यातनाओं को झेलने के लिए विवश हो गया है उससे अंतर्राष्ट्रीय जगत में तिब्बत का प्रश्न तीव्रतर रूप से जीवंत होकर हमारे समक्ष आ खड़ा हुआ है और उसके पक्ष में निरंतर विवेकशील जन का समर्थन बढ़ता जा रहा है।

(1990 के एक व्याख्यान पर आधारित)

——

तिब्बत को भी उसके मानवाधिकार मिलने चाहिएं

भारतीय प्रतिनिधि **Jh jQhd tdkfj;k** का 1965 में सं. राष्ट्र की आम सभा में तिब्बत के प्रश्न पर दिया गया भाषण

आप प्रतिनिधि लोग अच्छी तरह जानते हैं कि सं राष्ट्र संघ में पिछले 15 वर्षों में कई बार तिब्बत के प्रश्न पर विचार होता आया है। इस प्रश्न पर यहां सबसे पहले 1950 में महासभा के पांचवें सम्मेलन में विचार किया गया था लेकिन इसे कार्यवाही में नहीं रखा जा सका। वास्तविकता तो यह है कि उस समय मेरे देश ने ही इस प्रश्न को एजेंडा में शामिल करने का विरोध किया था क्योंकि तब हमें चीन ने यह विश्वास दिलाया था कि वह इस समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने के लिए उत्सुक है।

लेकिन तिब्बत में स्थिति सुधरने के बजाए बिगड़ती ही गई। तब से यह प्रश्न राष्ट्र संघ की महासभा के सामने विचार के लिए कई बार आ चुका है। 1959 में महासभा के 14 वें सम्मेलन में हुई बहस में हमारे प्रतिनिधिमंडल ने भाग लिया था।

तब हालांकि हमने इस सवाल पर हुए मतदान का बहिष्कार किया था लेकिन फिर भी हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि इस क्षेत्र में जो कुछ भी हो रहा है उससे हम भी प्रभावित होते हैं तथा उसके प्रति हमें गहरी चिंता है क्योंकि भारत और तिब्बत के बीच बहुत नजदीकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंध हैं।

तब यह हमारी दुराशा ही थी कि चीनी पक्ष उचित व्यवहार करेगा और परिणामस्वरूप तिब्बत की जनता के उत्पीड़न का अंत होगा। लेकिन अब लंबा समय बीतने के बाद हम यह देख रहे हैं कि हमारी आशाएं एकदम निराधार थीं। ज्यों–ज्यों समय बीत रहा है त्यों–त्यों हालत पहले से भी अधिक बिगड़ती जा रही है। यहां की ये परिस्थितियां चिल्ला चिल्ला कर पूरी मानवता का ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रही हैं।

हम सभी लोग जानते हैं जब से चीन ने तिब्बत पर कब्जा किया है तब से तिब्बत की जनता पर जिस तरह के घोर अमानवीय अत्याचार लगातार होते चले आ रहे हैं उसका दुनिया के पूरे इतिहास में कहीं उदाहरण नहीं मिलेगा। तथाकथित 'जनतांत्रिक सुधार' और 'प्रतिक्रान्ति' से लड़ने के नाम पर चीनियों ने वहां सबसे घटिया दर्जे का सामूहिक मानव हत्याकांड किया है और एक अल्पसंख्यक जाति का दमन किया है।

आरंभ में हम भारतीयों ने यह सोचा था कि शायद बदली हुई नई स्थिति में तिब्बतियों और चीनियों में और नजदीकी संपर्क बनने के कारण दोनों के बीच पहले से अधिक गहरे संबंध उभर कर आएंगे। असल में 1959 में मेरे देश में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू और चीनी प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन–लाई के बीच लंबी बातचीत के परिणामस्वरूप श्री नेहरू को यह विश्वास हो गया था कि दोनों पक्षों में इस सवाल पर समझौता हो जाएगा। माननीय दलाई लामा ने भी श्री नेहरू के सामने ऐसी ही आशा प्रकट की थी। लेकिन बाद की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि चीन कभी भी अपने वायदों पर अमल करने की नीयत नहीं रखता था।

Lok;Ùkrk dk vk'okl u : हालांकि चीन ने आश्वासन दिया था कि वह तिब्बत को स्वायत्तता देगा और वहां के लोगों की सांस्कृतिक व धार्मिक विरासत की रक्षा करेगा। लेकिन जैसा कि 1959 में न्यायशास्त्रियों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग (इंटरनेशनल कमीशन आफ जूरिस्ट्स) ने अपनी जांच रिपोर्ट में यह स्पष्ट कर दिया था कि चीन ने तिब्बत में– ''वहां के लोगों की सामूहिक हत्या करके और शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न करके वहां की राष्ट्रीयता तथा उसके अनुवांशिक, जातीय और धार्मिक व्यक्तित्व को नष्ट करने का प्रयास किया है।''

पूरा विश्व यह जानता है कि दलाई लामा द्वारा, जो कि तिब्बत के सबसे बड़े नेता हैं और जिन्हें सभी भारतीय एक धार्मिक नेता के रूप में आदर की दृष्टि से देखते हैं, ल्हासा से भागने और भारत में शरण लेने का तात्पर्य तिब्बत को गुलाम बनाए जाने और वहां हो रहे दमन का विरोध करना था। आज मेरे देश में तिब्बती शरणार्थियों की संख्या हजारों में है जो अपना घर बार व देश छोड़ कर अपने नेता के साथ वहां शरण लिए हुए हैं।

इन शरणार्थियों को अभी दयनीय हालत में ही रहना होगा। क्योंकि चीन ने पूरे तिब्बत को एक फौजी छावनी में बदल दिया है और वहां रहने वाले तिब्बती अपने ही देश में गुलामों का जीवन जीने पर मजबूर हो रहे हैं।

हालांकि भारत और तिब्बत के बीच सदियों पुराने संबंध हैं और युगों से ये संबंध धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में लगातार फलते फूलते रहे हैं। लेकिन फिर भी हम तिब्बत की समस्या का राजनैतिक उपयोग नही करना चाहते। हाल ही के वर्षों में इन तथ्यों के बावजूद कि दलाई लामा और उनके हजारों अनुयाइयों ने भारत में शरण ली है और चीन ने तिब्बत की ही धरती से हमारे देश की उत्तरी सीमाओं पर हमला किया, हमने इस स्थिति का राजनैतिक फायदा उठाने का प्रयास नहीं किया।

इसमें कोई शक नहीं कि बार–बार चीन द्वारा तिब्बत वासियों पर किए जाने वाले अत्याचारों के बावजूद हमने अत्यधिक संयम बरता है। इसका कारण यह है कि हम यह विश्वास करते हैं कि असली समस्या जिसे हल किया जाना चाहिए वह यह है कि भोले भाले तिब्बत वासियों पर महज इसीलिए अत्याचार किए जा रहे हैं क्योंकि वे चीनियों से जातीय और सांस्कृतिक आधार पर अलग लोग हैं।

इस समय यदि मैं इस सम्मानित सदन के सामने कुछ तथ्य रखूं तो अनुचित नहीं होगा। तिब्बत के प्रति चीन की नीति से संबंधित ये तथ्य ऐसे हैं जिन्हें किसी भी आधार पर झुठलाया नहीं जा सकता। ये तथ्य हैं :–

1. तिब्बत व चीन के बीच 1951 में जो समझौता हुआ था उस पर बिल्कुल अमल नहीं किया गयाा और यह मृतप्राय रहा।

2. चीन ने अपनी लगातार बढ़ती फौजी ताकत से तिब्बत की स्वायत्तता का पूरी तरह गला घोंट दिया।

3. तिब्बती मंदिरों, नागरिकों तथा तिब्बत के सरकारी संस्थानों की संपत्ति को जबरदस्ती हथिया लिया गया।

4. तिब्बतियों की धार्मिक स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया गया तथा बौद्ध धर्म, लामा व्यवस्था, बौद्ध मंदिरों, तीर्थ स्थलों और महत्वपूर्ण भवनों को समाप्त किया जा रहा है।

5. तिब्बतियों को किसी भी तरह की जानकारी प्राप्त करने या अपने विचार प्रकट करने की आजादी नहीं दी गयी है।

6. ऐसे तिब्बतियों की जो कि तिब्बत पर चीनी शासन के विरोध में सक्रिय रूप से काम करते रहे हैं उनकी हत्या किए जाने, उन्हें जेल में डालने और उन्हें उनके इलाके से निकाल दिए जाने की योजनाबद्ध नीति अपनायी गयी है।

7. चीन द्वारा भारी संख्या में तिब्बती बच्चों को तिब्बत से चीन ले जाया जा रहा है जिससे उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को समाप्त किया जा सके, इन्हें चीनी विचारधारा के सांचे में ढाला जा सके और उनके दिलों से तिब्बती धर्म, संस्कृति और जीवन पद्धति को मिटाया जा सके।

8. इसी तरह तिब्बत में भारी संख्या में चीनियों को बसाया जा रहा है जिससे पूरे तिब्बत का चीनीकरण किया जा सके और तिब्बती जनता के मुकाबले वहां की जनसंख्या में चीनियों की संख्या को बढ़ाया जा सके।

तिब्बती जनता की भावनाओं और इच्छाओं को पूरी तरह कुचल कर जिस निर्दयता से ये अत्याचार किए जा रहे है वे न केवल उन मानवीय उसूलों के एकदम खिलाफ हैं जिन्हें आम तौर पर स्वीकार किया जाता है बल्कि एक पूरी जाति को कुचले जाने के भयावने षड़यंत्र का चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। ये सारे अत्याचर कुल मिलाकर उन सभी अत्याचारों से अधिक हैं जो किसी भी उपनिवेशवादी शक्ति ने अब तक अपने गुलाम लोगों पर किए हैं। यही कारण है कि पहले 1959 में और बाद में 1961 में दो बार सं. राष्ट्र संघ में प्रस्ताव पारित किए गये जिनमें चीन द्वारा तिब्बतियों के मानवाधिकार छीनने की आलोचना की गयी थी और चीन से तिब्बतियों को ये अधिकार वापिस दिए जाने की अपील की गयी थी। लेकिन ये सब दलीलें चीन द्वारा अनसुनी कर दी गयीं।

माननीय अध्यक्ष महोदय, क्या ऐसी स्थिति पूरी मानवता को चुनौती नहीं है? क्या हम यहां उपस्थित देश, जो कि सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र और अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र को समर्थन देने का दम भरते हैं, उस भयानक त्रासदी का महज दर्शक मात्र बन कर रह सकते हैं जिसे अत्याचारी और दमनकारी सरकार द्वारा तिब्बत में खेला जा रहा है। हाल ही में दलाई लामा ने, जो कि आत्म संयम, शांति, बल्कि नम्रता का एक विशिष्ट उदाहरण हैं, महासचिव महोदय को भेजी गयी अपील में (यह अपील दस्तावेज ए–6481 में शामिल है) इस संस्था को चेतावनी दी है कि यदि चीन को नियंत्रित नहीं किया गया तो चीन ''तिब्बती जाति को समूल नष्ट करने के लिए और भी भयानक हथकंडे अपनाने की कोशिश करेगा।''

माननीय अध्यक्ष महोदय, आज तिब्बती जनता जिन मुश्किलों का सामना कर रही है उनकी कोई सीमा नहीं है। यहां तक कि तिब्बती जनता के भोजन पर भी चीनियों का नियंत्रण है। चीन पहले तिब्बत में मौजूद अपनी फौज के भोजन की व्यवस्था करता है और उसके बाद जो कुछ बचता है उसे स्थानीय तिब्बती जनता के लिए छोड़ता है।

तिब्बत में जो दर्दनाक हालत है और उसमें जिस तरह लगातार बिगड़ाव आ रहा है उसके प्रति मेरे प्रतिनिधि मंडल का चिंतित होना एकदम स्वभाविक है। पिछले साल से चीन ने अपने उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत तेजी से कदम बढ़ाए हैं जिसे वह ''तिब्बत को चीन में आत्मसात'' किए जाने की बात कहता है। 17 दिसंबर 1964 को चीन ने दलाई लामा को औपचारिक रूप से तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र की तैयारी समिति के अध्यक्ष पद से हटाने की घोषणा करते हुए उन्हें ''विस्तारवाद और विदेशी प्रतिक्रियावादियों का न सुधरने वाला कुत्ता'' कहा है। इसके तुरंत बाद 30 दिसंबर को ही पंचेन लामा को भी, जिन्हें अपने साथ मिलाने के लिए चीन ने बहुत जोर लगाया था, हटा दिया गया और उन्हें ''गुलाम पालने वाले प्रतिक्रियावादी मालिकों के गिरोह का सरदार घोषित कर दिया गया।''

और इस तरह चीन ने तिब्बत के साथ अपने बचे खुचे राजनैतिक व उसके राजनैतिक–धार्मिक

ढांचे से भी संबंध समाप्त कर लिया है और अपनी उस नीति पर भी गहरा आघात किया है जिसके अंतर्गत वह तिब्बत की 'विशिष्ट परिस्थिति' की बात कहता रहा है। और जिस तरह तिब्बत को कथित रूप से आत्मसात किए जाने का कार्य आगे बढ़ रहा है उसी गति से तिब्बती किसानों से उनकी जमीन छीनने और उनकी संपत्ति को बांटे जाने का काम भी तेज होता जा रहा है। क्योंकि बार–बार सामंती–तत्वों की परिभाषा को विस्तृत किया जा रहा है जिससे कि अधिक से अधिक किसान उस परिभाषा में आ जाएं।

असल में इन तथाकथित भूमि सुधारों का लक्ष्य चीनी सरकार की राजनैतिक चालों को पूरा करना और अंत में सभी चीनी किसानों को चीनी व्यवस्था के गुलामों में बदलना है। असलियत यह है, कि पीकिंग के शासक इस बात पर तुले हुए हैं कि पूरी तिब्बती जाति को नष्ट कर दिया जाए। उनकी तिब्बतयों के प्रति नीति डराने धमकाने की है ;और यही नीति औरों के बारे में भी है। वे दूसरें देशों में क्रान्ति के निर्यात की नीति की घोषणा करते हैं तथा न केवल युद्ध को अवश्यंभावी मानते हैं बल्कि उसे आवश्यक भी मानते हैं। और इस तरह शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का गला घोंटने की कोशिश करते हैं।

लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि हम निराश हो जाएं? किसी भी जाति का बहुत देर तक दमन नहीं किया जा सकता। विश्व समाज में मेरा पूरा विश्वास है। मैं यह मानता हूं कि यह समाज तिब्बत की जनता को उसकी उन सब स्वतंत्रताओं को वापिस दिलाने में सहायक होगा जिनका हमने अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र में पूरे समर्पण की भावना से समावेश किया है।

जहां तक भारत का संबंध है हम सं. राष्ट्र संघ को यह आश्वासन दिलाते हैं कि पहले की तरह हम आगे भी तिब्बती शरणार्थियों को सभी सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे और ऐसा हर संभव प्रयास करेंगे जिससे उनकी कठिनाइयों और दुखों को कम किया जा सके। दलाई लामा जो अब कई सालों से हमारे यहां रह रहे हैं, अपनी धार्मिक व दूसरी गतिविधियों को हमारी रोक टोक के बिना चला रहे हैं। हम उन्हें व उनके सीधे–सादे व शांति प्रिय लोगों को यह आजादी और अपना आतिथ्य देते रहेंगे हालांकि हम हृदय से यह आशा करते हैं कि वह दिन जल्दी ही आएगा जब वह और उनके अनुयायी अपनी मातृभूमि को वापिस लौट सकने की हालत में आ जाएंगे।

ये सब वे कारण हैं जिनके आधार पर हम तिब्बती जनता का पूरी तरह और पूरे दिल से समर्थन करते हैं। जिस तरह की दयनीय स्थिति में वे हैं और जिस भयानक ढंग से पीकिंग के शासकों के हाथों उन्हें दमन सहना पड़ रहा है उसके लिए हमारी पूरी सहानुभूति उनके साथ है। हालांकि इसी पीकिंग सरकार ने हमें उकसाया है और लगातार उकसाने की कोशिश कर रही है। फिर भी हमने चीन के साथ अपने टकराव में तिब्बती शरणार्थियों को कभी बंधक के रूप में प्रयोग नहीं किया है।

हम इस बात में विश्वास नहीं करते कि किसी एक जाति के लोगों के दुखों को दूसरी जाति की तोपों के बारूद की तरह इस्तेमाल किया जाए। हमारा तो यह विश्वास है कि अपने पड़ोसियों के साथ संबंधों में संयम बरता जाए। हालांकि सच तो यह है कि हमारे कुछ पड़ोसियों ने हमारे साथ अपने जुबानी और कार्य व्यवहार से निहायत घटिया दर्जे की पाशविकता का परिचय दिया है।

आखिर में मैं सं. राष्ट्र संघ की ओर से आशा व्यक्त करना चाहूंगा कि चीन में दमन और दुख की मौजूदा हालत समाप्त होगी और तिब्बत की जनता भी उन मानवाधिकारों को प्राप्त करेगी जिन्हें प्रयोग करने के अधिकार का सौभाग्य हम सब देशों के लोगों को है।

माननीय अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रतिनिधिमंडल मतदान में प्रस्तावित मसौदे के समर्थन में वोट देगा और मैं ऐसा ही सुझाव इस सम्मानित सदन के दूसरे सदस्यों को भी देता हूं।

तिब्बत : संसार का अंतिम उपनिवेश

–निर्मल वर्मा

प्रबुद्ध भारतीय विचारक और हिंदी साहित्यकार द्वारा 1997 में दिया गया वक्तव्य

तिब्बत हमारी शती का अंतिम उपनिवेश है जिसकी सांस्कृतिक अस्मिता कभी भी नष्ट हो सकती है। 'बीसवीं सदी की उल्लेखनीय घटनाओं की रिपोर्ट'– यह किसी पत्रकार की नाटकीय अतिशयोक्ति नहीं है, बल्कि यह हमारे पड़ोसी देश की त्रासद नियति का भयावह खुलासा है जिसकी संस्कृति, राजनीतिक अस्मिता और पर्यावरण को पिछले पैंतीस वर्षों से योजनावत तरीकों से ध्वस्त किया जा रहा है। हमारे समय में नात्सियों द्वारा यहूदियों के नरसंहार–जेनोसाइड– के बाद शायद यह दूसरी घटना है जब एक विशिष्ट जन–समूह की समूची जातीय नस्ल को नष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है– अंतर सिर्फ इतना है कि जो कुकृत्य नात्सी नेता लुके–छिपे कर रहे थे, आज यह दिन–दहाड़े, खुलेआम हो रहा है, और जो राष्ट्र इसके लिए उत्तरदायी है, उस पर उंगली उठाने वाला कोई नहीं। क्या यह संभव है कि हमारे एक निकटवर्ती देश, जिसके साथ हमारे हजारों वर्ष पुराने सांस्कृतिक संबंध रहे हैं, जिसके लाखों निवासी अपनी भूमि से उन्मूलित होकर हमारे देश में शरणार्थियों की तरह रह रहे हों और हम मूक दर्शक की तरह मुंह में ताला लगाए उसकी सांस्कृतिक संपदा को लुप्त होते देखते रहें और कुछ न कहें?

यह सत्य है कि 1959 में तिब्बत पर चीनी आक्रमण के बाद भारतीय सरकार ने दलाई लामा और उनके देशवासियों को न केवल शरण दी है, बल्कि उनकी शैक्षिक संस्थाओं और धर्म–संस्थानों को प्रचुर आर्थिक सहायता भी है। यदि आज तिब्बत के बाद तिब्बत की सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित रह सकी है, तो इसका बड़ा श्रेय जवाहर लाल नेहरू की सौहार्दपूर्ण नीतियों को जाता है। उनमें न केवल तिब्बत की विपदा के प्रति सहानुभूति का भाव था, बल्कि दलाई लामा के प्रति एक गहरा पाप–बोध भी था, जो बरसों नेहरू जी की सलाह पर चीनी सरकार के छलावों का शिकार बनते रहे। चीन की कम्युनिस्ट सरकार के प्रति नेहरू जी ने जो सुखद भ्रम पाल रखे थे, जब तक उनके प्रति मोह भंग होता, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। अपने समस्त समझौतों को तोड़कर जब चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया, तब वह उससे कम अनैतिक और भयावह नहीं था, जो एक समय में नात्सी जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया के साथ किया था। इन दो ऐतिहासिक त्रासदियों के बीच एक और अद्भुत समानता थी– बड़े महाबली राष्ट्रों की तटस्थ चुप्पी। हिटलर की महत्वाकांक्षाओं को तुष्ट करने के जो घातक परिणाम समूची मानवता को भुगतने पड़े, उन्हें भुलाकर आज चीन के साथ हर तरफ से जो आर्थिक और व्यापारिक संबंधों को बनाने की आकुलता दिखाई देती है, इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है? इतिहास से क्यों हम कुछ नहीं सीख सकते? क्या इसीलिए वह अपने को दुहराता रहता है?

पश्चिमी राष्ट्रों के लिए किसी देश में मानवाधिकारों का प्रश्न तब तक महत्व नहीं ग्रहण करता, जब तक वह देश स्वयं उनके स्वार्थों और राजनीतिक चालों की शतरंज में उपयोगी सिद्ध नहीं होता। तिब्बत की यातना के प्रति यदि इतनी गहरी अवहेलना और सनकीपन बढ़ता जाता है, तो सिर्फ इसलिए

नहीं कि कुवैत, इराक, इस्राइल की तरह वह किसी सत्तामूलक कूटनीति के खेल में फिट नहीं होता, बल्कि इसलिए भी—और यह महत्वपूर्ण है— कि तिब्बत अन्य राष्ट्रों की तरह मात्र एक राजनीतिक इकाई नहीं है, उसका एक विशिष्ट सांस्कृतिक चरित्र है, जो शताब्दियों से बौद्ध धर्म की परंपराओं, आस्थाओं और निष्ठाओं से निर्मित हुआ है— सेक्यूलर देशों की भीड़ में एकमात्र धार्मिक संस्कारों का वाहक भिक्षुक देश, ऐसे देश के लिए राजनीतिक स्वायत्ता सिर्फ एक साधन है, जिसके आधार पर वह बिना किसी डर व दबाव के अपनी विलक्षण और अनूठी अस्मिता को सुरक्षित रख सके।

कुछ महीने पहले धर्मशाला में होने वाली एक विचार—गोष्ठी में बौद्ध भिक्षुक और मनीषी सामदोंग रिम्पोछे जी ने अपने मर्मस्पर्शी शब्दों में इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए कहा था कि जिस बड़े पैमाने पर तिब्बत की सांस्कृतिक धरोहर को चीन द्वारा नष्ट किया जा रहा है, प्राचीन पुस्तकालयों से पांडुलिपियों को निकालकर जलाया जाता है और उनकी मूल्यवान कवर जिल्दों को अलग करके डॉलरों के मोल बेचा जाता है, धार्मिक संस्थानों को दूषित किया जाता है और हजारों की संख्या में तिब्बती निवासियों को अपना देश छोड़कर चीन में बसने को बाध्य किया जाता है, ताकि बड़ी संख्या में चीनियों को तिब्बत में बसाकर तिब्बतियों को अपने ही घर में 'अल्पसंख्यक' सिद्ध किया जा सके, उसे देखकर लगता है कि कुछ वर्षों बाद तिब्बत की सांस्कृतिक और धार्मिक अस्मिता बिलकुल नष्ट हो जाएगी। उसके नष्ट हो जाने के बाद यदि तिब्बत को अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता मिल भी जाती है, तो उसका राख बराबर भी मूल्य नहीं रहेगा। आज जब हमारे देश में राजनीति और धर्म के बीच अलगाव की बात की जाती है, तो रिम्पाछेजी के ये उद्‌गार हमारे लिए अतिरिक्त रूप से प्रासंगिक हो जाते हैं।

धर्म और संस्कृति की यही वह समान विरासत है, जो भौगोलिक सीमाओं से कहीं अधिक सार्थक रूप में तिब्बत को भारत के इतना निकट ला देती है। क्या हमें यह कुछ अजीब नहीं लगता कि दोनों देशों के बीच जिस प्राचीन और पवित्र संबंध की महिमा का गुणगान दलाई लामाजी अपने हर भाषण में करते हैं, उसके बारे में हमारे अधिकांश राजनेता और रेडिकल बुद्धिजीवी चुप रहना पसंद करते हैं। विश्वास नहीं होता कि इस चुप्पी का कारण केवल अज्ञान हो सकता है। आखिर पिछले अनेक वर्षों से राहुल सांकृत्यायन जैसे मनीषी पर्यटक, राममनोहर लोहिया जैसे प्रबुद्ध राजनीतिज्ञ, आचार्य नरेंद्र देव और गोविंद चंद्र पांडे जैसे बौद्ध दर्शन के विज्ञ इतिहासकारों ने इस पारंपरिक संबंध को अनेक कोणों से उजागर किया है। यह उल्लेखनीय है कि तिब्बत पर आक्रमण करने से पहले स्वयं चीन के कम्युनिस्ट नेता भारत—चीन की सीमा वार्ताओं में तिब्बत और भारत के बीच विशेष सांस्कृतिक संबंध को स्वीकार करते आए थे। आज यदि वे इसकी चर्चा करते हुए कतराते हैं, तो बात समझ में आती है। जो बात समझ में नहीं आती, वह हमारे राजनेताओं की चुप्पी है। क्या तिब्बत हजारों वर्षों से चीन और भारत की सीमाओं को जोड़नेवाला 'सेतु' बफर स्टेट नहीं रहा है? क्या उसके प्रतिनिधियों की शिरकत के बिना होने वाली कोई भी सीमा वार्ता सफल हो सकती है?

यह इसलिए भी जरूरी है कि चीन के आधिपत्य तले आज विकास के नाम पर जो कुछ भी दुर्गति तिब्बत में हो रही है, उसका दुष्प्रभाव समूची हिमालय—श्रृंखला में बसे प्रदेशों के पर्यावरण — उसके नदी—नालों, उसकी वन्य संपदा, उसके वायुमंडल पर पड़ता है। हममें से बहुतों को याद होगा कि एक समय में हमारे देश के प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और राजकर्मियों ने इसी दुर्गति और विकास की दुहाई देकर तिब्बत पर चीन के आक्रमण को वैध और वांछनीय ठहराया था। इस औचित्य के पीछे उनके मनमें तिब्बत की 'प्रतिक्रियावादी, पिछड़ी, अंधविश्वासों' धार्मिक परंपराओं के प्रति जो वितृष्णा थी, उसकी चर्चा मैं यहां नहीं करूंगा। देखने लायक बात है कि प्रगतिवाद और 'धर्मनिरपेक्षता' का रिश्ता कोई नई बात नहीं है। मैं यहां इस प्रगति अभियान के उन प्रत्यक्ष परिणामों की ओर संकेत करना चाहूंगा, जिसके

चलते आज तिब्बत जैसा शांतिप्रिय देश चीन के सैन्यीकरण का मुख्य अंग बन चुका है। जिस देश को कभी 'दुनिया की उजली, स्वच्छ और सफेद छत' माना जाता था, आज वह आणविक अस्त्रों का कचरा फेंकने का कूड़ादान बन गया है।

इसके कारण धीरे–धीरे उन सब नदियों का जल भयानक रूप से दूषित हो गया है, जिनका उद्गम–स्थल तिब्बत है। ये नदियां–ऑक्सस, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, इरावदी आदि–दक्षिणी एशिया के अनेक देशों में बहती हैं, जिनमें भारत और बांग्लादेश जैसे घनी आबादी वाले देश भी हैं। सबसे चिंतनीय बात यह है कि न केवल चीन, बल्कि अमेरिका और यूरोप के अनेक देशों ने भी चीन को विदेशी मुद्रा देकर यह छूट हासिल कर ली है कि वे भी तिब्बत में अपना आणविक कचरा फेंक सकें। तिब्बत के जंगलों को काटकर उसकी लकड़ी को जिस पैमाने पर चीन में भेजा जाता है, यदि यह प्रक्रिया कुछ वर्षों तक जारी रही, तो तिब्बत का समूचा वन्य स्थल एक मरूस्थल में परिणत हो जाएगा। जब हमारे प्रतिनिधिमंडल चीन की यात्रा से लौटकर उसकी औद्योगिक प्रगति और भौतिक संपन्नता की बात करते हैं, तो शायद भूल जाते हैं कि वह किस मूल्य पर और किसके लहू–प्राणों पर अर्जित की हुई प्रगति और संपन्नता है। यदि यह सिर्फ तिब्बत के पर्यावरण के दूषण का ही प्रश्न होता तो हम उसे इतना तूल न देते। उसे आधुनिक युग की आम बीमारी मानकर छुट्टी कर लेते। किंतु तिब्बत और भारत जैसे परंपरा–संपन्न देशों में पर्यावरण का गहरा रिश्ता उसकी सांस्कृतिक विशिष्टता के साथ जुड़ा होता है। ये जंगल, पहाड़, नदी–नाले केवल भौगोलिक 'वस्तुएं' नहीं हैं। ये वे प्रतीक और रूपक हैं, जिनके सहारे एक संस्कृति अपने साहित्य के अपादान, अपनी आस्थाओं के आलोक–द्वीप, अपनी मिथक कथाओं की प्राणवत्ता हासिल करती है। जब हम किसी जंगल को नष्ट करते हैं, किसी नदी को दूषित करते हैं, उनके बीच सांस लेने वाली अनेक कथाएं, प्रथाएं, अनुष्ठान, स्मृतियां और स्वप्न अपने आप मुरझाने लगते हैं।

यह बात तिब्बत जैसे देश पर और भी अधिक सच्चाई से लागू होती है, जिसके निवासियों ने हजारों वर्षों से अत्यंत परिष्कृत स्तर पर अपने ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र और महायान बौद्ध दर्शन की रहस्य–गुत्थियों को अपनी संचित परंपराओं में संयोजित किया है। हिमालय का समूचा पर्वतीय अंचल – लद्दाख, कश्मीर, तिब्बत, नेपाल– एक तरह से उसी समान सांस्कृतिक संपदा की धरोहर को संभाले हैं, जो भारत की मनीषा से इस तरह अंतर्गुंफित है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना असंभव लगती है। मानव विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान लेवी स्त्रॉस ने एक बार कहा था, कि जब हम किसी विशिष्ट जीव, पौधे, वृक्ष की नस्ल नष्ट कर देते हैं, तो वह हमेशा के लिए लुप्त हो जाती है, जैसे कभी उसका अस्तित्व रहा ही न हो। आज यदि हम तिब्बत की इस अनमोल सांस्कृतिक अस्मिता को अपनी उपेक्षा और चुप्पी के कारण नष्ट होने देते हैं, तो वह हमारी नैतिक कायरता का अद्भुत प्रमाण तो होगा ही, अपनी सांस्कृति विरासत के साथ अक्षम्य विश्वासघात भी होगा।

——

भारत की चीन नीति कैसी हो?

– टी. एन. कौल

प्रस्तुत लेख में श्री टी. एन. कौल द्वारा प्रस्तुत किए गये उस विवेचन का सारांश दिया गया है जो 9 अगस्त 1980 को नयी दिल्ली में 'भारत–चीन संबंध' विषय पर आयोजित संगोष्ठी के समापन अवसर पर उन्होंने प्रस्तुत किया था। श्री कौल न केवल भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में एक महत्वपूर्ण अधिकारी रहे हैं बल्कि श्री नेहरू से श्रीमती गांधी के समय तक चलने वाले अपने लंबे कार्यकाल में उन्होंने भारतीय विदेश नीति को बहुत निकट से परखा और उसे दिशा भी दी।

इसे मेरा सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, पंचशील समझौते पर चीन के साथ हुई वार्ता में मैं भी शामिल रहा हूं। आज इस संगोष्ठी में मैं कुछ तथ्यों का उद्घाटन कर रहा हूं जो इस संदर्भ में प्रासंगिक सिद्ध हो सकते हैं कि चीन के साथ हम कब और कैसे संबद्ध मामलों पर बातचीत करें अथवा हमारी बातचीत का प्रयोजन क्या हो।

nky e dkyk : आरंभ में मैं आपका ध्यान एक तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। जब हमने चीन के सामने एक पच्चीस वर्षीय संधि का सुझाव रखा था तब चीनी नेताओं ने इसे पांच वर्ष तक सीमित रखने पर जोर दिया था। इससे मेरे मन में संदेह उपजा। आखिर में चीन संधि की अवधि आठ वर्ष रखने पर असहमत हो गया।

पीकिंग से लौटने पर मैंने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में मैंने कहा था कि संभवतः चीन की मनस्थिति यह है कि वह तिब्बत और अन्य दूरस्थ क्षेत्रों पर पांच से आठ वर्ष में अपना कब्जा जमा लेगा। अतः हमारे लिए यही उपयुक्त समय है कि हम उन सभी क्षेत्रों पर जिन्हें हम भारतीय क्षेत्र समझते हैं अपना कब्जा मजबूत करें।

श्री नेहरू ने मेरे इन सुझावों पर अपनी स्वीकृती दे दी और इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई के लिए वित्त, रक्षा और गृह मंत्रालय को निर्देश दिये। किंतु संबद्ध मंत्रियों की प्रतिक्रिया विचित्र रही –– गृहमंत्री का कहना था कि हमारे पास न तो जनशक्ति है न साधन हैं। वित्तमंत्री की टिप्पणी थी कि हमारे पास वित्तीय साधनों का अभाव है तथा रक्षा मंत्री ने कहा था कि चीन से हमें कोई खतरा नहीं है।

Hkkjh Hkwy : दिलचस्प बात यह है कि इन मंत्रियों का दृष्टिकोण बाद में बदल गया। मैं इन मंत्रियों का नाम नहीं लेना चाहता। इस सारे घटनाक्रम को लेकर मेरा निष्कर्ष यही है कि पंचशील समझौते की मूलभूत कमजोरी यही रही कि हमने अपने सामजिक हितों की उपेक्षा की। यदि हम 1954 और उसके बाद अपने रक्षा हितों पर उचित ध्यान देते तो शायद 1962 की दुर्भाग्यपूर्ण घटना नहीं होती।

चीन के साथ पंचशील समझौता करते समय पं. नेहरू ने सोच समझकर खतरा मोल लिया था। इस समझौते को लेकर वह कतई भ्रम में नहीं थे बल्कि काफी आशावान थे। एक बार उन्होंने मुझसे इस संबंध में एक बात कही थी कि ''जब चीन कमजोर और विभाजित था तब ब्रिटेन सीधे सीधे हमारी उत्तर पूर्वी सीमाओं तथा तिब्बत की उपेक्षा कर सकता था। किंतु मैं नहीं जानता कि एक मजबूत और

जागृत चीन भविष्य में क्या करवट लेगा। चीन हमेशा विस्तारवादी रहा है। इसके बावजूद हमें उसके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करना चाहिए।''

श्री नेहरू ने मुझे बताया था कि ''अमेरिका इस समय चीन विरोधी नीति अपना रहा है और वस्तुतः चीन विश्व बिरादरी में एकदम अलग–थलग पड़ गया है। अतः यदि एशिया के ये दो बड़े राष्ट्र चीन और भारत, मित्र बन जाएं तो इस क्षेत्र में शांति एवं स्थिरता की स्थापना में मदद मिल सकती है।'' इस सबके बावजूद श्री नेहरू चीन के विस्तारवादी इरादों से अवगत थे।

तमाम कथित क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद चीन का मुख्य संकट नेतृत्व का है जिस पर विचारधाराओं की गौण लेकिन मुखर व्याख्या समाहित रहती है। किंतु मोटे तौर पर चीन की विदेश नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। माओ की विदेश नीति अब भी जारी है। इस क्षेत्र और संपूर्ण एशिया के प्रति चीनी–अमरीकी नीतियों, चीन–जापान पुनर्मिलन तथा नेटो व अन्य अधिकांश पश्चिमी शक्तियों के वरद हस्त के कारण स्थिति अब शायद अधिक खतरनाक हो गयी है।

यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि इस क्षेत्र के कुछ देश, विशेषकर आसियान समूह के सदस्य देश जहां की आबादी का बहुतांश चीनी है तथा जिन्हें चीन से सीधा खतरा है अथवा जिन्हें चीनी घुसपैठ और तोड़फोड़ की कार्रवाइयों का अनुभव है, अब भी यह सोचते हैं कि उन्हें वास्तविक खतरा वियतनाम से है न कि चीन से। इन देशों की धारणा का आधार उनका भय है।

पश्चिमी देशों के साथ उनका गठजोड़ एक विवादास्पद विषय है। किंतु जहां तक भारत का संबंध है, यह स्पष्ट है कि हिन्द–चीन में घटित घटनाएं दक्षिण पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया में शांति और स्थायित्व के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं।

उधर चीन द्वारा अपने तथाकथित एकमुश्त प्रस्ताव के तहत लद्दाख में अपनी तथाकथित वास्तविक नियंत्रण रेखा को बनाये रखना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। चीन द्वारा निर्मित काराकोरम और अक्साई चिन राजमार्ग, पाकिस्तान के साथ दूसरा गठजोड़ तथा हिन्द चीन के चीनी आधिपत्य में आने की आशंका न केवल आसियान देशों बल्कि भारत सहित पूरे दक्षिण पूर्व एशिया के लिए भावी खतरे की घंटी है।

phuh 0;ogkj : आवश्यकता इस बात की है कि हम इन संभावित खतरों और चेतावनियों का गहन चिंतन और वस्तुपरक भाव से मूल्यांकन करें। हम इस तथ्य को नहीं भूल सकते कि 1954 के पंचशील समझौते को ताक पर रखकर चीन ने 1962 में हमारे विरुद्ध व्यापक पैमाने पर सैनिक कार्रवाई की तथा लद्दाख में हमारा काफी बड़ा भू–भाग हड़प कर वहां अपने तथाकथित अधिकार जताने की कोशिश की।

पड़ोसी राज्यों के बीच सीमा विवाद हमेशा रहे हैं किंतु जिस बात से स्व. नेहरू और मेरी पीढ़ी के भारतीय व अन्य लोग आश्चर्यचकित हैं वह यह है कि चीन ने पंचशील समझौते के अंतर्गत बातचीत के द्वार बंद करके तथा राजनयिक मर्यादाओं का सरासर उल्लंघन कर आपसी विवादों को सुलझाने के लिए अपनी सैनिक शक्ति का सहारा लिया। हम इस वास्तविकता को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

हमें भविष्य की खातिर अतीत को आड़े नहीं आने देना चाहिए। किंतु अतीत की प्रासंगितकता का आभास हमें होना ही चाहिए। जो घटनायें घटी हैं उनसे हम भली भांति अवगत हैं। चीन ने न केवल उत्तर–पूर्वी सीमांत की हमारी जनजातियों और नक्सलपंथियों के असंतोष का नाजायज फायदा उठाया बल्कि उन्हें उकसाया और उनकी सहायता की।

वह अब भूटान के कुछ भू–भाग भी हड़प रहा है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। तथा हमें इस पूरे मामले पर विचार करना है। चीन के साथ सीमा विवाद के समय हम अपने हितों को अलग नहीं कर

सकते। जैसा कि किसी ने कहा भी है कि सीमा समझौता तब तक निरर्थक होगा जब तक चीन और भारत इस संपूर्ण क्षेत्र के प्रति अपनी नीति में आधारभूत परिवर्तन नहीं करते।

frCcr dk i.'u : किन्हीं सज्जन ने अपने वक्तव्य में एक बार कहा था कि श्री नेहरू ने तिब्बत को चीनी क्षेत्र के रूप में मान्यता देकर गलती की। पिछली भाषणमाला में भी इसी तरह का जिक्र हुआ था। मैं इन सज्जनों से जानना चाहूंगा कि तत्कालीन परिस्थितियों में हमारे सामने इसके अलावा और क्या विकल्प था? हम उस समय पाकिस्तान के साथ युद्ध में फंसे हुए थे, भारत के प्रति अमरीकी रवैया शत्रुतापूर्ण था और वस्तुतः सभी पश्चिमी देश भारत विरोध का राग अलाप रहे थे।

अमरीका और ब्रिटेन ने तो एक तिब्बती शिष्ट मंडल से भेंट करना भी स्वीकार नहीं किया था। हमने हांगकांग के रास्ते एक तिब्बती शिष्टमंडल पीकिंग भेजना चाहा था लेकिन ब्रिटेन ने शिष्टमंडल के सदस्यों को वीसा देने से इनकार कर दिया था। परिणामतः यह दल हांगकांग में ही फंसा रह गया। अंततः तिब्बत और चीन के बीच बातचीत आरंभ ही नहीं हो सकी।

इस क्रम में अगला चरण था दलाई लामा और चीन के बीच संपन्न 1951 का 17–सूत्रीय समझौता जिसके तहत स्वयं तिब्बत ने अपनी आंतरिक स्वायत्तता कायम रखते हुए चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की थी। इन तथ्यों की हम उपेक्षा नहीं कर सकते थे। न हमारे पास तिब्बत की सहायता करने के लिए पर्याप्त सैनिक साधन ही थे।

अमरीका और पश्चिमी देश यही चाहते थे कि हम तिब्बत को चीन के चंगुल से छुड़ा लें तथा वे इस सारी स्थिति को तमाशबीन की हैसियत से देखते रहें। किंतु हम ऐसा करने की स्थिति में नहीं थे। श्री नेहरू को इस वास्तविकता से साक्षात्कार करना पड़ा। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हमने अपने विकल्पों को लेकर सौदेबाजी की या उन्हें गिरवी रख दिया। यदि चीन सिक्किम, जम्मू कश्मीर, अरूणाचल या अन्य क्षेत्रों पर हमारी प्रभुसत्ता को स्वीकार नहीं करता तो हमारा रास्ता भी खुला है।

मूल प्रश्न यह है कि हम उस समय चीन के साथ किसी टकराव की स्थिति में नहीं थे। यदि चीन के साथ संबद्ध प्रश्नों पर हम कोई हाय तोबा मचाते तो शायद जो 1962 में हुआ वह 1961 या 1954 में हो चुका होता जब हम सैनिक तैयारियों की दृष्टि से 1962 की अपेक्षा कहीं अधिक अशक्त थे।

Hkkjr detkj ugh : पिछले वक्ता श्री सुब्रहमण्यम का विचार है कि परंपरागत रूप से हम चीन की अपेक्षा कहीं आगे हैं। मैं इस कथन को कुछ संशोधन के साथ कहना चाहूंगा कि चीनी सेना संख्या की दृष्टि से हमारी तुलना में बेहतर स्थिति में है। मैदानी युद्ध में वे लाभप्रद स्थिति में हैं तथा उन्हें अपनी व्यूहरचना का भी लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त वह व्यापक पैमाने पर हमला करने से भी नहीं चूकते, जैसा कि हम वियतनाम और कोरिया में देख चुके हैं।

लेकिन फिर भी हमें चीन की सैनिक शक्ति को बढ़ा चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए। 1980 को 1962 नहीं समझा जाना चाहिए। अब हमारे साथ विश्वसनीय मित्र हैं। हमारे विश्वास का आधार सोवियत संघ के साथ संपन्न हमारी मैत्री संधि है। शायद चीन भी यह समझता है। यही कारण है कि 1964 और 1971 में अनर्गल प्रचार के बावजूद चीन हमसे सैनिक टकराव की हिम्मत नहीं जुटा सका।

हमें चीनी नेताओं द्वारा पत्रकारों को दी गयी भेटों अथवा बेलग्रेड या लुसाका सम्मेलनों में किन्हीं दूतों के सामने व्यक्त सदभावनाओं के आधार पर चीन से बातचीत की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

इन सभी बातों के आधार पर मैं कुछ मुद्दों की संक्षिप्त चर्चा करना चाहूंगा जिनसे संभवतः इस परिसंवाद में एक आम सहमति का आधार बन सके।

जिस पहले मुद्दे के आधार पर मैंने अपनी बात समझाने का प्रयत्न किया वह यह है कि

चीन में हो रही उथल–पुथल उसका एक आंतरिक मामला है तथा इससे निकट भविष्य में उसकी विदेश नीति में आधारभूत परिवर्तन की कल्पना करना बेमानी होगा।

वैसे परिवर्तनों का जहां तक सवाल है –– वियतनाम पर चीनी हमला, कम्बोडिया के प्रति चीन का रवैया, पोलपाट को उसका समर्थन तथा विशेषकर अमरीका, जापान और पश्चिमी देशों के साथ चीनी विदेश नीति का ध्रुवीकरण कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हैं, बल्कि भारत और इस क्षेत्र के लिए अत्यंत घातक परिवर्तन हैं।

दूसरी बात कि चीनी अमरीकी हनीमून कब तक जारी रहेगा या सोवियत संघ के साथ चीन का मनमुटाव कब समाप्त होगा यह चीन के भीतर बाहर घटने वाली घटनाओं पर निर्भर करता है। हम चीन के प्रति अपनी नीतियां केवल वार्ताओं या चीन सोवियत संबंधों में संभावित परिवर्तन के आधार पर निर्धारित नहीं कर सकते। न हम चार या पांच वर्ष के लिए किसी भविष्यवाणी के झमेले में पड़ सकते हैं। असल में हमें ठोस तथ्यों का सहारा लेना ही होगा। चीन के प्रति हमारी नीतियों का चीन अमरीकी संबंधों में बिगाड़ या चीन सोवियत पुनर्मिलन से कोई वास्ता नहीं होना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि इस पूरे मामले पर विचार करते समय हमें अपने राष्ट्रीय हितों तथा इस संपूर्ण क्षेत्र की शांति और समृद्धि के विचार को ध्यान में रखना होगा। मेरी नजर में इन सारी बातों के निचोड़ के रूप में इस गोष्ठी में ये मुद्दे उभर कर सामने आये हैं :–

1. चीन के साथ बातचीत तभी आरंभ की जाये जब इसके लिए अनुकूल अवसर हो तथा बातचीत के लिए कोई तर्कसंगत आधार हो।

2. चीन के इरादों पर कड़ी नजर रखी जाये।

3. भयभीत होकर या अपने आपको कमजोर महसूस कर बातचीत करना निरर्थक होगा। न ही हमें वार्ता की सफलता को लेकर भावुकता का सहारा लेना चाहिए।

4. बातचीत का दौर लंबा हो सकता है। इसलिए हमें धैर्य से काम लेना चाहिए तथा किसी धोखे में नहीं रहना चाहिए।

5. सोवियत संघ और वियतनाम के साथ मैत्री हमारी विदेश नीति का आधारभूत तत्व हैं तथा चीन के साथ किसी भी बातचीत में इसे लेकर कोई सौदेबाजी नहीं होनी चाहिए।

6. बर्मा, नेपाल, भूटान, बंगला देश के प्रति चीनी नीति का हमारे लिए काफी महत्व है क्योंकि हमारी सुरक्षा इन देशों की सुरक्षा से जुड़ी है।

यह बात निरर्थक सी लगती है कि चीन हमारे विद्रोही आदिवासियों को अब शस्त्र नहीं दे रहा है। सच्चाई तो यह है कि वह अब भी इन आदिवासियों को प्रशिक्षण दे रहा है तथा तीसरे देशों के जरिये उन्हें शस्त्र पहुंचा रहा है। मैं इन देशों का नाम नहीं लूंगा।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि चीन को जम्मू काश्मीर और सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग मानना चाहिए। चीन का सिर्फ यह कहना कि काश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच का मसला है, पर्याप्त नहीं होगा।

बल्कि यदि चीन 1962 दिसंबर के अस्थायी समझौते के तहत पाकिस्तान से प्राप्त पाक अधिकृत काश्मीर का चार हजार वर्ग मील से अधिक भारतीय भूभाग हमें लौटाने को तैयार हो तो हम पाकिस्तान के साथ बातचीत कर इस मामले को निबटा सकते हैं।

पश्चिमी क्षेत्र में जबरन हथियाये गये भूभाग को अपने कब्जे मे जमाये रखने का चीनी इरादा पाकिस्तान के साथ उसके गठजोड़ तथा अफगानिस्तान की बदलती स्थिति के संदर्भ में साफ उजागर

हो जाता है।

चीन के साथ वार्ता का आधार यह भी बिलकुल नहीं हो सकता कि वह अरुणाचल पर हमारी प्रभुसत्ता को मान्यता दे अथवा हम पश्चिमी क्षेत्र में चीन की वर्तमान वास्तविक नियंत्रण रेखा को स्वीकार करें। इसका अर्थ तो यह होगा कि वह बलपूर्वक हथियाए गए हमारे भू–भाग पर डटा रहे और हम अपने क्षेत्र को भी अपना समझने में संकोच करें।

चीन द्वारा लगातार आणविक अस्त्रों का विकास तथा पाकिस्तान द्वारा इन अस्त्रों को प्राप्त करने की संभावना को हम नजर अंदाज़ नहीं कर सकते। समय की यही मांग है कि संभावित आणविक खतरे का मुकाबला करने के लिए हम अपनी आणविक तकनीक और क्षमताओं के विकास पर गंभीरता पूर्वक ध्यान दें।

अन्त में मैं यही कहूंगा कि चीन के साथ किसी भी समझौते के लिए बातचीत करने से पहले हमें आर्थिक रूप से सबल, सैनिक दृष्टि से सशक्त और राजनैतिक आधार पर संगठित होना आवश्यक है। सीमा संबंधी किसी भी विवाद के हल से पहले हमें उन देशों के प्रति चीन के रवैये को भी ध्यान में रखना होगा जिनकी सुरक्षा का प्रश्न हमारी सुरक्षा से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है।

——

तिब्बत – कैसा होगा भविष्य ?

–माधुरी संथानम सोंधी

दमनकारी इतिहास में तिब्बत आजकल सबसे ज्यादा कठिन दौर से गुजर रहा है। इस बार चीन ओलंपिक खेलों का मेजबान था। खेलों के उद्घाटन समारोह से पहले तिब्बतियों का असंतोष इस कदर फूट पड़ा कि अंतर्राष्ट्रीय सुर्खियों में छा गया। चीन जब ओलंपिक खेलों की बेहतरीन मेजबानी करके वाहवाही बटोरने की तैयारी में था तो तिब्बती युवकों और युवतियों के सब्र का बांध टूट गया और उन्होंने भी विरोध प्रदर्शन किए। तभी से चीन ने तिब्बत के इर्द–गिर्द एक अभेद दीवार सी खड़ी कर दी। चीन की क्रूरता भरी बदले की कार्रवाई ने तिब्बतियों के मन के भीतर ही भीतर पल रहे आक्रोश को शोक में बदल दिया। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद तिब्बतियों ने चीनी नव वर्ष लोसर के सभी कार्यक्रमों का बहिष्कार करने के लिए जनआंदोलन खड़ा कर दिया। और तिब्बती विद्रोह की 10 मार्च को होने वाली सालगिरह को चीनी मीडिया दुर्भावनापूर्ण ढंग से 'गुलाम मुक्ति दिवस' के रूप में प्रचारित करता है। ये दोनों अवसर एक दूसरे की संकल्पशक्ति को मापने का माध्यम भी बने।

चीन में आया भयंकर भूकंप, ओलंपिक खेलों के बाद बना सामान्य वातावरण और यहॉ तक कि वैश्विक मंदी भी हाल ही में हुए दंगों के अंतर्राष्ट्रीय असर को दरकिनार नहीं कर पाई है। यूरोपीय नेता तिब्बती निर्वासित शासक और धर्म गुरु दलाई लामा से सम्मान के साथ मिलते हैं। आस्ट्रेलिया सरकार के मुखिया केविन रूड की तरह कई देशों के मुखिया तिब्बत में अधिकारों की स्थिति पर अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद की समसामयिक पत्रिका में आस्ट्रेलिया कनाडा और कुछ अन्य देशों ने चीन की आलोचना की है। और अल्पसंख्यकों विशेषकर तिब्बतियों के साथ चीन के व्यवहार पर असहज कर देने वाले कुछ प्रश्न भी उठाएं हैं जबकि चीन ने अपनी रिपोर्ट में गरीबी मिटाने की अपनी नीतियों का बढ़ा–चढ़ाकर बखान किया है। चीन सरकार ने कुछ भ्रामक आंकड़े भी पेश किए हैं। और जैसी कि पहले से ही उम्मीद थी मानवाधिकारों का कहीं जिक्र ही नहीं किया गया है। ये बातें शीत युद्ध के उन दिनों की यह दिलाती हैं जब सोवियत संघ ने अमेरिकी आजादी के खिलाफ अपने तथाकथित पूर्ण रोजगार का परचम लहराया था। दुनिया के सभी देशों की अंतरात्मा पूरी तरह सुप्त अवस्था में नहीं हैं। लेकिन जैसा कि हम सब जानते हैं जागृत अंतरात्मा शायद ही कभी कारगर राजनैतिक और आर्थिक कार्रवाई में मुश्किल से तब्दील हो पाती है।

वास्तविकता तो ये है कि तिब्बत से जुड़ा राजनैतिक मुद्दा संवाद की मेज तक आ ही नहीं पाता है। जबकि फिलिस्तीन के मुद्दे को अंतराष्ट्रीय बिरादरी में भू–क्षेत्रीय राजनीतिक मुद्दे के रूप में देखा जाता है। जैसा कि दलाई लामा कभी–कभी कुछ अप्रसन्नता से कहते भी हैं कि मध्य एशिया में तेल की मौजूदगी के कारण फिलिस्तीन चर्चा में है। जबकि अहिंसा आंदोलन के कारण तिब्बत मुद्दा दुनिया के राजनीतिक नक्शे से गायब है।

स्वीकृत इतिहास के विरूद्ध तिब्बत को 'चीन के आंतरिक मामले' के रूप में स्वीकार किया जाता है लेकिन 1949 में जब पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने तिब्बत में अवैध घुसपैठ की उस समय जब इस अवधारणा को चुनौती देना संभव था, तब स्वयं तिब्बत के ही अलग–थलग रहने के कारण संसार के अधिकांश देश इससे जुड़े मुद्दों से अनजान थे। इसके अलावा भौगोलिक रूप से एक दूसरे से जुड़े भू क्षेत्रों में साम्राज्यवाद विस्तार की कम निंदा होती है। इसका उदाहरण है सोवियत संघ के द्वारा मध्य एशियाई और पूर्वी यूरोपीय देशों को अपना उपनिवेश बनाना लेकिन सोवियत रूस ने इसे साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय अभियान का नेतृत्व करने की आड़ में सफलतापूर्वक छुपा लिया। उस समय 1949 में ग्रेट ब्रिटेन और भारत ऐसे दो देश थे जो पूरे मामले की वास्तविकता जानते थे लेकिन दोनों ने जानबूझ कर इसे नजरंदाज कर दिया। इसकी कीमत भारत को अपने भूक्षेत्र का अच्छा खासा हिस्सा और अपनी हैसियत गंवा कर चुकानी पड़ी। दूसरी ओर तिब्बतियों को अपनी संप्रभुता की बहाली की मांग को मानवाधिकारों और सांस्कृतिक मुद्दों तक सीमित करने पर बाध्य होना पड़ा।

तिब्बत के प्रति उदासीनता का कारण पहले तिब्बत के बारे में जानकारी न होने का बहाना थ लेकिन अब जानकारी न होने की जगह चीन से संबंध बढ़ाने ने ले ली है। पिछले चार दशक से चीन भारत को निवेश के मौके और सस्ती वस्तुओं के व्यापार के प्रलोभन देता आया है। दलाई लामा को अमेरिकी सीनेट ने सर्वोच्च सम्मान दिया लेकिन अमेरिका के चीन से आर्थिक रिश्ते हैं इसलिए अमेरिका तिब्बत के मुद्दे को नहीं उठाता। हिलेरी क्लिंटन की हाल की चीन यात्रा इस बात का प्रमाण है कि आर्थिक मुद्दे मानवाधिकारों पर कितनी आसानी से भारी पड़ते हैं। विशेष तौर पर जब वो किसी अन्य देश के लोगों से जुड़े हों। इसी तरह आस्ट्रेलिया और अन्य कई देशों के भी चीन के साथ गहरे आर्थिक संबंध हैं। भारत के मामले में तो दोनों देशों के व्यापारिक संबंध भी चुप्पी साधे रखने का एक बहाना बन गए हैं। लेकिन 1947 में आजादी प्राप्त करने के बाद से भारत को चीन का डर हमेशा सताता रहता है। तिब्बत पर चीन की संप्रभुता को भारत की बिना मांगी मान्यता का कोई संवैधानिक आधार नहीं है। इसके परिणाम भारत और तिब्बत दोनों के लिए हानिकारक साबित हो रहे हैं। आज स्थिति ये है कि तिब्बत में हो रहे मानवाधिकार हनन का भी भारत विरोध नहीं करता है। हालांकि भारत ये दावा भी करता है कि तिब्बतियों को शरण देकर, उनका पुनर्वास करके वो एक तरह से चीन का मूक विरोध कर रहा है। और दलाई लामा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मिली मान्यता और लोकप्रियता से उसका अपना 'तिब्बत कार्ड' मजबूत होता है।

हाल के वर्षों में चीन अंतर्राष्ट्रीय मामलों में लगभग अनैतिकतावाद का सक्रिय सिद्धांतकार बन गया है। वह न केवल अपने देश में और अपनी सीमाओं में हो रहे मानवाधिकार हनन की जिम्मेदारी लेना ही नहीं चाहता बल्कि उन देशों की सक्रियता से मदद करता है जो उसकी राह पर चल रहे हैं। विशेषकर सूडान सरकार की चीन भरपूर मदद कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय आलोचना के डर से ओलंपिक खेलों के दौरान चीन ने अत्याचारों में थोड़ी कमी रखी। चीन को प्रतीक्षा है उस पल की जब वो इतना शक्तिशाली होगा कि पूरी दुनिया में अपने प्रचलनों और मानदंडों का सिक्का चला सके। उसके कई थिंक टैंक एक ऐसा वैकल्पिक अंतर्राष्ट्रीय मॉडल बनाने में जुटे हैं जिसका मानवाधिकारों से कोई नाता न हो (वह इसे पश्चिमी अवधारणा मानता है) और निसंदेह वो कंफ्यूशियस के असमानतावादी समलयता के आदर्श का प्रचार–प्रसार करेगा। और इन सबके बीच तिब्बत के भीतर तिब्बतियों की संख्या निराशाजनक रूप से कम होती जा रही है और दिन ब दिन उन्हें दरकिनार किया जा रहा है।

तो फिर आने वाले समय में तिब्बत के लिए क्या उम्मीदें हो सकती हैं? ये तो बीजिंग, तिब्बत और धर्मशाला की स्थितियों और नीतियों पर काफी हद तक निर्भर करेगा।

अकसर कहा जाता है कि दलाई लामा के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण तिब्बत का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय है। उनके जादुई व्यक्तित्व के कारण कूटनीतिक दरवाजे उनके लिए हमेशा खुले रहते हैं। दुनिया के बड़े और शक्तिशाली देशों के नेता उनसे मिलते हैं। एक धर्म गुरु और लामा के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। उनके पास कोई सेना भी नहीं है। (जब स्टालिन को बताया गया कि चर्च उनकी कार्रवाई का विरोध कर सकता है तो उन्होंने पूछा था पोप के पास सेना की कितनी डिविजन है) बहरहाल स्टालिनवाद के खत्मे के बाद भी पोप की धार्मिक सत्ता बरकरार है।

तिब्बत के मुद्दे से अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी का ध्यान हटाने की चीन की कोशिशों में अब तक सबसे बड़ी बाधा दलाई लामा ही हैं। चीन को अब प्रतीक्षा है दलाई लामा के दुनिया से महाप्रस्थान की। जिसकी आशा में चीन सरकार ने एक कानून पारित कर, दलाई लामा नियुक्त करने का अधिकार हासिल कर लिया है। ताकि बाहरी दखलंदाजी बिलकुल बंद हो जाए। बहरहाल दूसरी ओर से भी साफ संकेत हैं कि दलाई लामा और उनके सलाहकार भी समस्या से पूरी तरह परिचित हैं। चीन की नीयत को भांपते हुए वो नए विकल्पों के विषय में भी सोच रहे हैं जिनमें करमापा को रीजेंट नियुक्त करना भी शामिल है। दरअसल कठपुतली दलाई लामा को मान्यता दिलवाना भी चीन के लिए टेढ़ी खीर ही साबित होगा। पंचेन लामा को मान्यता दिलवाने की चीन की कोशिशें पहले ही विफल हो चुकी हैं। उधर दलाई लामा अगर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देते हैं या नियुक्ति की प्रक्रिया तय कर देते हैं तो चीन के लिए मुश्किलें बढ़ जाएंगी।

तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद दलाई लामा के एक–एक शब्द का तिब्बत में भारी प्रभाव है। तिब्बती उनके एक–एक शब्द को भगवान का आदेश मानते हैं और जो दलाई लामा कह देंगे वो पत्थर की लकीर होगा तिब्बती आंख मूंद कर उसका पालन करेंगे। वैसे भी तिब्बत का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुका है। अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी अब इसे हल्के में नहीं लेती। फिलहाल ऐसा संभव तो नहीं लगता कि अपने सबसे मुखर प्रवक्ता दलाई लामा के देहावसान के साथ ही इस मुद्दे का अंत हो सकता है।

बाल्टिक गणतंत्र का मुद्दा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है; निर्वासित नेतृत्व के बावजूद जातीय चेतना और आंतरिक विरोध प्रदर्शनों के बलबूते सात दशक तक रूस के अत्याचार, और रूसी जनसंख्या का बोझ सहा। लेकिन जैसे ही सोवियत संघ के टुकड़े–टुकड़े हुए ये स्वतंत्र देशों के रूप में उभर कर आ गए।

चीन की अपनी अंदरूनी समस्याएं भी हैं। हालांकि चीन की छवि ऐसी है कि वो स्थिरता और धैर्य से अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ रहा है और अपनी नीतियों के माध्यम से ऐसा आभास भी देता है कि चीन के भीतर, तिब्बत के भीतर, भारत के साथ दुनिया के साथ अन्य सब चीजें समान रहेंगी। लेकिन चीन आज स्थिर राष्ट्र नहीं है। इसकी पुष्टि के लिए मोटेतौर पर कुछ मुद्दे अंगुलियों पर गिनवाए जा सकते हैं।

वैश्विक ग्लोबल मंदी से पहले 2007 में उसके ग्रामीण क्षेत्रों में 80,000 से ज्यादा सरकार विरोधी प्रदर्शन किए गए। शहरों में बेरोजगारी का आंकड़े बहुत ऊंचे हो चुके हैं। हाल ही में संपन्न हुआ शहरी बुर्जुआ मध्यवर्ग अब अपेक्षाकृत अभावग्रस्त हो रहा है। इससे असंतोष पनप रहा है। शहरों से छंटनी करके असंख्य श्रमिकों को उनके देहात लौटा दिया गया है। वो अपने खेतों में खाली बैठे रहेंगे। चीन में लगभग दो करोड़ बेरोजगार हैं। बढ़ते आंतरिक असंतोष पर काबू पाने के लिए पहले तो चीन के शासकों ने कंफ्यूशियस के समलयता आदेशों का सहारा लिया। लेकिन अब ग्लोबल मंदी की मार से सामाजिक, आर्थिक समस्याएं विकराल रूप लेती जा रही है। इसलिए अब सेंट्रल पोलित

कमेटी के कुछ सदस्य माओवाद की ओर लौटने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन अब जिन्न को बोतल में बंद करना असंभव है। कयोंकि अब दुनिया के सभी देश एक दूसरे पर आर्थिक रूप से निर्भर करते हैं। चीन भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। धार्मिक आजादी पर अंकुश के कारण लोगों की बौद्ध और ईसाई धर्म में आस्था पुनः जागृत हो रही है। हालांकि फालुन गांग संप्रदाय को बेरहमी से कुचल दिया जा रहा है। दलाई लामा के अपने अनुमान के अनुसार चीन में लगभग 20 लाख तिब्बती बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इंटरनेट, ब्लाग, और वेबसाइट पर सरकारी सेंसरशिप के बावजूद सूचना क्रांति ने चीन के लोगों के लिए जानकारी का अपार खजाना खोल दिया है। जबकि पहले वो सरकारी सैद्धांतिक दिशा के रहमों करम पर ही निर्भर थे। विदेश यात्राओं की छूट मिलने के बाद चीनियों में उस उदार विश्व की समझ व्यापक हुई है जिसकी चीन में हमेशा निंदा होती रही है।

अकादमिक और व्यावसायिक संभ्रांत वर्ग के सदस्यों ने गत नवंबर में चार्टर 08 घोषित किया जो नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रता का घोषणा पत्र है। (चेक राज्य के वाक्लाव हवेल और दलाई लामा ने इसे खुला समर्थन दिया है) देखते ही देखते हजारों लोग इसके सदस्य बन गए। हालांकि इसका गला घोंट दिया गया लेकिन इन्होंने भी हार नहीं मानी है। दूसरे शब्दों में दुनिया की महाशक्ति के रूप में उभर रहे चीन में गंभीर आंतरिक विरोधाभास हैं।

तिब्बत और चीन के हालात पर निरंतर निगाह रखे हुए दलाई लामा का मानना है कि वर्तमान चीन सरकार ज्यादा दिन नहीं चल सकती। जाहिर है कि जब तक संभव होगा तब तक मौजूदा सरकार कामचलाऊ तौर पर तात्कालिक रूप से समस्याओं से निपटती रहेगी और दुनिया के बाकी देश जानबूझ कर तब तक निगाहें फेरे रहेंगे जब तक सुधार या विफलता के साफ संकेत नजर नहीं आएंगे। अगर चीन में सोवियत संघ की तरह अंतरस्फोट हुआ तो दमित राज्यों को उससे बाहर होने और मुक्त होने का अवसर मिल जाएगा। ये अनुमान अकारण ही नहीं है, हालांकि जो लोग ग्लोबल परिणामों से डरते हैं उन्हें एक सैद्धांतिक संभावना की उम्मीद बनी रहती है कि चीन परिस्थितियों के अनुरूप अनुकूलन करके संभल जाएगा।

इस अनिश्चितता के बीच तिब्बत की निर्वासित सरकार 'वास्तविक स्वायत्ता' की मांग के बदले में चीनी संप्रभुता को मान्यता देने के उद्देश्य की पूर्ति कर रही है। निर्वासित सरकार अपने स्थानीय, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मामलों में न केवल टीएआर (तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र) में बल्कि तिब्बती बहुल पड़ोसी प्रांतों में भी अपना नियंत्रण चाहती है (विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां ओलंपिक खेलों से पहले दंगे हुए थे) लेकिन चीन चाहता है तिब्बत की इस मांग का कोई परिणाम ही न निकले और इस दिशा में उसने हर संभव कोशिश भी की है। इतिहास और धर्म को तोड़ा–मरोड़ा है। राजनीतिक अभिव्यक्ति का गला घोंटने के लिए हर दमनकारी तरीका इस्तेमाल किया है। स्थानीय लोगों की निष्ठा खरीदने के लिए आर्थिक विकास के प्रलोभन भी दिए हैं (हालांकि आर्थिक विकास तिब्बत में रहने वाले चीनियों का ही हुआ है) चीन ये साबित करना चाहता है कि तिब्बत सदा ही उनका था और आज भी खुशी–खुशी उनका है।

अंततः दलाई लामा ने भी ये स्वीकार कर लिया है कि उनकी मध्यमार्गी कूटनीति से समस्या का कोई हल नहीं निकल पाया है और चीन के शासकों के प्रति उनका विश्वास भी कम होता जा रहा है। नवंबर 2008 में धर्मशाला में हुए महासम्मेलन में तिब्बत के लिए कोई वैकल्पिक नीति भी नहीं बन पाई। अब सबसे ज्यादा उम्मीद टिकी है अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी के नैतिक और राजनीतिक दबाव पर। ये दबाव ही चीन को दलाई लामा के प्रतिनिधियों से संवाद तथा मानवीय और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए बाध्य कर सकता है। लेकिन अब तक अंतर्राष्ट्रीय दबाव के भी परिणाम नजर नहीं

आ रहे हैं।

इस गतिरोध को देखते हुए क्षेत्रीय विवाद का हल निकालने के लिए किसी अनूठे तरीके पर विचार करना होगा। ज्ञातव्य है कि 1988 में स्ट्रॉसबर्ग में दलाई लामा ने आह्वान किया था कि उनके अहिंसा क्षेत्र के प्रस्ताव पर चर्चा के लिए क्षेत्रीय शांति सम्मेलन बुलाया जाए। दलाई लामा के अहिंसा क्षेत्र में तिब्बत का पूरा 'चोलका सुम' यानी तीनों प्रांत खम, आमदो और ऊ त्सांग शामिल है।

दलाई लामा ने 1988 से लेकर आज तक अपने इस प्रस्ताव को खारिज नहीं किया है। इस दिशा में काम करने के लिए चीन और तिब्बतियों समेत उसके पड़ोसियों की सुरक्षा और पर्यावरण संबंधी आशंका को दूर करना होगा। अहिंसा क्षेत्र का विस्तार उधर और मंगोल अल्पसंख्यकों तक भी किया जा सकता है। इससे पूरे पठार का तटस्थीकरण और गैर परमाणुकरण होगा और साथ ही मध्य एशियाई जनों की वास्तविक राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी भी सुनिश्चित होगी। अगर ये दिवास्वप्न लगता हो तो जरा स्मरण कीजिए द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की उस धैर्यपूर्ण कूटनीति की जब लगभग 350 बैठकों के बाद ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और अमेरिका के बीच आस्ट्रिया की तटस्थता की गारंटी पर सहमति बनी थी। आस्ट्रियाई शांति संधि की शर्तों के अनुसार शांत आस्ट्रिया पर कोई भी आक्रमण होने की स्थिति में मित्र राष्ट्र तत्काल उसकी सुरक्षा के लिए आगे आएंगे। बिलकुल इसी तरह तिब्बत से सरोकार रखने वाले पड़ोसी देश और दुनिया की महाशक्तियां भी तिब्बत की तटस्थता और सुरक्षा की गारंटी दे सकते हैं। इसके परस्पर विरोधी राष्ट्रीय हितों के बीच एक बफर क्षेत्र बन जाएगा।

रही बात तिब्बत में चीनी मूल के प्रवासियों के बसने और भारी ढांचागत निवेश से पैदा होने वाली समस्याओं की तो एक बार फिर बाल्टिक देशों की मूल रूसियों और उनकी जमीन जायदाद के बारे में अपनाई गई नीतियों से सबक लिया जा सकता है। निश्चित तौर पर उनके संबंध मधुर नहीं हैं विशेषकर इसलिए भी कि आस्ट्रिया की तरह उनकी स्वतंत्रता की कोई गारंटी भी नहीं है। लेकिन फिर आधी सदी से भी ज्यादा लंबे सोवियत शासन के बाद बाल्टिक देशों ने स्वतंत्रता हासिल की और वो भी रूसी मूल के प्रवासियों को अपने राज्यों से बाहर निकाले बगैर। आस्ट्रिया और बाल्टिक देशों के उदाहरणों से कुछ संभावनाएं पैदा होती हैं और अगर ये सचमुच संभव हो गया तो चीन भारत और पूरे क्षेत्र में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की वापसी हो जाएगी।

——

तिब्बत की मुक्ति साधना को समर्थन हमारे राष्ट्रधर्म की मांग है

राजीव वोरा, नीरू वोरा

;|fi tx nk:u n|[k ukukA
lc r dfBu tkfr voekukAA

गोस्वामी तुलसीदास जी की यें पक्तियां तिब्बती प्रजा के दुख का सटीक निरूपण करतीं हैं। जब तक देह और संसार है, दुखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। दुखों में रहते हुए मनुष्य के ऊर्ध्वीकरण, दैवीकरण, के लिए अभय की साधनाका विधान सनातनधर्म तथा बौद्धधर्म में है। अपमान के दुख से मुक्ति पाना सर्वोपरि स्वधर्म है क्योंकि अपमान आत्मतत्व का क्षय करता है, दिव्यता के प्रति अपराध है। अपमानों में भी घोरतम अपमान जाति–अपमान है।

हिंसा की पराकाष्ठा, सूक्ष्मतम हिंसा, आध्यात्मिक हिंसा में है अर्थात आत्महनन में है; और सबसे उग्र प्रकार का, व्यापक और परिपूर्ण आत्महनन जाति–अपमान में निहित है। क्योंकि मनुष्य की आत्मा तभी कुचली जाती है जब उसकी जीवनदृष्टि, जीवन–आस्था और निष्ठा को कुचल दिया जाए। दृष्टि, आस्था और निष्ठा का आधार जाति–मूलक होता है किंतु कक्षा व्यक्ति–मूलक होती है। अर्थात किसी की दृष्टि–आस्था–निष्ठा कम तो किसी की अधिक विकसत होती है। जाति की दृष्टि–आस्था, निष्ठा तत्वतः एक होती है जिसे सामान्य भाषा में सांस्कृतिक रूप से एक होना कहते हैं; किंतु विभिन्न लोगों की उसमें अवस्था न्यूनाधिक हो सकती है।

जहां आध्यात्मिक (सांस्कृतिक) हिंसा, हिंसा की पराकाष्ठा है, वहीं जाति–अपमान आध्यात्मिक हिंसा अर्थात आत्महनन का विराट और उग्रतम रूप है। यह हिंसा शारीरिक ओर मानसिक हिंसा का कारण बनती है, उसे उचित ठहराती है। इतना ही नहीं, उसे आवश्यक मानती है। तिब्बत में सामान्य नागरिकों के अतिरिक्त भिक्षुणियों, भिक्षुओं, मठों–मंदिरों पर ढाए गए और ढाए जा रहे अत्याचार तिब्बती प्रजा की जीवन–दृष्टि, आस्था और निष्ठा को नष्ट करने के लिए किए जा रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता–जो हमारे पुराणों में वर्णित राक्षसी–आसुरी–दानवी राज्य के तद्‌रूप हैं– के प्रभाव से जिनका भिन्न–भिन्न प्रकार से आसुरीकरण हो रहा है ऐसे दो महान राष्ट्रो, चीन और भारत, के बीच दुनिया की एक मात्र ऐसी भूमि, एक मात्र प्रजा पिस रही है जिसने दिव्य विचारों के अनुरूप जीवन व्यवस्था, जहां सांसारिक और आध्यात्मिक के बीच अभेद और सुमेल स्थापित किया था ऐसी संस्कृति अपनी मातृ–संस्कृति सनातनधर्म, जिसमें मानव के दैवीकरण की अकूट संभावनाएं भरी पड़ी हैं – के साथ मिलकर विश्व को इस विकट अंधेरे से निकाल सकती है। यह वह बीज है जो घोर ह्रास के समय में बचाया जाना चाहिए। तिब्बत पर हो रहा अत्याचार मानव जाति के भविष्य की उज्जवल राह को ही अंधकारमय बनाने का पापाचार है।

हिंसा पर टिकी वर्तमान विश्व व्यवस्था और आधुनिक सभ्यता जब अपने ही इन दोषों से त्रस्त है तब अहिंसा का रास्ता दिखाने वाले भारत को विश्व ने भविष्य का मार्गदर्शक मान लिया था। किंतु पिछले पचास वर्ष में न केवल हमने अपनी संचित पूंजी गंवा दी, तिब्बत के साथ हमने धोखा किया, अपनी सुरक्षा की किसी भयभीत रणनीति के तहत एक पूरी प्रजा, देश और संस्कृति की बलि चढ़ाई, और अंत में जब इस भूल का एहसास हुआ तब परमपावन दलाई लामा की सरकार तथा तिब्बतियों को 'शरण' देकर प्रायश्चित करने का थोड़ा–सा साहस तो दिखाया किंतु तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता और मुक्ति के संघर्ष में उनका साथ न देकर उस प्रायश्चित को अधूरा भी छोड़ दिया। अधूरा प्रायश्चित प्रायश्चित नहीं होता। हालांकि जवाहर लाल नेहरू अपने हाथों इससे अधिक नहीं कर सकते थे, क्योंकि तिब्बत को चीन के हवाले उन्होंने खुद ने ही किया था –चीन के प्रति मित्रता के धोखे में न आने की सरदार पटेल की स्पष्ट चेतावनी के बावजूद। अपनी गलती का एहसास जब नेहरू को हुआ, काफी देर हो चुकी थी।

जितना बड़ा दोष हुआ है उसके अनुपात में प्रायश्चित तो संभव नहीं है। उसके अनुपात का तो प्रायश्चित यह होता कि तिब्बत को चीन के चंगुल से छुड़ाकर वापस तिब्बतियों को सौंप देते। लेकिन अपनी भूमि भी चीन से छुड़वाने में असमर्थ रहा भारत का सरकारी तंत्र इतनी शक्ति दिखा दे यह इस समय तो चमत्कार ही कहा जाएगा। किंतु सत्य का और धर्म का तकाजा यही है कि इससे कम प्रायश्चित हमें अपने दोष से मुक्त नहीं कर सकता।

इसलिए कम से कम हमें वह सब तो करना ही चाहिए जिससे तिब्बत की मुक्ति के अहिंसक संघर्ष को बल मिल सके और इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा परमपावन दलाई लामा की निर्वासित सरकार को मान्यता देना। ऐसा करने से न केवल हम तिब्बत मुक्ति–साधना को उचित बल दे पाएंगे किंतु साथ ही कुछ अन्य अति महत्वपूर्ण हेतु भी सिद्ध होंगे। उदाहरणार्थ :

पूरे राष्ट्र के आत्मसम्मान में जितनी वृद्धि इस एक कदम से होगी, उतनी अन्य किसी कदम से इस समय नहीं हो सकती। अपने स्व–परिचय तथा निःस्वार्थ आत्मबल का परिचायक कदम और कौन–सा हो सकता है? परमाणु बम तो पाकिस्तान ने भी बनाकर दिखा दिया। लेकिन जिसमें विध्वंस की संभावना की बू नहीं किंतु स्वाधीनता की खुशबू हो ऐसा कदम केवल यही हो सकता है।

कुछ दलों के लिए यह धार्मिक दायित्व है। भारतीय जनता पार्टी का तो दावा है कि वह धर्म–चेतना को ही राष्ट्र चेतना मानती है। जो ऐसा नहीं ामनते उन्हें 'सूडो सेकुलरिस्ट' कहकर उनकी राष्ट्रभक्ति के ऊपर प्रश्न भी खड़ा करते हैं। भारतीय जनता पार्टी अगर धर्म–चेतना को राष्ट्रभिक्त का आधार मानती है तो उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि हिंदू धर्म तथा बौद्ध धर्म की आध्यात्म चेतना एक ही है। धर्म–चेतना के मूल में एक रूप होना तिब्बत और भारत के बीच आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संबंध का आधार है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अर्थात धर्म–दृष्टि से तिब्बत ने अपने समग्र जीवन में धर्म–चेतना को जो स्थान दिया है उसे मान्य करते हुए हमें इस तथ्य को पहचानना चाहिए कि सनातन धर्म तथा भारतीय संस्कृति के ही एक रूप को जीवंत रखकर तिब्बत ने हमारी ही अध्यात्म–चेतना के एक महति अंश के ट्रस्टी होने की भूमिका निभाई है। जबकि पिछले पचास वर्षों से हम धर्म दृष्टि को अपने समग्र जीवन से अलग–थलग करते गए हैं तथा उसे गौण बनाते गए हैं, तब परमपावन दलाई लामा के नेतृत्व में तिब्बत मुक्ति–साधना ने उसी अध्यात्म–चेतना को न केवल जीवंत बनाए रखा है किंतु विश्व भर में उसकी प्रतिष्ठा भी की है। वे हमेशा कहते आए हैं कि भारत हमारा परापूर्व से गुरु है तथा वर्तमान में हमारा संघर्ष गांधी जी से प्रेरित है। इसके बावजूद भी हम इन्हें न अपनाएं, और न मान्यता दें, तो आने वाली

पीढ़ियां हमें स्वजन–द्रोही, भीरू, लोलुप और संकीर्ण कहेंगी।

चीन के प्रति हम भयभीत नहीं हैं यह आश्वासन जितना अपने ही देशवासियों को देना भारत सरकार के लिए जरूरी है उतना ही जरूरी चीन के मन से भी यह ख्याल दूर करना है। इसका सर्वोत्तम नैतिक और राजनैतिक रास्ता यही है कि तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता दी जाए। विश्व में जब तिब्बत एक ऐसा प्रसिद्ध दृष्टांत बन गया है कि जिसके साथ होने न होने से राष्ट्र की मानवाधिकार–निष्ठा की ही कसौटी नहीं हो रही है, किंतु उनकी नैतिक आवाज भी कितनी बुलंद है यह भी देखा जा रहा है, तब विश्व में नैतिक बल की दृष्टि से कमजोर हो चले भारत के लिए यह एक अवसर है कि वह अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित करे।

तिब्बत के मसले पर आज सबसे अधिक पहल करने वाले राष्ट्रों में अमेरिका और यूरोप के देश है। वे मानव अधिकार की बात उठा रहे हैं। हमारे लिए यह शर्म की बात है कि अमेरिका और यूरोप तिब्बत के उद्धारक की भूमिका में रहें जबकि भारत उसका दमन और नाश करने वालों का सहायक बना रहे। भारत कभी भी नैतिक रूप से अपना सर नहीं उठा पाएगा अगर तिब्बत के मसले में भारत की भूमिका गौण और स्वधर्म से विपरीत रही। विश्वस्तर पर एक नैतिक पहल अपने हाथ में लेने की दृष्टि से भी भारत सरकार को चाहिए कि कम से कम तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता देकर ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि करे। क्या भारत की सरकार तथा राजनेताओं ने अमेरिका को विश्व की नैतिक सत्ता भी मान लिया है?

ifj=k.kk; lk/kuke----

हमने स्वाधीनता संग्राम केवल भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए ही नहीं किया था। हमने विश्व में भारत का नैतिक और वैचारिक नेतृत्व स्थापित करने का स्वप्न देखा था। नानाप्रकार की हिंसा और जाति–दमन पर खड़ी हो रही पाश्चात्य विश्व–व्यवस्था को तो भारत ने चुनौती दी ही थी, किंतु मानव की गरिमा पर खड़ी संस्कृति की विश्वभर में प्रतिष्ठा करने की तथा विभिन्न प्रजाओं, जातियों तथा समुदायों की आत्मप्रतिष्ठा तथा स्वाधीनता की आवाज भी भारत बना था। विश्व ने भी भारत के इस रूप का स्वागत किया था। विश्व के पटल पर स्वाधीन होने का अर्थ भारत लिख रहा था। नैतिक सत्ता के एक अनोखे केंद्र के रूप में भारत उभर रहा था।

इस परिदृश्य में तिब्बत को असहाय स्थिति में छोड़कर जिस प्रकार न केवल हमने पड़ोस–धर्म नहीं निभाया किंतु उलटे तिब्बत के साथ विश्वासघात करके उसे चीन के हवाले कर दिया, इस कायरतापूर्ण अपराध को हम कहां रखेंगे? अधर्म, अनैतिकता, कायरता और लोहियाजी के शब्दों में शिशु–हत्या, वास्तव में तो साधु–हत्या के इस बोझ से हमें भारत की आत्मा को मुक्त कराना चाहिए।

इस अपराध की सजा तो हम भोग ही रहे हैं। अन्यथा इस तथ्य का हमारे पास क्या जवाब है कि हिंसक क्रांति से बना चीन अहिंसक क्रांति से बने भारत से अधिक ताकतवर सिद्ध हो रहा है। अगर अहिंसा की शक्ति हिंसा की शक्ति से बड़ी है तो होना तो उससे उलटा चाहिए था। यह सोचकर आत्मिक पीड़ा होती है कि इसी शताब्दी में चीन और भारत दोनों में क्रांति हुई; भारत की क्रांति के नेता के समक्ष विश्व झुक गया, उसे इस युग की त्रासदी में से निकालने वाला मार्गदर्शक माना, फिर भी आज भारत कमजोर राष्ट्र बनकर खड़ा है और चीन ताकतवर।

अहिंसा के रास्ते चलकर अगर कमजोर हुए होते तो आधुनिक इतिहास में सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य के अस्त का हम कारण और प्रेरणा नहीं बने होते। प्रश्न तो यही है कि क्या कारण है कि 1947 में सर्वोच्च शक्तिशाली बना भारत अगले ही कुछ वर्षों में, आजादी का युद्ध समाप्त होने के साथ

ही मार खाने लगा? न केवल हम अपने पड़ोसी तिब्बत को बचा ही नहीं पाए, उसे समझ भी नहीं पाए कि ये हमारे है या पराए हैं। कया हो गया हमारी बुद्धि को कि हमारी शक्ति भी क्षीण हो गई?

हो यह गया कि आजादी के बाद हम न तो रहे अहिंसा में, और न ही रहे हिंसा में। हमने पौरुष का त्याग कर दिया। चीन जो था वही रहा। हमने आजादी तो दुनिया में कुछ करने के लिए पाई थी। गांधीजी का वह ताबीज राष्ट्र के गले में भी लटका हुआ था। कमजोर से कमजोर राष्ट्र के हित में खड़ा होना साम्राज्यवाद के खिलाफ अहिंसक राज्यवाद को लेकर खड़े हुए भारत का स्वधर्म था। लेकिन इसके लिए समर्थ और शक्तिशाली होना जरूरी था। हमारी स्थिति तो यह हुई कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ में छोटा–सा देश अल–सल्वाडोर तिब्बत का सवाल उठाने लगा तो हमारे प्रतिनिधि नवानगर के जामसाहिब ने उसे चुप कर दिया। जब भारत ही तिब्बत को बचाने के लिए आगे नहीं आ सका तो और किसी के आने का प्रश्न ही नही उठता। फिर भी आज स्थिति तो यह है कि मानवाधिकार और स्वायत्तता के प्रश्न पर जहां विश्व के अधिकतर राष्ट्र चुप नहीं हैं, वहीं भारत चुप है।

अगर हम अपने आत्मसम्मान को नहीं पहचान सकते तो हमने आजादी क्यों पाई थी? आजादी के युद्ध के दरम्यान हमने जो पाया वह आजाद होते हुए कैसे गंवा दिया? विश्व में सम्मानहीनता की हमारी आज की स्थिति की नींव कहां पड़ी है? आत्मसम्मान का प्रश्न हमारे आत्मबोध के साथ जुड़ा हुआ है। तिब्बत का प्रश्न आजाद भारत के आत्मबोध और आत्मसम्मान की कसौटी का प्रश्न है। इसलिए इस प्रश्न को हमें बार–बार पूछना पड़ेगा कि क्या हो गया है हमारी बुद्धि को और हमारी शक्ति को? न साधु के परित्राण की शक्ति न दुष्टता के नाश की ही।

क्या तिब्बत के प्रश्न को अपनी आने–जाने वाली सरकारों द्वारा गंभीरता से उठाने का औचित्य सिद्ध नहीं हुआ है? समर्थन की व्यापकता अगर औचित्य स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था में दूसरा कौन –सा रास्ता है?

लोकमत के स्तर पर तिब्बत के मुद्‌दे को अगर परखेंगे तो हमें केवल विस्मय होगा कि व्यापक लोकमत तिब्बत के समर्थन में ही पाया जाएगा। हालांकि तिब्बत के मुद्‌दे पर लोकमत का दबाव महसूस हो नहीं रहा है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यापक लोकमत तिब्बत के समर्थन में नहीं है। नागरिकों के जिस भी स्तर पर बात कही जाए, समर्थन ही मिलेगा क्योंकि सामान्य नागरिक अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की सौदेबाजी को न तो स्वीकार करता है और न उसके मन में चीन के प्रति श्रद्धा है और न भय ही है। उन्हें बौद्ध धर्म और तिब्बती लोग अपनी ही धरती के दिखते हैं; अपने ही व्यापक परिवार के दिखते हैं। लेकिन यह दुख की बात है कि तिब्बत के दुख में इस व्यापक भारतीय परिवार की हिस्सेदारी नहींवत है।

बौद्धिकों और राजनीतिकों में भी घोषित रूप से तिब्बत की आजादी के विरोधी केवल वे ही हैं जिनकी अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट परिवार की सदस्यता उनकी भारतीय सांस्कृतिक परिवार की सदस्यता से अधिक बढ़–चढ़कर बोलती है। हालांकि उनके अंदर भी चीनी साम्राज्यवाद के विरोधी और तिब्बत समर्थक हैं। कुछचीन विशेषज्ञ बौद्धिक भी हैं जिनकी चीन विशेषज्ञता भारत से अधिक चीन के हित में पल रही है। न्याय का सामान्य सिद्धांत इन बौद्धिकों की निष्ठा को आकर्षित नहीं कर सकता। कूटनीति और किताबी राजनीति शास्त्र के जटिल और उलझे हुए सिद्धांत उनकी बुद्धि को चमत्कृत करते हैं। बहुधा बौद्धिक पांडित्य – मौजूदा संदर्भ में विदेश–नीति शास्त्र का पांडित्य–राष्ट्रीय हित की श्रेष्ठता की तो बात करता है किंतु श्रेष्ठ राष्ट्रीय–हित किसमे है यह देखने की दृष्टि हर लेता है।

हालांकि पंचशील तथा सुरक्षा परिषद में अपनी सदस्यता को दरकिनारकर पहले चीन को सदस्य

बनवाने के हमारे अनुभवों के द्वारा चीन ने कठोरतम तरीके से बता दिया कि अपना राष्ट्रीय–हित सर्वोपरि होता है, न कि विश्वास और मित्रता। जवाहरलाल नेहरू को खुद आगे चलकर यह स्वीकार करना पड़ा कि वे इस मायने में सीधे–सादे ही सिद्ध हुए। 8 नवंबर 1962 को लोकसभा में बोलते हुए उन्होंने कहा –

''...यह सोचकर दुख होता है कि हमने तो दुनियाभर में शांति स्थापना के लिए कोशिश की और चीन से मित्रता की तथा उसके साथ शिष्टता एवं सद्भाव का बर्ताव किया और दुनिया की परिषदों में उसकी पैरवी की, पर आज हम एक ऐसे देश के नए साम्राज्यवाद और विस्तारवाद का शिकार हो रहे हैं, जो अपने को साम्राज्यवाद–विरोधी कहता है। इतिहास के इस अजीब मोड़ ने हमारा सामना एक ऐसी बात से करा दिया है, जिसका अनुभव हमें पिछले सौ वर्षों से भी अधिक समय से नहीं हुआ था।....दुरंगी चाल मेरे जैसे सीधे–सादे आदमी के लिए समझ सकना मुश्किल है.....।''

जवाहर लाल नेहरू के इस एहसास को, तथा अपनी भूल को सुधारने के एक छोटे से प्रयास के रूप में तिब्बत की निर्वासित सरकार को भारत में शरण देने के उनके कदम की ऐतिहासिक निरंतरता में अगर कांग्रेस सोचेगी तो इन्हें स्पष्ट दिखेगा कि उनका कर्तव्य क्या है। एक दल के रूप में इनकी जिम्मेदारी किसी भी अन्य दल से अधिक है कि वे अपने भी इतिहास की भूल को सुधारने की और नेहरूजी द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया को आगे बढ़ाएं।

राजनैतिक क्षेत्र में तिब्बत का समर्थन अघोषित रूप से सभी दलों के भीतर है और था भी। सरदार पटेल से लेकर राजगोपालाचारी, डॉ.राजेंद्र प्रसाद, बाबा साहेब अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेंद्र देव, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, राममनोहर लोहिया, ज्ञानी जैल सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी इत्यादि महत्वपूर्ण स्थान पर रहे नेता भी तिब्बत समर्थक रहे हैं और हैं। यही स्थिति देश के बौद्धिकों और पत्रकारों के बीच भी है। इसके बावजूद तिब्बत पर भारत की शर्मनाक और कायरतापूर्ण भूमिका का कारण समझ में नहीं आता। चीन से हमारी सरकार किस प्रकार भय ग्रस्त रहती है उसके कुछ प्रमाण यहां मौजूद हैं। इस भय से मुक्त होने की बात उठाकर हमारी इस दुविधा के कारण पर उंगली भी यहां रखी गई है। हमारे नेतृत्व की विरोधाभासपूर्ण और शर्मनाक स्थिति का मार्मिक चित्र खींचकर भारत की नीति की विसंगतियों तथा भारत–तिब्बत की अंतरंगता पर भी यहां प्रकाश डाला गया है।

भारत में तिब्बत समर्थकों की मनोभूमिका में थोड़ा परिष्कार करने की आवश्यकता पर भी कुछबात कर लेना जरूरी है। तिब्बत को हमें क्यों समर्थन देना है? केवल जयप्रकाश जी को छोड़कर शायद ही कोई समर्थक ऐसा है जिसने इसे एक धार्मिक अर्थात नैतिक दायित्व माना हो। सबकी दृष्टि उपयुक्ततावादी–अर्थात अपने हित की प्राथमिकता की दृष्टि है यह खेद का विषय होना चाहिए। जिन कारणों को गिनवाया जाता है उनमें भारत की सीमा–सुरक्षा, चीन और भारत की सीमाओं के बीच दूरी की आवश्यकता; हिमालय के पर्यावरण का सवाल; चीन द्वारा तिब्बत में डाले जा रहे परमाणु कचरे के कारण भारत के समक्ष आण्विक प्रदूषण का मामला; हिमायल से निकलती और भारत में बहती नदियों का प्रश्न; इत्यादि अनिवार्य रूप से गिनवाए जाते हैं। अर्थात, एक या दूसरे किस्म की भारत की सुरक्षा ही एकमात्र ऐसा कारण है जिसकी वजह से तिब्बत की आजादी की बात इन तिब्बत मित्रों में होती है। यह उपयुक्ततावाद है; अर्थात स्वार्थ के कारण ही हम तिब्बत की आजादी के समर्थक है, किसी सिद्धांत या आदर्श–निष्ठा के कारण नहीं। दूसरा दृष्टिकोण मानवाधिकारवादी है। अर्थात तिब्बतियों का दुख दर्द हमसे देखा नहीं जाता क्योंकि हमारा मन खराब होता है – मन को व्यथा होती है, इसलिए हम उसके समर्थक हैं। यह दृष्टिकोण भी अनात्मिय है। अगर सीधा स्वार्थ प्रेरित नहीं है तो भी यह

कोई बहुत उदात्त दृष्टिकोण नहीं है, दया प्रेरित है। दोनों दृष्टियों से भिन्न, क्या हम तिब्बत के समर्थक इसलिए हैं कि तिब्बती लोगों की जीवन–दृष्टि को कुचला गया है, उनकी श्रद्धा को दमित किया गया है, उनकी निष्ठा को तोड़ा जा रहा है? उन पर किए जा रहे शारीरिक और राजनैतिक अत्याचार मूल में आध्यात्मिक हिंसा के लिए ही है, उनके शरीर को और आत्मा को दोनों को कुचला जा रहा है। प्रश्न यह है कि तिब्बत की व्यथा से हमारे भीतर किस स्तर की व्यथा पैदा हुई है? हमारे स्वार्थ में हानि होने की व्यथा, हमारे सैद्धांतिक 'मानवतावाद' को पहुंची व्यथा या हमारी आत्मा को व्यथा हुई है?

इन सबका आधार इस बात पर है कि तिब्बत के साथ अपने संबंध को हम कहां रखते हैं, तिब्बत को कैसे देखते हैं। लेकिन मुश्किल तो यह है कि हमने खुद ही अपनी दृष्टि गंवा दी है। भारत को भी हमारा आधुनिक बौद्धिक वर्ग एक जनसंख्या, एक भूगोल, एक राज्य के रूप में अर्थात भौतिक दृष्टि से ही देखता है। सांस्कृतिक दृष्टि क्षीण हो चुकी है। इसलिए हमें तिब्बत के साथ का वह संबंध नहीं दिखता जो न केवल मूलभूत है, बल्कि संस्कृति का एक सुंदर अध्याय भी है। यह अध्याय कितना सुंदर है, कितना कितना मार्मिक है इसका प्रमाण निर्वासित तिब्बती संसद के अध्यक्ष प्रो. सामदोंग रिंपोछे का वह कथन है जिसमें उन्होंने सहज रूप से कहा है कि भारतीय संस्कृति के बचाव के लिए तिब्बत का बलिदान भी देना पड़े तो उसके लिए वे सहर्ष तैयार हैं। प्रो. रिंपोछे की यह बात पूरी तिब्बती चेतना का प्रतीक है। इससे श्रेष्ठ सांस्कृतिक निष्ठा, धर्म–चेतना या सत्यनिष्ठा का उदाहरण और क्या हो सकता है? भारत के प्रति इस भाव को क्या हम राष्ट्रभक्ति कहेंगे? यह राष्ट्र–भक्ति तो नहीं है। यह तो उससे ऊंची भावना है, जो खुद के राष्ट्र के बलिदान का भी आह्वान कर सकती है। इस तिब्बती मुक्ति–चेतना की तुलना में हमारा तिब्बत समर्थन संकीर्ण राष्ट्रवादी समर्थन ही दिखता है। इस समर्थन का उदात्तीकरण करने से ही इसमें इच्छित शक्ति आएगी।

भारत जिस संस्कृति का प्रतीक रहा है और जिसे स्पष्ट करने हेतु गांधी जी ने भी यह कहा कि मैं देश को छोड़ सकता हूं लेकिन सत्य को नहीं, उसी संस्कृति की चेतना तिब्बत मुक्ति–साधना में झलकती है। यही वह सुंदरतम अध्याय है जिसका हिस्सा हम हैं तो सही किंतु वह बोध हममें क्षीण हो गया है।

परमपावन दलाई लामा तथा उनके अनुयाई हमारी ही संस्कृति की चेतना से हमें फिर से परिचित करवा रहे हैं – बहुत ऊंची और दारूण कीमत चुका कर। हमारा कर्तव्य है कि तिब्बत के प्रति अपने स्वधर्म का पालन कर हम एक राष्ट्र के रूप में कभी कृतघ्न और स्वार्थी न कहलाएं।

नई दिल्ली, 15 अगस्त, 1998

साभार : गांधीमार्ग से

—

1959 की जनक्रांति : तिब्बत में जनसंहार का चीनी महिमामंडम कब तक चलता रहेगा ?

–क्लॉड आर्पी

''.... 19 मार्च की रात ल्हासा में तिब्बत की जनता की इच्छा के विरूद्ध अपनी मातृभूमि को धोखा देते हुए तिब्बत की स्थानीय सरकार तथा साम्राज्यवाद से जुड़े उच्चवर्गीय प्रतिक्रियावादी गुट ने विद्रोही लुटेरों को इकट्ठा किया और पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के खिलाफ सशस्त्र हमला बोल दिया। इस विद्रोह को खत्म करने का आदेश पाते ही 22 मार्च को तिब्बत में स्थापित पीएलए के बहादुर जत्थों ने ल्हासा शहर में इन विद्रोहियों का सफाया कर दिया। अब तिब्बत के अन्य भागों में भी पीएलए विभिन्न वर्गों के देशभक्तों की सहायता से (जिनमें से कुछ विभिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, तो कुछ धर्मनिरपेक्ष भी हैं) इन विद्रोहियों का सफाया करने में लगी हुई है। ....''

ये शब्द थे 28 मार्च, 1959 को न्यूचाइना न्यूज एजेंसी द्वारा जारी चीनी विज्ञप्ति के। ल्हासा की समस्त जनता द्वारा किए गए विद्रोह के विषय में साम्यवादियों के मुख से निकले ये वो पहले शब्द थे जिन्हें सारी दुनिया ने सुना। पचास वर्ष पहले की बात है। तारीख थी 10 मार्च, 1959। जनरल तान गुआन्सान। चलिए उससे भी कुछ दिन पहले की बात करते हैं।

तिब्बत पिछले 9 वर्षों से पराधीन था। 1959 के शुरुआती दिनों में, जबकि स्थिति पहले से ही काफी खराब हो चुकी थी, चीनी सेना के कमांडर ने चीनी हैडक्वार्टर में दलाई लामा को एक नाटक देखने के लिए आमंत्रित किया। एक अजीब सी शर्त भी रखी गई : वे अपने अंगरक्षकों के बिना आएं।

दलाई लामा ने बाद में मार्च 1959 की घटनाओं की पृष्ठभूमि की व्याख्या करते हुए लिखा : दलाई लामा एक महीना पहले ही चीनी हैडक्वार्टर में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम को देखने के लिए अपनी सहमति दे चुके थे। अचानक ही इस कार्यक्रम की तिथि 10 मार्च निश्चित कर दी गई। ल्हासा के लोगों को शक हुआ कि दलाई लामा को कोई नुकसान पहुंचाया जाएगा। नतीजे के तौर पर दलाई लामा को उस कार्यक्रम में जाने से रोकने के लिए और उनकी रक्षा करने के लिए दलाई लामा के ग्रीष्मकालीन महल नोर्बूलिंग्का के चारो ओर लगभग 10,000 लोग इकट्ठा हो गए। लोगों द्वारा किए गए इस प्रदर्शन के बावजूद दलाई लामा और उनकी सरकार चीनी सरकार से मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखना चाहती थी और इसीलिए उनकी हमेशा यही कोशिश रही कि वे चीनी शासन से बातचीत करें और बातचीत के जरिए तिब्बत में शांति की स्थापना तथा लोगों के आक्रोश को शांत करने की कोशिश करें।''

लेकिन युवा दलाई लामा के लिए स्थिति नियंत्रण से बाहर होती जा रही थी। अधिक नुकसान की हालत में होते हुए भी उन्होंने दोनों पक्षों से बातचीत का मार्ग खुला रखा। वे हृदय से अपने ही लोगों के साथ थे लेकिन वे चीनियों की बर्बरता से भी परिचित थे। वे हर कीमत पर खून–खराबे से बचना चाहते थे। क्या यह अभी भी संभव था? दलाई लामा ने जनरल तान को कुछ पत्र लिखे। उन्होंने सोचा कि इस तरह कुछ समय बीत जाने पर यह चीनी अधिकारी और बीजिंग में उनके स्वामी अस्थायी तौर पर शांत हो जाएंगे। हालांकि वे जानते थे कि जल्दी ही उन्हें अपनी नीति बदलनी होगी।

तिब्बत की जनता को चीनी अधिकारियों की दमनकारी गतिविधियों से बचाने के लिए कई वर्षों

तक दलाई लामा झुकते रहे। इन पत्रों में दलाई लामा ने कुशल रणनीति का बहुत कम ही प्रयोग किया है। वे जानते थे कि तिब्बत अभी न जीतने वाली स्थिति में है। उन पर दबाव बढ़ता जा रहा था। लोगों का आक्रोश भी बढ़ता जा रहा था और वे राजनैतिक स्थिति पर झुंझला उठे थे।

इन पत्रों की भाषा तथा लय 2009 के तिब्बत के साम्यवादी दल के नेताओं के द्वारा प्रयोग किए गए शब्दों से मिलती जुलती थी। इससे पता चलता है कि 50 वर्ष बाद भी दल के अधिकारियों की सोच और काम करने का तरीका अभी भी वही है।

17 मार्च को राजकीय भविष्यक्ता (नेचुंग) ने दलाई लामा को शीघ्र ही देश छोड़कर चले जाने का आदेश दिया। चीनी छावनी से नोर्बूलिंग्का महल की ओर तोप के 2–3 गोले दागे गए लेकिन सौभाग्यवश वे गोले पास ही एक तालाब में जा गिरे। ये बारूद के गोले मानों दलाई लामा के लिए ईश्वर का आदेश थे कि वे नेचुंग की सलाह को मानें। अब समय आ गया था कि वे तिब्बत को छोड़ दें।

कुछ समय तक वह युवा तिब्बती नेता यह मानता रहा कि वह दक्षिणी तिब्बत में अपनी सरकार बना सकता है और चीनी सरकार से बातचीत कर सकता है। लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। भविष्यवक्ता नेचुंग ने एक कागज पर एक मार्ग बनाया जिसे दलाई लामा तथा उनके दल को अपनाना चाहिए। उन्हें भारतीय सीमा को पार करके नेफा (वर्तमान अरूणाचल प्रदेश) पहुंचना था।

iyk;u

रात को दलाई लामा वेश बदलकर बिना किसी की नजर में आए नोर्बुलिंग्का महल से बाहर निकलने में सफल हुए। बाद में क्यीचू नदी के उस पार उनके परिवार के कई सदस्य तथा उनके खम्पा अंगरक्षक भी उनसे आ मिले। पास ही चीनी सेना के दस्तों ने डेरा डाला हुआ था, लेकिन उन्हें पता लगे बिना उन्होंने नदी को पार कर लिया और दक्षिण की ओर चल पड़े। हालांकि दलाई लामा के पलायन के समाचार को छिपा कर रखा गया था, फिर भी ल्हासा में लड़ाई शुरु हो गई जो दो दिनों तक चली। 31 मार्च की रात दो बजे चीनी सैनिकों ने महल पर धावा बोल दिया और एक ही दिन में लगभग 800 गोले दागे। आसपास रह रहे हजारों पुरुष, महिलाएं तथा बच्चे मारे गए तथा वहां रहने वाले सैकड़ों अधिकारियों के घर तबाह हो गए। दलाई लामा की रक्षा करने वाली रेजिमेंट को निहत्था करके उन्हें सरेआम मशीनगनों से भून दिया गया। तिब्बत की निर्वासित सरकार के अनुसार, ''इस दौरान तिब्बत के मध्य भाग में 86000 से भी अधिक तिब्बतियों को जान से मार डाला गया था।''

^fonkgh yVjk* dk lQk;k

बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक त्रासदी तिब्बत में घट रही थी और दुनिया इससे बेखबर थी। इस खबर को ऊंची हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं को पार करने में कई हफ्ते लग गए।

igyk c;ku

कुछ दिन बीत जाने पर चीनियों को दलाई लामा के पलायन के बारे में पता चल गया। उनकी प्रतिक्रिया बहुत ही हिंसक थी। चीनी घोषणा में कहा गया, ''विद्रोही लुटेरों का पूरी तरह से सफाया करने के लिए राज्य परिषद ने तिब्बत में मौजूद पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की टुकड़ियों को वहां के विभिन्न स्थानों को अपने कब्जे में कर लेने का आदेश दिया था। सैनिक नियंत्रण समितियों को कुछ इस प्रकार के काम सौंपे गए : विदेशियों की रक्षा करना जो चीनी कानूनों का पालन कर रहे हों; तिब्बत के स्वायत्तशासी प्रदेश में विभिन्न स्तरों पर प्रशासनिक निकायों की स्थापना करना; पुरानी तिब्बती सेना के 3000 से कुछ ज्यादा सैनिकों के बदले देशभक्त तिब्बतियों की आत्मरक्षक सशस्त्र सेना का गठन

करना क्योंकि पुराने सैनिक वास्तव में बिलकुल बेकार और लड़ने में नाकाबिल साबित हुए और विद्रोही हो गए।''

1950 में तिब्बत में लिबरेशन आर्मी के तैनात होने के बाद से चीन सरकार ने तिब्बत में हो रही गड़बड़ी तथा चीनी कब्जे के खिलाफ व्यापक विद्रोहों की असलियत को पहली बार स्वीकार किया। माओ के लिए यह सब कुछ नया था। लॉग–मार्च के दिनों में लोग उनका स्वागत एक नायक के रूप में करते थे। लिबरेशन आर्मी जहां–जहां भी जाती, आम लोगों द्वारा उसका स्वागत मुक्ति दिलाने वाली सेना के रूप में किया जाता। लोग उन्हें भोजन तथा अन्य जरूरत का सामान भी प्रदान करते थे। यह पहली बार था कि तिब्बत में आम जनता ने लिबरेशन आर्मी को नहीं स्वीकारा।

हालांकि कम्युनिस्ट शासन यही प्रचार करता रहा कि यह उच्चवर्गीय दलाई गुट के विरूद्ध गुलामों का एक विद्रोह मात्र है और इस विद्रोह में केवल 'महंत' और कुलीनतंत्र ही शामिल हैं। जबकि असलियत यह है कि 10 मार्च को जनसाधारण ने अपने नेता की रक्षा के लिए एक आंदोलन छेड़ा था। दुख की बात है कि पचास वर्ष बीत जाने पर भी आज भी चीन का शासन तिब्बत में हान लोगों की मौजूदगी के विरूद्ध तिब्बती जनता द्वारा हुए विद्रोह की जिम्मेदारी 'दलाई गुट' पर डालता है। क्या कभी वे असलियत पहचानेंगे?

ykd lHkk esa

इस विद्रोह का उल्लेख भारत की लोकसभा में पहली बार 23 मार्च, 1959 को हुआ जब प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने एक वक्तव्य दिया। उस समय इस विषय पर जानकारी बहुत कम थी क्योंकि जानकारी का एकमात्र सूत्र ल्हासा स्थित भारतीय वाणिज्य दूतावास था जो वायरलैस के जरिए समाचार भेजता था। नेहरू के अनुसार भारतीय राजदूत मेजर एल.एस. छिब्बर ने इस विषय में हस्तक्षेप न करके अच्छा ही किया। यह वाक्य भारतीय सरकार की विरोधाभासी प्रवृत्ति को दर्शाता है। एक ओर तो हस्तक्षेप न करने की बात की जाती है तो दूसरी ओर दस दिन बाद ही हजारों तिब्बतियों को भारत द्वारा शरण दे दी जाती है। (भारत सरकार द्वारा उठाया गया यह एक ऐसा कदम था जिसे चीन आज भी अपने आंतरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप मानता है)। तब से ही भारत और चीन के संबंध पहले जैसे नहीं हो सके।

fr(cr esa vafre fnu

दलाई लामा के पलायन की कहानी से, जिसका जिक्र, उनकी दोनों आत्मकथाओं मे है, सभी परिचित है। असम के तेजपुर में सैकड़ों पत्रकार उनका इंतजार कर रहे थे। लेकिन उनकी उस महत्वपूर्ण यात्रा के अंतिम क्षणों का जिक्र करना जरूरी है। भारत की सीमा के निकट लुन्त्से जौंग में कुछ दिन विश्राम करने के बाद उन्होंने अपने दो अधिकारी भारत सरकार के पास भेजे और अपने लिए तथा अपने दल के लिए शरण मांगी। उनके संदेश में कहा गया था, ''भारत के प्रधानमंत्री तथा उनके साथियों द्वारा दलाई लामा के भारत में सुरक्षित पहुंचने पर दी गई शुभ कामनाओं ने उन्हें भीतर तक छू दिया है।''

उसी समय उन्हें शरण दे दी गई। यह एक नए जीवन की शुरुआत थी। तिब्बत छोड़ने के उन क्षणों के बाद अगले दो दशक तक दलाई लामा का अपनी जनता के साथ संपर्क नहीं हो सका।

'khr ;q) dh Hkk"kk

संसद में हुई पहली बहस के दौरान प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने उस पत्र का कोई जिक्र नहीं किया जो उन्हें चीन के दूतावास से प्राप्त हुआ था। लेकिन एक महीने बाद जब लोकसभा में नेहरू चीन के वक्तव्य पर बोल रहे थे, तो वे काफी विचलित लगे। भारतीय प्रधानमंत्री ने स्पष्ट तौर पर कहा

कि उन्हें चीन के वक्तव्य की भाषा 'शीत युद्ध की भाषा' लग रही है। लंबे समय से चली आ रही मित्रता और पंचशील के पांच सिद्धांतों वाले दिन समाप्त हो गए। नेहरू ने स्पष्ट किया, ''यह कहना कि तिब्बत में इस सब के लिए कुछ उच्चवर्गीय प्रतिक्रियावादी जिम्मेदार हैं, एक जटिल स्थिति को एक बड़ी ही साधारण सी स्थिति में बदलने जैसा है।''

चीनियों का इस बारे में क्या कहना है कि जब ल्हासा की 90 प्रतिशत से अधिक जनता ने जुलूसों, प्रदर्शनों तथा नोर्बूलिंग्का महल की रक्षा में एक दूसरे का साथ दिया। चीन चाहता है कि सारी दुनिया इस बात पर यकीन करे कि तिब्बत में चीनी सरकार द्वारा अपनाई गई नीति सही है, जबकि यह एक कटु सत्य है कि मध्य तिब्बत में चीनी सैनिक दस्तों की बड़ी संख्या में मौजूदगी के कारण तिब्बत की राजधानी अपने 2000 वर्ष पुराने इतिहास में पहली बार इतनी कठिनाइयों का सामना कर रही है, जिनमें से एक है –अकाल। इससे भी बुरा यह है कि वहां के लोग अब उस तरह से अपने धर्म का पालन नहीं कर पा रहे हैं जिस तरह वे सदियों से करते आ रहे थे।

हालांकि चीनियों को वे केवल 'साम्राज्यवादियों' तथा 'गुलामों' के स्वामियों के रूप में ही दखिाई दे रहे थे। चीनी प्रचारतंत्र लगातार कह रहा था, ''तिब्बती देशद्रोहियों की विद्रोही गतिविधियां काफी लंबे समय से चल रही हैं। ये विद्रोही साम्राज्यवाद तथा गुलामों के अत्यधिक प्रतिक्रियावादी स्वामियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब से चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने तिब्बत में प्रवेश किया है और सेंट्रल पीपुल्स गवर्नमेंट तथा तिब्बत की स्थानीय सरकार ने तिब्बत की शांतिपूर्ण आजादी के तरीकों से संबंधित समझौते (1951) को संपन्न किया है तभी से वे इस समझौते को नष्ट करने की साजिश रच रहे हैं और एक सशस्त्र विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। लेकिन क्योंकि मातृभूमि दिन–प्रतिदिन संपन्नता की ओर आगे बढ़ रही है, तिब्बत के प्रति सेंट्रल पीपुल्स गवर्नमेंट की नीति सही है, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने तिब्बत पर कड़ा अनुशासन स्थापित किया हुआ है, उन्हें तिब्बत के विभिन्न वर्गों का पूरा–पूरा प्यार तथा सहयोग मिल रहा है और मुट्ठीभर प्रतिक्रियावादियों की षड़यंत्रकारी गतिविधियों को तिब्बती लोगों की ओर से किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिल रहा है।

2008 में एक बार फिर तिब्बती जनता ने अपने देश पर हुए कब्जे का जमकर विरोध किया। 2008 के मार्च तथा अप्रैल महीने में दो महीने तक चलने वाले प्रदर्शन इसके ताजा किंतु असुविधाजनक प्रमाण हैं। 1959 में चीनी घोषणा द्वारा प्रस्तुत निष्कर्ष को यहां प्रस्तुत करना जरूरी हो जाता है, '' उनकी इच्छाओं के विपरीत दलाई गुट द्वारा शुरु किया गया विद्रोह मातृभूमि तथा तिब्बत के बीच फूट नहीं डाल पाया, बल्कि इसने राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया, प्रतिक्रियावादी ताकतों के पतन में सहायता दी, तिब्बत को लोकतांत्रिक ढांचे में ढालने में मदद की तथा तिब्बती लोगों को नया जीवन प्रदान किया।''

हालांकि 50 वर्ष बाद भी लोकतांत्रिक ढांचा कहीं नजर नहीं आ रहा, इससे पहले कभी चीन इतना विचलित नहीं था। दरअसल तिब्बती लोगों को कभी नया जीवन मिला ही नहीं और 'बर्फ का देश' अब भी पराधीन ही है।

ल्हासा रेडियो पर एक समाचार में 9 फरवरी को साम्यवादी दल के स्वामी जांग चिंग्ली के चाम्दो आगमन के बारे में बताया गया, ''वायुमंडल में नववर्ष की उमंग भरी हुई है, प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है, सुंदर नवीन ग्रामीण क्षेत्र अपनी विभिन्न राष्ट्रीयताओं वाली जनता के साथ समृद्धि की ओर बढ़ रहा है। लेकिन साथ ही इस 'मातृभूमि की रक्षा के लिए' सैनिक शासन की स्थापना भी जरूरी है।....''

आखिर कब तक चीनी नेता वही पुराने निरर्थक वाक्य दोहराते रहेंगे और दुनिया को यह यकीन दिलाने की व्यर्थ कोशिश करते रहेंगे कि तिब्बत में सब कुछ ठीकठाक है?

क्लॉड आर्पी भारत में बसे फ्रांसीसी पत्रकार हैं और तिब्बत मामलों के विशेषज्ञ हैं

——

तिब्बती इतिहास के कुछ बुनियादी तथ्य
तिब्बत का प्रश्न आज भी अर्थवान है

रणजीत गुप्ता, आईएफएस (सेवानिवृत्त)

(गुड़गांव में 1 दिसंबर, 2008 के दिन तिब्बत समर्थक समूहों के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिए गए मुख्य वक्तय का आलेख)

हम लगातार एक–दूसरे से जुड़ी और एक–दूसरे पर निर्भर दुनिया में रह रहे हैं। दुनिया के किसी भी हिस्से में जो कुछ भी होता है उसका अन्य हिस्सों में रहने वाले लोगों पर असर होता है और लोगों की उसमें रुचि होती है। इसलिए पूरी दुनिया के लोगों को कहीं भी होने वाले घटनाक्रम के बारे में अपनी राय और भावनाएं प्रकट करने का अधिकार है। तिब्बत की असाधारण समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत में रुचि होने के अलावा लोगों की यह चिंता भी जायज हो सकती है कि तिब्बत में बहादुरी से संघर्ष करने वाले लोगों को वह सम्मान दिया जाना चाहिए जिसके वे पूर्ण हकदार हैं। इन राय को यह कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि यह एक संप्रभु राष्ट्र के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप हैं। चीन द्वारा किए जा रहे ऐसे किसी भी प्रयास को खारिज किया जाना चाहिए।

बौद्ध धर्म मानवता की एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत है। मैं धर्मों के बीच परस्पर कोई तुलना नहीं करना चाहता, लेकिन यह दुहराना जरूर चाहूंगा कि अन्य किसी धर्म के दस्तूर की तुलना में बुद्ध का करुणा, शांति और अहिंसा का सिद्धांत मानवता के लिए सबसे अच्छा रास्ता है और आज की दुनिया में बढ़ते क्रोध, उद्दंडता, भौतिकवाद और बलवे को देखते हुए अब इसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। भगवान बुद्ध का संदेश भारत में जंगल की आग की तरह फैल गया था और बाद में यह चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया और तिब्बत सहित पूरे पूर्वी एशिया और अन्य एशियाई देशों के लोगों के करोड़ों लोगों का धार्मिक विश्वास बन गया। बौद्ध धर्म अपने जन्म स्थान में ही घट गया लेकिन सौभाग्य से बौद्ध धर्म के गहन धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों की प्रतियों को तिब्बती मठों के विद्वानों और लामाओं ने पूरी श्रद्धा, समर्पण, सावधानी और मेहनत के साथ संरक्षित करके रखा। अपने विशिष्ट और वैभवपूर्ण प्रतिमा विज्ञान के द्वारा बौद्ध धर्म के संरक्षण, प्रसार और उसे समृद्ध बनाने में तिब्बती जनता की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है।

तिब्बत की धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा मानवता की विरासत का एक एकीकृत और कीमती हिस्सा बन गया है और इस विरासत का संरक्षण पूरे दुनिया की जिम्मेदारी है। धार्मिक और सांस्कृतिक पहलू तो सबसे महत्वपूर्ण है हीं, इसके अलावा भी एक प्रमुख तथ्य यह है कि तिब्बत कई महान एशियाई नदियों का उद्गम स्थल है जो चीन के साथ ही भारत, बांग्लादेश, कंबोडिया, लाओस, म्यांमार, पाकिस्तान और थाइलैंड के लोगों के लिए जीवन रेखा जैसी हैं। इन देशों में दुनिया की करीब आधी जनसंख्या रहती है। जैसे–जैसे हम 21वीं शताब्दी में आगे बढ़ते जा रहे हैं यह क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय सामरिक गतिविधियों को केंद्र बनता जा रहा है। इन सब वजहों से तिब्बत में जो कुछ भी होता है और इसका जो भी भविष्य होता है वह पूरी दुनिया के लिए गंभीर रुचि की बात है और इससे सबका जुड़ाव है।

इस परिप्रेक्ष्य में और इतनी विशाल संख्या में उपस्थित जनसमूह को देखते हुए मेरा यह मानना है कि तिब्बत के इतिहास के कुछ बुनियादी तथ्यों पर गौर कर लिया जाए, जिनकी वजह से तिब्बत की जतना को दुःख और दुर्दशा का सामना करना पड़ रहा है।

चीन का तिब्बत पर दावा ऐतिहासिक रूप से सवाल खड़े करता है और इसकी वैधानिकता भी संदिग्ध है। साल 1988 में स्ट्रासबोर्ग में दिए गए अपने संबोधन में दलाई लामा ने कई प्रख्यात इतिहासकारों द्वारा तैयार विद्धतापूर्ण अनुसंधान ग्रंथों का सारांश पेश किया था और कई ऐसे तथ्य पेश किए थे जो काफी सटीक और सही थे। उन्होंने कहा था, "हमारा इतिहास दो हजार साल से भी पुराना है और हम एक स्वतंत्र देश रहे हैं। 127 ईसापूर्व में देश की स्थापना के बाद हम तिब्बतियों ने कभी भी अपने ऊपर किसी विदेशी ताकत की संप्रभुता स्वीकार नहीं की। सभी देशों की तरह तिब्बतियों ने ऐसा दौर देखा है जब हमारे पड़ोसियों–मंगोल, मांचू, चीनी, ब्रिटिश और नेपाल के गोरखाओं ने हमारे ऊपर प्रभुत्व कायम करने की कोशिश की। लेकिन ऐसे प्रयास संक्षिप्त साबित हुए और तिब्बती जनता ने कभी भी अपना राष्ट्रीय प्रभुत्व खोते हुए उन्हें स्वीकार नहीं किया। वास्तविकता तो यह है कि कई बार ऐसे अवसर आए हैं जब तिब्बती शासकों ने चीन और अन्य पड़ोसी देशों के बड़े हिस्से पर अपना नियंत्रण कायम किया। इसका मतलब यह नहीं है कि हम तिब्बती ऐसे क्षेत्रों पर दावा पेश करें।"

तथ्य यह है कि जब 1911 में चीनी साम्राज्य को उखाड़ फेंका गया और चीन गणतंत्र की स्थापना हुई तो तिब्बत उसी तरह आज़ाद देश था जैसे कि मंगोलिया। इसके अगले दशक में तिब्बत ने कई चीनी सैन्य आक्रमणों को परास्त किया।

>B nko & cukoVh bfrgkl % तिब्बत पर चीन का दावा पूरी तरह झूठा है और बनावटी इतिहास पर आधारित है, इसलिए आमतौर पर अच्छी तरह से शिक्षित चीनी भी इसके बारे में कोई मदद नहीं कर पाते और तथ्यों को इधर–उधर घुमाते रहते हैं। उदाहरण के लिए 23 जुलाई, 2007 को भारतीय विद्वानों के सामने चीन के फुडान विश्वविद्यालय के एसोसिएट प्रोफेसर वांग यिवेई ने अपने अतिशय राष्ट्रवादी और अहंकारपूर्ण प्रेजेंटेशन में कहा था, ''यह तिब्बत है (दीवार पर लगे चीन के नक्शे में दिखाते हुए), वे हमेशा एक अलग तरह की व्यवस्था में रहे क्योंकि वहां पर्वतों के रूप में काफी अवरोध था और चीनी सेना इन पर्वतों के पार नहीं जा सकती थी। इस क्षेत्र में जाने की जरूरत भी नहीं थी क्योंकि चीन के पास अपने क्षेत्र में लोगों को बसाने के लिए पर्याप्त जगह थी, जो काफी समृद्ध थे। मंगोलिया पहले तांग वंश (चीन) का हिस्सा था, लेकिन तब तक तिब्बत आज़ाद था और चीन का हिस्सा नहीं था। चीन को मंगोलों ने हरा दिया था, मंगोल काफी अच्छे लड़ाके थे और 13वीं शताब्दी में मंगोलों के आक्रमण के बाद ही चीन अपने क्षेत्र का विस्तार तिब्बत तक करने में सक्षम हुआ।''

चीन यह मांग करता है कि दलाई लामा यह खुलकर कहें कि तिब्बत हमेशा चीन का हिस्सा था। सच बोलने की प्रतिज्ञा करने वाले एक भिक्षु के लिए इस प्रकार की मांग पूरी करना कैसे संभव है? वास्तव में दस्तावेजों से मिले तथ्यों से यह साफ तौर पर पता चलता है कि युआन और चिंग वंश के दौरान जब सीमित अवधि के लिए चीन का तिब्बत पर सबसे ज्यादा प्रभाव था तो भी खासकर बाहरी तिब्बत में शासन के लिए इनका कोई प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था और इस क्षेत्र पर नियंत्रण के लिए कहीं बड़े पैमाने पर सेना की तैनाती भी नहीं देखी गई। वास्तव में उन दिनों में चीन–तिब्बत संबंध मुख्यतः संरक्षक–याजक संबंधों पर आधारित था और इसमें कहीं से भी किसी तरह की संप्रभुता की बात नहीं थी। इस संदर्भ में प्रख्यात इतिहासकार डॉ. आर सी मजूमदार ने लिखा है, ''चीन का यह लक्षण है कि किसी क्षेत्र ने कभी भी यदि थोड़े दिनों के लिए भी उसकी मामूली प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली हो तो वह हमेशा के लिए उसे अपने साम्राज्य का हिस्सा मान लेता है और वह

स्वाभाविक रूप से ऐसे क्षेत्र पर हजार साल के बाद भी अपना दावा पेश कर सकता है, जब उसे लगता है कि उसके पास ऐसा करने का मौका है।''

egxh vrjk"Vh; Hky % चीन द्वारा अक्टूबर 1950 में चढ़ाई करने के बाद तिब्बत की अपील पर यदि दुनिया ने कुछ कार्रवाई की होती तो ऐसे समय में जब चीन पहले से ही कोरियाई युद्ध में उलझा हुआ था, तिब्बत और उत्तर कोरिया दोनों को बचाया जा सकता था। इसकी वजह यह थी कि उस समय चीन गृहयुद्ध और जापान के हमले से बर्बाद हो चुका था, एक नए शासक ने सत्ता संभाली थी जिसे अभी पूरे चीन पर अपना नियंत्रण और प्रशासन कायम करना था। तो ऐसा देश हजारों मील दूर स्थित दो मोर्चों पर पूरी दुनिया का मुकाबला नहीं कर सकता था। लेकिन दुनिया के प्रमुख नेताओं की हमेशा की तरह शर्मनाक रवैए से एक प्राचीन देश का लोप हो गया और तिब्बत को 27 मई, 1951 के कुख्यात "सत्रह बिंदुओं वाले समझौते" के द्वारा चुपचाप चीन में मिला लिया गया।

9 सितंबर 1951 को चीनी सैनिकों ने ल्हासा में प्रवेश किया और इसके कुछ समय बाद ही जन मुक्ति सेना ने तिब्बत के हर प्रमुख शहर पर कब्जा कर लिया।

इसके बाद से चीन, तिब्बत में थोपे गए समझौते के अनुपालन या अपने संविधान के उन प्रावधानों को लागू करने में भी विफल रहा है जो अल्पसंख्यक जातीय समूहों के बारे में हैं और तिब्बत में 'स्वायत्तता' के लिए किया गया वादा खाली शब्द ही बना हुआ है।

तिब्बत के चीन में विलय के बाद वहां 15 लाख से ज्यादा तिब्बती मारे गए हैं और हजारों मठों को नष्ट कर दिया गया है। दलाई लामा के शब्दों में कहें तो, ''तिब्बत ने अपने इतिहास के सबसे अंधकारमय दिनों को सहा है।''

tul[;k dk mifuo'koknh gfFk;kj % जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं तिब्बत में हान चीनियों की संख्या बढ़ती जा रही है और तिब्बतियों को अपने ही देश में उसी तरह से अल्पसंख्यक बनाया जा रहा है जैसे कि चीन के पूर्व शासक मंचूरियाइयों को बनाया जा चुका है। वहां दमन लगातार जारी है और लोगों के जीवन के हर पहलू पर चीनियों का कठोर नियंत्रण बढ़ता जा रहा है।

इन ऐतिहासिक और समकालीन सचाइयों के बावजूद करीब पचास साल से तिब्बत से सबसे ज्यादा नजदीकी रखने वाले बाहरी देश भारत ने यह मान लिया है और औपचारिक रूप से बार–बार दुहराया है कि तिब्बत चीन का हिस्सा है और उस पर चीन की प्रभुसत्ता है। यही स्थिति दुनिया के हर देश की है। कोई भी एक देश इस बात का समर्थन करने को तैयार नहीं है कि तिब्बत एक आज़ाद देश है। लेकिन किसी भी देश को तिब्बत पर चीनी नियंत्रण से होने वाले खतरे का जरा भी आभास नहीं है। चीन ने तिब्बत में भारी पैमाने पर पारंपरिक और सामरिक सैन्य साजोसामान भर दिया है, भले ही इसके लिए उसे एक कठिन भौगोलिक क्षेत्र का सामना करना पड़ा और भारी लागत लगानी पड़ी है। इसके लिए उसने सामरिक विशेषताओं वाले अत्याधुनिक परिवहन और यातायात संबंधी इंफ्रास्ट्रक्चर का जाल बिछाया है।

जब चीन बहुत कमजोर था, तब कोई देश तिब्बत की मदद करने को नहीं आया, तो साफ बात है कि अब जब वह दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और सैन्य ताकत बन चुका है जो अगले कुछ दशकों में अमेरिका की बराबरी करने वाला है, तो भला कौन–सा देश उससे अपने संबंध बिगाड़ने का जोखिम लेगा। लेकिन इससे यह सवाल खड़ा होता है कि चीन इतना सैन्य साजोसामान क्यों जुटा रहा है?

परम पावन दलाई लामा की बुद्धिमत्ता एवं उनका मनोहर व्यक्तित्व और पूरी दुनिया में रहने वाले तिब्बती समुदाय की अपनी जन्मभूमि और अपने पारंपरिक मूल्यों के प्रति लगातार जारी प्रतिबद्धता से ही यह सुनिश्चित हो सका है कि पूरी दुनिया तिब्बत के अंदर के जीवन की वास्तविकताओं, उनकी जीवन पद्धति और उनके धार्मिक विश्वास एवं दस्तूर को जानने में गहरी रुचि रखती है, इसके बावजूद कि वे जानते हैं कि तिब्बती जनता की असहायता बढ़ती जा रही है।

कई राष्ट्राध्यक्षों, सरकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के प्रख्यात व्यक्तियों से परम पावन के व्यक्तिगत संबंध, दुनिया भर में उनके भ्रमण, अंतरराष्ट्रीय मीडिया से उनकी लगातार बातचीत और व्याख्यानों आदि के माध्यम से आम जनता से उनके निरंतर संपर्क की वजह से तिब्बत का मसला पूरी दुनिया के लोगों के दिलोदिमाग में जिंदा है।

मैं विनम्रता से यह कहना चाहूंगा कि सभी तिब्बतियों और तिब्बत आंदोलन के सभी समर्थकों को परम पावन की भूमिका और नेतृत्व के इस बुनियादी सत्य का महत्व स्वीकार करना चााहिए।

तिब्बत पर 60 साल तक पूरी तरह शासन करने के बावजूद चीन तिब्बतियों के दिलोदिमाग में अपनी अनुकूल जगह नहीं बना पाया है। जबकि तिब्बत से पलायन को मजबूर होने के 50 साल बाद भी वहां के लोगों में दलाई लामा के प्रति निष्ठा कायम है।

इसलिए दलाई लामा जब भी तिब्बत और वहां के हालात के बारे में कोई बयान देते हैं तो चीन इस तरह का भ्रम फैलाना शुरू करता है कि वह 'अलगाववादी' गतिविधियों में शामिल हैं और जब वह दुनिया के नेताओं से मिलते हैं तो चीन इस पर कड़ी प्रतिक्रिया जताता है।

इस मामले में तथ्य यह है कि दलाई लामा ने जब 1988 में स्ट्रासबोर्ग प्रस्ताव पेश किए थे तब से ही वह लगातार यह कहते रहे हैं कि उनका लक्ष्य चीन जनवादी गणतंत्र और उसके संविधान के भीतर ही तिब्बत को वास्तविक स्वायत्तता दिलाना है।

उन्होंने मध्यम मार्ग नीति की रूपरेखा पेश की है जिसमें यह कहा गया है कि तिब्बती जनता अहिंसा और चीन के साथ वार्ता के माध्यम से अपनी आकांक्षाओं को पूरा करेगी। इस संदर्भ में तिब्बत के एक समर्थक होने के नाते मैं हाल में हुई तिब्बतियों की खास आमसभा में लिए गए निर्णयों का स्वागत करता हूं जिसमें परम पावन के नेतृत्व और मध्यम मार्ग नीति पर विश्वास और भरोसा फिर से प्रकट हुआ है।

'kkfri.k gy lHkh d fgr e % पिछले 60 साल में तिब्बत में जो कुछ हुआ उसे देखते हुए तिब्बतियों में गहरा असंतोष और नाराजगी होना अपरिहार्य है और स्वाभाविक है। तिब्बत के भीतर और बाहर रहने वाले युवा तिब्बतियों का एक बड़ा हिस्सा स्वाभाविक रूप से पिछले कई सालों में दलाई लामा की नीति का कोई परिणाम न निकलने की वजह से कुंठित हो सकता है। उन्होंने इस बारे में अपना मत हाल में धर्मशाला में हुई बैठक में खुलकर और जोरशोर से रखा भी है। लेकिन, अंतरराष्ट्रीय भू–राजनीति की कठोर वास्तविकताओं से यह बात पूरी तरह साफ है कि चीनी शासन के खिलाफ किसी भी तरह की हथियारबंद बगावत या सक्रिय प्रतिरोध सफल नहीं हो सकता। इस तरह की किसी भी गतिविधि को चीन अपने राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रभुसत्ता एवं राष्ट्रीय हितों पर सीधे और असहनीय चुनौती के रूप में ले सकता है और अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया कुछ भी हो वह जरा भी झिझिके बिना अपनी बर्बर ताकत से इसे कुचल देगा, जैसा कि हमने पिछले अनुभवों में अच्छी तरह देखा है। मैं तिब्बती आंदोलनकारियों से यह गंभीर निवेदन करना चाहता हूं कि वे इन असुविधाजनक सचाइयों पर गहराई से चिंतन–मनन करें।

तो सवाल उठता है कि आगे का रास्ता क्या हो सकता है? धैर्य ही इसका सार है। दुनिया ने कई बेरहम शासकों और ताकतवर साम्राज्यों को देखा है, लेकिन बिना किसी अपवाद के सबको मुरझाना पड़ा है। भारत को कई विदेशी शासकों के हाथों शताब्दियों तक भारी शोषण सहना पड़ा है। लेकिन आखिरकार दुनिया के सबसे विशाल साम्राज्य को भी महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले करीब एक शताब्दी लंबे संघर्ष से हारना पड़ा, जो महावीर, बुद्ध और ईसा मसीह के बाद अहिंसा के सबसे बड़े प्रचारक साबित हुए।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में कई उतार–चढ़ाव आए और गांधी जी की नीति की बहुत से भारतीयों ने खिल्ली भी उड़ाई। लेकिन कोई भी उनसे बेहतर और ज्यादा प्रभावी रास्ता नहीं दे पाया। गांधी जी का ही अनुसरण करते हुए दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला और अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग ने नागरिक अधिकारों की लड़ाई लड़ी। आखिरकार रंगभेद समाप्त हुआ और अब अमेरिका ने एक अश्वेत व्यक्ति को अपना राष्ट्रपति चुना है।

D;k phu cnyxk \% सोवियत संघ दुनिया के पटल से गायब हो गया, किसी बाह्य या आंतरिक सैन्य कार्रवाई की वजह से नहीं बल्कि इस वजह से कि उसकी राजनीतिक व्यवस्था सड़ चुकी थी और आखिरकार वह समकालीन दुनिया की अनिवार्यताओं का सामना नहीं कर सका। नए शासन की सहूलियतों और पूरी तरह से आज़ादी भोगने वाले रूस के लोग फिर से बड़े उत्साह से चर्च जाने लगे हैं। चीनी साम्राज्य को भी हटाकर एक गणतंत्र कायम किया गया है। चीन में साम्राज्यवादी व्यवस्था के दौरान कई वंशों ने एक–दूसरे को सत्ताच्युत किया। वर्तमान साम्यवादी शासन अच्छी तरह से एक ज्यादा लोकप्रिय और सहनशील राजनीतिक व्यवस्था कायम कर सकता है। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि चीन बदलेगा। समय बीतने पर चीन के लोग बाहरी दुनिया से ज्यादा संपर्क में आएंगे और वहां बदलाव के लिए बने दबाव को रोका नहीं जा सकेगा। तिब्बतियों को, और वास्तव में चीन की आम जनता को भी यह उम्मीद है कि उन्हें एकाधिकारवादी शासन से मुक्ति मिलेगी। आशा की ज्योति जलती रहनी चाहिए।

अंत में मैं परमपावन जी के इस विचार और नुस्खे का पूरी तरह समर्थन करता हूं कि शांति की प्रतिबद्धता ही आगे बढ़ने का एकमात्र रास्ता है। मुझे आशा है और मैं यह प्रार्थना भी करता हूं कि, जैसा कि दुनिया के लाखों लोग करते हैं, कि आखिरकार तिब्बती आंदोलन को सफलता मिलेगी। अंत में मैं आप सबके अत्यंत महत्वपूर्ण समर्थन की प्रशंसा करना चाहूंगा जो आगे भी पूरी ऊर्जा के साथ जारी रहना चाहिए ताकि तिब्बतियों को न्याय दिलाने के लिए एक ताकतवर और विश्वव्यापी आंदोलन खड़ा करने में मदद मिले।

——

अज्ञान, उपेक्षा व आशंका का त्रिकोण कब टूटेगा?

—डा. आनन्द कुमार

यह पहचानना होगा कि तिब्बत मुक्ति–साधना आज की दुनिया में अहिंसक रास्ते की प्रासंगिकता की ताजा कसौटी है। तिब्बत के प्रश्न पर दुनिया में पहले अज्ञान था। फिर उपेक्षा फैली। आशंका का माहौल है। क्या सत्य व अहिंसा का अनुसरण कर रहे तिब्बती हमें तिब्बत के बारे में अज्ञान, उपेक्षा व आशंका से बाहर निकाल सकेंगे?

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अपनी स्वाधीनता खोने वाला एकमात्र एशियाई राष्ट्र तिब्बत है। वह मार्क्सवादी राष्ट्रवाद में निहित विस्तारवाद का शिकार हुआ और उसकी दुर्दशा में तत्कालीन तिब्बती नेतृत्व की अदूरदर्शिता तभा भारतीय सरकार की चुप्पी का भी योगदान था। तिब्बत को कम्युनिस्ट चीन ने दो चरणों में हड़पा। 1949 में स्वायत्तता की बहुआयामी परिभाषा स्वीकारते हुए चीन ने तिब्बत के साथ एक संधि की। फिर इसी स्वायत्तता को नष्ट करने के लिए भारत से 1954 में 'पंचशील' जैसे सनातन महत्व के विशेषण के साथ एक आठ वर्षीय संधि में हिमालयी एशिया के सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक व आर्थिक इतिहास को अनदेखा किया गया। चीन की इस कूटनीतिक व्यूहरचना का अंतिम लक्ष्य एशिया महाद्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित करना था। लेकिन इसका आभास विश्व–शक्तियों या एशिया की प्रमुख सरकारों को नहीं हो पाया। (इन दोनों ही षड़यंत्रों को 'प्रगति और शांति' की दिशा में ऐतिहासिक कदम घोषित करते हुए भारत के तत्कालीन सरकारी नेतृत्व व 'प्रगतिशील' विशेषज्ञों ने तिब्बत की पुकार की आत्मघाती उपेक्षा की। अब सफाई दी जाती है कि 1949 में भारत अपनी ही सुरक्षा व स्थिरता की समस्याओं से जूझ रहा था।) कश्मीर पर हमला, भारत विभाजन से उत्पन्न हिंसा व अराजकता, देशी रियासतों की चालबाजियां आदि के कारण नव–स्वाधीन भारत का ध्यान तिब्बत–चीन संबंधों में हो रहे बदलाव से हटा हुआ था। इसी प्रकार 1954–59 में कोरिया का युद्ध, भारत को शीत युद्ध में घसीटने की पश्चिमी महाशक्तियों की कोशिशों, चीन से मैत्री के जरिए एशिया को तीसरी दुनिया व तीसरी शक्तियों का शक्ति केंद्र बनाने का सपना तथा कम्युनिस्ट क्रांति में निहित मानवतावादी संभावनाओं में आस्था जैसे कारणों ने जवाहर लाल नेहरू की सरकार को पड़ोसी धर्म की अनदेखी करने का आधार दिया।

पड़ोसी धर्म न निभाने का क्या नतीजा निकला? 25 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले तिब्बत राष्ट्र की स्वाधीनता चीनी सैनिक शासन ने छीन ली और भारत, भूटान, नेपाल, बर्मा, मंगोलिया व रूस के एशियाई क्षेत्र तक फौजी अड्डे फैलाने में सफल हो गया। इसके परिणाम स्वरूप भारत से 1962 में सैनिक टक्कर हुई और भारत बुरी तरह पराजित हुआ। अपनी 1 लाख वर्ग किलोमीटर जमीन चीन के हाथ खोने के साथ ही हम अपना अंतर्राष्ट्रीय सम्मान व राष्ट्रीय आत्मविश्वास भी खो बैठे। तिब्बत पर चीनी कब्जा व भारत पर चीनी हमले के पूर्व भारत–तिब्बत सीमा क्षेत्र में कोई सुरक्षा समस्या नहीं थी। लद्दाख से लेकर अरूणाचल प्रदेश तक फैली भारत–तिब्बत सीमा की कुल लंबाई 5000 किलोमीटर

है। लेकिन 1962 से पूर्व हमारा सुरक्षा व्यय मात्र 38 करोड़ रुपए वार्षिक था। 1962 के चीनी हमले के बाद व्यय तीन गुना बढ़कर 81 करोड़ रुपए हुआ। अब हमारा देश पूरे बजट का 15 प्रतिशत यानी 41, 200 करोड़ रुपए (1998) चीन के सैनिक दबाव के प्रतिरोध में खर्च करने को विवश है। चीन ने तिब्बत क्षेत्र में 200 सैनिक अड्डों में 5 लाख सैनिक जमा कर रखे हैं। चीनी सेना प्रक्षेपास्त्रों, परमाणु अस्त्रों व बमवर्षकों से लैस है। चीन ने भारत के खिलाफ मध्य तिब्बत में 5 प्रक्षेपास्त्र केंद्र, 14 वायुसेना केंद्र, 19 राडार केंद्र व 81 अंतर्महाद्वीपीय मारक क्षमता वाले प्रक्षेपास्त्र तैनात कर रखे हैं। इसके अतिरिक्त भारत और पाकिस्तान के बीच चीन स्थायी अवरोध भी बन गया है। पाकिस्तानी परमाणु अस्त्रों के पीछे चीनी सहयोग का सच जगजाहिर हो चुका है। क्या तिब्बत की चीनी सैनिकों से मुक्ति हुए बिना भारत सुरक्षित महसूस कर सकता है? जब भारत ही असुरक्षित हो तो एशिया में निर्भयता व शांति कहां संभव है और यह महाद्वीप चीनी आतंक से कैसे बच सकता है?

इस तस्वीर का दूसरा पहलू हिमालय की सांस्कृतिक अस्थिरता तथा वहां के आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक स्वरूप से जुड़ा हुआ है। तिब्बत की राजधानी ल्हासा बौद्ध धर्म की महायान परंपरा का केंद्र है। इसकी महता वेटिकन, यरूशलम, मक्का–मदीना व काशी से कम नहीं है। आध्यात्मिक साधना, शिक्षा से लेकर व्यापार व राजनीति की धुरी के रूप में तिब्बत की भूमिका समूचे हिमालय के लिए स्रोत व संदर्भ की रही है। हिमालय का पूरा भूगोल पूर्व से लेकर पश्चिम तक व उत्तर से लेकर दक्षिण तक दलाई लामा–पंचेन लामा के नेतृत्व व शिक्षा से ओतप्रोत बौद्ध सभ्यता से सुगंधित है। भाषा–वस्त्र–भोजन से लेकर आर्थिक गतिविधियां, सामाजिक व्यवस्था व सांस्कृतिक विशेषताएं तिब्बत की केंद्रीयता को प्रतिबिंबित करती हैं। चीन ने तिबबत को कब्जे में लेकर बौद्ध सभ्यता पर घातक प्रहार किया है। 1959 से अब तक के बीच चीन ने 60 लाख जनसंख्या वाले तिब्बतियों में से 12 लाख निर्दोष स्त्री–पुरूषों को अकाल मृत्यु का शिकार बनाया है। 6000 से अधिक मंदिरों, मठों व विद्या केंद्रों का ध्वंस किया गया। तिब्बती संस्कृति को समूल नष्ट करने के लिए लगभग 75 लाख चीनियों को तिब्बत में पहुंचा दिया गया है। तिब्बती समाज को धर्म व साधना से विमुख करने के लिए भिक्षुओं व भिाणियों को जेलों में बंद करना इसी सैनिक राज की दूसरी क्रूर नीति है। इसी के समानान्तर तिब्बती स्त्रियों को चीनियों ने विवाह के लिए विवश किया जाता है। अन्यथा उन्हें गर्भपात, वंध्यीकरण व बलात्कार का शिकार बनाया जाता है। जब तिब्बत में ही मठ–मंदिर, नष्ट हो रहे हैं तो शेष हिमालय में उनकी परंपरा को कैसे बल मिलेगा?

दलाई लामा व उनके डेढ़ लाख से अधिक अनुयायियों ने चीनी सैनिक कब्जे का विरोध करते हुए आत्मरक्षा के लिए तिब्बत से बाहर शरण ली है। इनमें से अधिकांश (लगभग एक लाख बीस हजार) भारत व नेपाल में शरणागत हैं। कुछ हजार प्रवासी यूरोप व अमेरिका में रहकर आत्मरक्षा व विश्व जनमत–जागरण में जुटे हुए हैं। लेकिन मंगोलिया से लेकर म्यांमार और आम्दो से लेकर लद्दाख–अरूणाचल तक आध्यात्मिकता आधारित समाज व्यवस्था का प्रवाह कमजोर हो रहा है। अहिंसा पर हिंसा का क्रूर प्रहार जारी है। एक समूची सभ्यता व जीवन प्रणाली चीनी सैनिकों के आंतक से दम तोड़ रही है। चीनी शासन ने वनों की अंधाधुंध कटाई, खनिजों का भूगर्भ से बेलगाम उत्खनन, तथा परमाणु विस्फोटों व अन्य गतिविधियों से तिब्बत के पर्यावरण को नष्ट व प्रदूषित किया है। तिब्बत में वनों की कटाई से भारतीय मानसून की अवधि तथा जलवृष्टि की मात्रा पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इससे तिब्बत से निकलने वाली मुख्य भारतीय नदियों–ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलुज तथा कोसी में बाढ़ का प्रकोप बढ़ रहा है।

तिब्बत पर चीनी कब्जे के पहले समूचा हिमालय क्षेत्र शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की सदियों पुरानी परंपरा का निर्वाह कर रहा था। लेकिन चीनी सैनिक राज के शुरू होते ही तनाव, हिंसा व अलगाववाद

को हवा मिल रही है। कश्मीर से लेकर मणिपुर, नगालैंड तथा मिजोरम तक अवैध व्यापार तथा आतंकवाद का सिलसिला प्रबल हुआ है। म्यांमार में जनतंत्र की वापसी का आन सान सू ची द्वारा सफल अभियान चलाया गया। लेकिन चीनी शासकों ने तत्काल म्यांमार (बर्मा) के फौजी तानाशाहों व जंगल माफिया के गठजोड़ की मदद करके एक स्वस्थ राजनीतिक परिवर्तन को अवरुद्ध किया।

तिब्बत की पराधीनता का असर भारत और शेष विश्व के हिंदू व बौद्ध धार्मावलंबियों के धार्मिक अधिकारों व कर्तव्यों पर भी पड़ा है। भारतीयों का श्रेष्ठतम तीर्थ कैलाश–मानसरोवर है। लेकिन इसकी यात्रा चीनी सैनिकों के नियंत्रण में चीनी राज की शर्तों को स्वीकारने वाले तथा यात्रा शुल्क के रूप में एक मोटी रकम देने के लिए प्रस्तुत तीर्थयात्रियों के लिए ही संभव है।

इसी प्रकार बौद्धों की परंपराओं के दो शीर्षस्थ प्रतीकों–दलाई लामा तथा पंचेन लामा को भी चीनी आघात का शिकार बनाया गया है।

दलाई लामा 1959 से निर्वासन की जिंदगी जीने को विवश किए गए हैं। जबकि पंचेन लामा की चीनी हिरासत में रहस्यमय दशा में मृत्यु हुई। उनके उत्तराधिकारी शिशु को चीनियों की जेल में रखा गया है। नए पंचेन लामा के माता–पिता तथा चयन समिति के प्रधान रिंपोछे भी नहीं बख्शे गए हैं।

कड़ी निगरानी व कठोर सजा के बावजूद आस्थावान तिब्बती संतों व नागरिकों द्वारा चीनी राज के लगातार प्रतिरोध का सिलसिला भी बना हुआ है। चूंकि तिब्बती संस्कृति की नींव बौद्ध दर्शन पर आधारित है, अतः विशिष्ट प्रकार के अहिंसक व आध्यात्मिक तरीकों से तिब्बती जनसाधारण अपना दुख व्यक्त करते हैं। इन तरीकों का जनता की जीवन शैली से संबंध है और चीनी सैनिक शासन अपनी क्रूरता के बावजूद इस पर रोक नहीं लगा पाता है। उदाहारणार्थ, दलाई लामा के चित्र की पूजा तथा पंचेन लामा के उत्तराधिकारी बालक की दीर्घायु की प्रार्थनाएं चीनी–तिब्बत द्वंद्व का एक मुख्य प्रतीक बन गया है। इसी प्रकार नियमित रूप से रेडियो के जरिए विश्व के विभिन्न भागों में तिब्बत मुक्ति–साध ाना के समर्थन में चल रही गतिविधियों का सुनना भी एक व्यापक तरीका बना हुआ है। दलाई लामा के दर्शन कालचक्र पूजा के प्रवचनों को सुनने के लिए यात्राएं भी इसी विशिष्ट प्रतिरोध का एक प्रकार है।

frCcr lc/kh vKku dk ifj.kke

तिब्बत की पराधीनता का सच एक लंबे अरसे तक हिमालय से परे के संसार को नहीं मालूम था। वैसे भी 'संसार' का कुल अर्थ औद्योगिक तथा राजनीतिक क्रांतियों से संपन्न हुए अथवा पराधीन हुए देशों से बनी दुनिया तक ही सीमित रहा है। इस अर्थ में यूरोप केंद्रित समझ वाले लोगों व संस्थाओं के लिए तिब्बत जैसी स्थिति वाले राष्ट्रों को जानना–पहचानना असंभव ही था क्योंकि तिब्बत आधुनिकीकरण के उजले या अंधेरे पक्ष में से किसी में भी शामिल नहीं था। जो यूरोप से अछूता रहा हो उसे अपना सरोकार कैसे माना जाए? जो 'आधुनिक' नहीं हुआ, वह समाज या राष्ट्र आधुनिक राजनीति व आर्थिकी के ताने बाने को चलाने वाली व्यवस्था से हमदर्दी और मदद कैसे पा सकता है?इस प्रकार अपनी गुलामी के पहले दौर में तिब्बत 'आधुनिक' राष्ट्रों व उनके विविध मंचों के अज्ञान का शिकार बना। यह 1949 से 1959 तक चला। फिर उपेक्षा का दौर आया। 1960, 1961 व 1965 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने तिब्बत के दुख पर प्रतिक्रिया जरूर की। लेकिन ये प्रतिक्रियाएं चीन की घेरेबंदी व कम्युनिस्ट विरोधी कूटनीति के एक और बिंदु के रूप में सामने आईं। मानवीयता व करूणा के आधार पर तिब्बत के साथ हमदर्दी का भाव हिमालय क्षेत्र के सभी राष्ट्रों की जनता के बीच 1959 से बना हुआ है। लेकिन भारत समेत सभी एशियाई देशों की सरकारों ने अपने देश की जनभावनाओं की उपेक्षा करके चीनी

अन्याय की अनदेखी का रास्ता अपनाया। सत्तर के दशक में तो ऐसा लगने लगा था कि तिब्बत राष्ट्र को चीन सचमुच पचा जाएगा।

किंतु दलाई लामा की सात्विक शिक्षा, तिब्बत मुक्ति–साधना की सौम्य दृढ़ता और चीनी राष्ट्र निर्माण के अंतर्विरोधों ने क्रमशः विश्व जनमत को जागृत करना शुरू किया। माओ राज का खात्मा, चीनी राजनीति में देंग त्साओ–पिंग का उदय तथा विश्व के साथ जुड़ने की चीनी चेष्टाओं ने भी तिब्बत प्रश्न को नई प्रासंगिकता दी। 1989 में दलाई लामा को नोबल शांति पुरस्कार अर्पित करके पश्चिमी दुनिया ने अपने अज्ञान व उपेक्षा दोनों से परे जाने का शुभारंभ किया। यह दुनियाभर के आध्यात्मवादियों व अहिंसावादियों के लिए उत्साहवर्द्धक मोड़ था। यूरोपीय संसद, अमेरिकी कांग्रेस व सिनेट, आस्ट्रेलिया की जन–प्रतिनिधि सभा व कई लैटिन अमेरिकी देशों ने 1989 से 1998 के बीच खुलकर तिब्बत के दुख को स्वर दिया है, तिब्बत मुक्ति–साधना का समर्थन किया है। ईसाई धर्मगुरुओं, हिंदू आचार्यों, यहूदी धर्म प्रवक्ताओं तथा अनेकों धर्म–संप्रदायों के समर्थन वक्तव्यों से भी तिब्बत की रक्षा के अभियान को बल मिला है। इधर चीनी जनतांत्रिक आंदोलन के नेताओं का तिब्बती स्वतंत्रता सेनानियों से लगातार संवाद तथा ताईवान में दलाई लामा जी का अभूतपूर्व अभिनंदन सर्वाधिक उल्लेखनीय घटनाएं हैं।

चीनी शासन ने पिछले दशक में तिब्बत के समर्थन में उभरे विश्व जनमत का सामना करने के लिए बड़े प्रभावशाली तरीके से असत्य प्रचार का सहारा लिया। दलाई लामा के बारे में दुस्साहसी तरीकों से झूठ फैलाने से लेकर तिब्बती समाज में फूट फैलाने व पंचेन लामा परंपरा को नष्ट करने तक के प्रयास हुए हैं। चीनी शासकों के प्रभाव में विश्व का एक बड़ा हिस्सा जरूर है। फिर तिब्बती समाज चीनी राजसत्ता की प्रचार क्षमता का किसी भी स्तर पर मुकाबला नहीं कर सकते। चीनी शासकों व दलाई लामा के बीच के 'विवाद' में भारत जैसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पड़ोसी की चुप्पी से भी एक भ्रमपूर्ण स्थिति बनाने में चीनी शासक सफल रहे हैं। जब तक तिब्बत की दशा के बारे में फैले हुए अज्ञान, अर्द्धज्ञान व उपेक्षा भाव–तीनों का प्रभावशाली निदान नहीं किया जाएगा तब तक चीनी सैनिक–राज से मुक्ति की तिब्बत की पुकार पर पूरी दुनिया का ध्यान केंद्रित करना कठिन बना रहेगा।

nk e[; ifrfØ;k, % phu o vefjdk

आज दुनिया में तिब्बत को लेकर दलाई लामा व उनके अनुयायियों की ओर से चलाए जा रहे अभियानों पर दो सशक्त देशों की ओर से खुली प्रतिक्रिया हो रही है। चीनी शासक दलाई लामा की हर यात्रा व वक्तव्य पर निगाह रखते हैं, प्रतिवाद करते हैं, गलत व्याख्या करते हैं। भारत की सरकार विश्व मंचों पर या तो चीन के पक्ष में कतारबद्ध होती है या चुप रहती है। जबकि कैलाश–मानसरोवर पर चीनी नियंत्रण से लेकर अरूणाचल पर चीनी दावे जैसी कई समस्याओं के कारण चीन–तिब्बत विवाद में भारत की स्वाभाविक भूमिका होनी चाहिए। यह भारत के स्वाभिमान, पड़ोसी धर्म, आत्मरक्षा व युगधर्म चारों दृष्टियों से आवश्यक है। लेकिन 1962 की हार से उत्पन्न भयग्रंथि व पड़ोसियों के प्रति उदासीनता का दोष भारतीय विदेश मंत्रालय को चीन का पिछलगुआ बनाए हुए हैं। दूसरी तरफ अमेरिका सरकार की चीन में सक्रिय दिलचस्पी के कई कारण हैं। लेकिन अमेरिका तिब्बत प्रश्न को अभी तक दलाई लामा की निगाह से देखने से बचता आया है। एक लंबी अवधि तक अमेरिकी जनता तिब्बत के प्रश्न से अनजान ती। इस प्रकार अमेरिकी शासन की समूची चेष्टाएं उसकी गुप्तचर संस्था के माध्यम से आकार व अर्थ ग्रहण करती थीं। सी.आई.ए. ने तिब्बत की गुलामी के बाद छापामार युद्ध से लेकर स्वतंत्र तिब्बत की संविधान रचना तक कई प्रयोगों में तिब्बती समाज की सहायता की है। लेकिन उसकी दिलचस्पी चीन–अमेरिका मैत्री का आरंभ होते ही घटने लगी। वैसे आज तक अनेकों व्यक्ति, विशेषकर कम्युनिस्ट धारा से संबंधित विश्लेषक व संगठन, तिब्बत आंदोलन को सी.आई.ए. का

ही बखेड़ा मानते हैं। निक्सन प्रशासन के बाद अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने तिब्बत में सीधी दिलचस्पी कम की। लेकिन कार्टर के राष्ट्रपति काल में मानवाधिकारों के प्रश्न को नई गंभीरता से उठाया जाने लगा। बिल क्लिंटन ने तो अपने चुनाव अभियान में तिब्बत प्रश्न को खुला महत्व दिया। इसके पीछे विगत दशक में अमेरिकी जनता में तिब्बत के लिए फैलती सहानुभूति का बड़ा योगदान है। यह सहानुभूति राजनीति से लेकर कला, फिल्म, शिक्षा, संस्कृति तक फैली है। डैनियल मोयनिहान (सेनेटर), रिचर्ड गेअर (फिल्म कलाकार), प्रो. राकफेलर (प्राध्यापक), आदि इस बहुमुखी आंदोलन के प्रेरक हैं। इन सबने तिब्बत के प्रश्न को बुद्ध व दलाई लामा की शिक्षाओं के संदर्भ में पहचाना है। नासमझी व अवसरवादिता—दोनों अतियों से अलग सात्विक संवेदनशीलता पर आधारित प्रतिबद्धता का यह परिणाम है। फिर भी, अमेरिकी समाज व सरकार की दिलचस्पी का कोई बड़ा असर चीन पर नहीं पड़ा है। इसीलिए विगत कई वर्षों से हर बार अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोजन की सुनवाइयों में चीनी शासकों का दलाई लामा के प्रस्तावों को रद्द करते जाना जारी है।

rhljh lHkkouk dk fodkl

इधर धीरे—धीरे एक तीसरी संभावना का भी उभार हो रहा है। चीन व अमेरिकी शासकों से अलग छोटे राष्ट्रों की जनता व शासकों का भी स्वर तिब्बत के प्रश्न पर उभर चुका है। वस्तुतः विश्व में बहुत कुछ बड़े राष्ट्रों के इर्द—गिर्द ढेर सारे छोटे राष्ट्र फैले हुए हैं। अधिकतर बड़े राष्ट्र अपने इर्द—गिर्द के छोटे राष्ट्रों को जाने—अनजाने प्रताड़ित करते रहे हैं। बड़े राष्ट्रों के आगे छोटे राष्ट्रो की सुनवाई का कहीं प्रभावशाली मंच भी नहीं है। वैसे विश्व में छोटे राष्ट्रों का विराट बहुमत है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इस सच को तिब्बत के प्रसंग में दुनिया भर के छोटे राष्ट्र पहचानने लगे हैं। प्रथम विश्व युद्ध व द्वितीय विश्व युद्ध में पीड़ा ग्रस्त हुए अनेक यूरोपीय राष्ट्र भी तिब्बत की न्याय की पुकार का पूरी गंभीरता से प्रत्युतर देने लगे हैं। लेकिन इसमें एशिया की भूमिका नगण्य है। दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला तक किसी भी एशियाई देश के नेता से ज्यादा संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं। बेल्जियम, चेक रिपब्लिक, लिथुआनिया, डेनमार्क, नार्वे, आस्ट्रिया व कोस्टारिका जैसे देश इस प्रक्रिया में प्रमुख हैं। इस संभावना का अभी कोई असर नहीं है। क्योंकि इसको किसी शक्तिशाली देश की मदद नहीं है। भारत व यूरोपीय यूनियन मिलकर नैतिक नेतृत्व कर सकते हैं। यूरोपीय यूनियन में जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड व इटली में पर्याप्त सहमति के आसार हैं। लेकिन भारत क्या कर रहा है? फिलहाल भारत की तरफ से पिछले कई वर्षों से तिब्बत के प्रश्न पर मानवाधिकार आयोग में चीन के ही पक्ष में मतदान किया गया है।

चीन व अमेरिका से परे विकसित हो रही मानवतावादी चिंता ने समूची परिस्थिति में गुणात्मक परिवर्तन शुरु कर दिया है। बुद्ध की करूणा व दलाई लामा की सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की शिक्षाओं से आकर्षित व्यक्तियों के सहयोग से बन रही लोकशक्ति को किसी देश की राजशक्ति का संरक्षण प्राप्त नहीं है। लेकिन मामूली स्त्री—पुरुषों की छोटी—छोटी चेष्टाओं की निरंतरता से तिब्बत समर्थन अभियान इस दौर का सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय प्रयास बन चुका है। इसे तिब्बत की स्थानीय एवं प्रवासित जनता से लेकर चीन की जनतांत्रिक धारा, समूचे हिमालय की आस्थावान जनता, एशिया अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के स्वतंत्रतावादी व्यक्तियों व संगठनों तथा पश्चिमी दुनिया के बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों, शांति आंदोलन तथा युवा पीढ़ी का प्रबल व मुखर समर्थन है। विश्व के सभी छोटे देशों की संसद में तिब्बत समर्थक सांसदों की अच्छी संख्या है। भारत, अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस व इटली के तो मंत्रिमंडलों में भी तिब्बत मित्रों की उल्लेखनीय हैसियत है।

तब भी कुछ कमजोरियां हैं। इन कमजोरियों को कुछ लोग तिब्बती नेतृत्व की अहिंसा व संवाद के प्रति अटूट आस्था से जोड़ते हैं। कई विश्लेषणकर्ता इसमें दलाई लामा के व्यक्तित्व की केंद्रीयता

को कारण मानते हैं। प्रायः सभी बहसों में चीन और तिब्बत की भौतिक–आर्थिक–सामरिक–राजनीतिक अतुलनीयता को लेकर आशंका की जाती है। अब अज्ञान व उपेक्षा के व्यूह टूट चुके हैं। इस समय आशंकाओं का जोर है।

तिब्बत के बारे में नौ भ्रम

चीन तिब्बत का प्रश्न उठाने पर क्या करेगा? यह भी आशंका है कि दलाई लामा में आस्था रखने वाले तिब्बती वास्तविक स्वायत्तता व पूर्ण स्वतंत्रता के बीच अंतर को क्या सम्मान देंगे? यह घबराहट तो है ही कि तिब्बत का प्रश्न उठाने वाले पर चीन पूरी तरह से हमला कर देगा। इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। लेकिन किसी भी मूल्यांकन में यह ध्यान रखना होगा कि चीन की चेष्टाओं, विश्व राजनीति की वास्तविकताओं तथा तिब्बत मुक्ति–साधना के इतिहास व वर्तमान के कारण चौतरफा भ्रमों का बोलबाला है। इनमें से नौ भ्रमों का या मिथ्या प्रचारों का स्पष्टीकरण जरूरी है।

सर्वप्रथम, चीन की ओर से बारंबार यह निराधार प्रचार किया जाता है कि दलाई लामा व उनके अनुयायी चीन के टुकड़े–टुकड़े करने के अंतर्राष्ट्रीय षड़यंत्र के अगुवा हैं। यह सच है कि स्वतंत्र तिब्बत चीन का अंग नहीं था और न रहेगा। लेकिन जहां तक दलाई लामा का प्रश्न है उनकी ओर से प्रस्तावित सभी समाधानों में तिब्बत और चीन के सहअस्तित्व पर ही जोर है 'स्वायत्त स्वराज' (आटोनोमस तिब्बत विद जुनुइन सेल्फ रूल) का ही आग्रह है। पिछले नौ वर्ष में दलाई लामा के वार्षिक व विशिष्ट संदेशों में यह तथ्य बार–बार दुहराया गया है।

दूसरे, यह भी पूछा जाता है कि क्या तिब्बत का प्रश्न चीन विरोधी अभियान है? तिब्बतियों व तिब्बत मित्रों की दृष्टि में यह समूची चेष्टा 'तिब्बत समर्थक' आंदोलन है। यह स्वाभाविक है कि इस संदर्भ में चीनी शासन की नीतियों की खुली आलोचना की जाती है। लेकिन चीनी जनता व चीनी संस्कृति के प्रति कोई बैर–भाव नहीं फैलाया जाता। उलटे, तिब्बत के सर्वोच्च नेता दलाई लामा का मानना है कि तिब्बत के साथ न्याय करने में चीन का भी हित है।

तीसरा भ्रम तिब्बत की मौजूदा स्थिति के बारे में है। क्या सचमुच तिब्बती संस्कृति का नाश हो रहा है? क्या यह दुनिया भर में सक्रिय कम्युनिस्ट विरोधी तथा अमेरिकन गुप्तचर संस्था सी.आई.ए. की प्रचार मशीन द्वारा फैलाया झूठ है? तिब्बत पर चीन के कब्जे के चार दशकों में अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (इंटरनेशन कमिशन ऑफ जूरिस्ट्स) जेनेवा, ने तिब्बत की दशा पर शुरू से अब तक लगातार निगाह रखी है। इसकी ताजा रपट दिसंबर 1997 में प्रकाशित की गई। इसमें तिब्बत में चल रहे दमनचक्र व संस्कृति संहार का विस्तृत विवरण है। एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसी विश्वभर में मान्यता प्राप्त एक अन्य प्रामाणिक संस्था का भी यही निष्कर्ष है। तिब्बत को नजदीक से जानने वाले समाज वैज्ञानिकों, धर्माचार्यों, राजनयिकों व पत्रकारों का मूल्यांकन भी चौंकाने वाला है। वास्तविकता यह भी है कि सीआइए जैसी राष्ट्रीय राजनीतिक हितों से जुड़ी पश्चिमी देशों की एजेंसियों का तिब्बत के प्रश्न पर सदैव त्रुटिपूर्ण व उदासीन रूख रहा है। गुप्तचर संस्थाएं सिवाय अपने राज्य के किसी दूसरे का कब से हित करने लगी हैं?

तीसरे प्रश्न के साथ ही चौथा भ्रम जुड़ा हुआ है – क्या तिब्बत के प्रश्न पर सिर्फ निर्वासित तिब्बतियों में आक्रोश है या स्थानीय तिब्बती जनता भी पीड़ा व अन्याय से क्षुब्ध है। दुनिया को भरमाने के लिए तिब्बत की स्वायत्त विकास यात्रा का मासिक व वार्षिक विवरण चीनी दूतावासों के जरिए विभिन्न देशों की भाषाओं में छापा व बांटा जाता है। तिब्बत की सरकारी यात्राएं भी कराई जाती हैं। लेकिन जनता व चीनी सैनिक शासन का रिश्ता उजागर करने वाले दो तथ्य विचारणीय हैं – एक,

अगर तिब्बत में सब कुछ मंगलमय है तो पिछले दो दशक से बार–बार मार्शल लॉ (फौजी कानून) की क्यों जरूरत पड़ती रही है? दूसरे, अगर तिब्बती संस्कृति की स्वायत्तता की चीन ने रक्षा की है तो दलाई लामा के चित्र रखने व पंचेन लामा के उतराधिकारी के चयन का दलाई लामा द्वारा अनुमोदन करने पर ऐतराज क्यो है? वास्तविक यही है कि व्यापक असंतोष व दमन का द्वंद्व चल रहा है। पिछले एक दशक में डेढ़ सौ से अधिक प्रदर्शनों व प्रतिरोधों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। दलाई लामा में जनता की अटूट और गहरी आस्था तथा तिब्बत के चीनीकरण से उत्पन्न असंतोष का डर चीनी शासकों को बराबर रहता है। यह बुनियादी बात है कि तिब्बत का प्रश्न 1959–60 में तिब्बत छोड़कर भारत में बसे दलाई लामा व उनके निकटतम सहयोगियों का ही सरोकार नहीं है। तिब्बत की दशा को लेकर तिब्बत देश में भी लगातार गहराता असंतोष ही इसका वास्तविक आधार है।

कई लोगों का मानना है कि तिब्बत के प्रश्न पर सक्रियता का रास्ता अपनाने पर भारत को कश्मीर के प्रश्न पर चीन की आक्रामकता का शिकार होना पड़ सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि व राजनीति के कई विशेषज्ञों ने कश्मीर व तिब्बत की दशा के बुनियादी फर्कों को बार–बार साफ किया है। क्या कश्मीर 1947 या उसके लगभग स्वतंत्र राष्ट्र था जिसकी अपने पड़ोसी देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय संधियों का इतिहास है? क्या कश्मीर में धारा 370 के जरिए स्वायत्ता का पूरा संरक्षण नहीं हुआ है? क्या कश्मीर में जनमत संग्रह की संभावना का पाकिस्तान प्रेरित हमले के बाद स्वतः अंत नहीं हो गया? दूसरे स्तर पर असलियत यही है कि चीन कश्मीर में पूरी तरह से सक्रिय है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में कराकोरम दर्रे के आसपास 800 किलोमीटर क्षेत्र में चीन ने अपने इस्तेमाल लायक सड़क बनाई है। यह सड़क कश्मीर को तिब्बत के जरिए चीन से जोड़ती है। इसी प्रकार हर मौके पर चीन भारत को नसीहत देता है कि कश्मीर एक दक्षिण एशियाई समस्या है और भरात व पाकिस्तान को परस्पर बातचीत करनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी चीन की कश्मीर संबंधी तटस्थता का वास्तविक अर्थ पाकिस्तानी दावों की मौन पुष्टि जैसा ही माना जाता है। फिर चीन भारत की नैतिक सक्रियता की प्रतिक्रियता में नया क्या करेगा?

छठा भ्रम यह फैला हुआ है कि भारतीय राजनीति में तिब्बत का प्रश्न कुछ महत्वहीन राजनीतिज्ञों ने व दलों ने भारत–चीन मैत्री में अड़ंगेबाजी के लिए उठाया। अब यह प्रश्न विदेशी इशारे पर उठता है। सरदार पटेल, डा. राजेंद्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, डा. बाबा साहेब अंबेडकर व श्री मोहम्मद करीम छागला श्री नेहरू के समकक्ष महत्वपूर्ण राष्ट्र नायक थे। सभी तिब्बत के प्रश्न पर चीन की चेष्टाओं से असहमत व आशंकित थे। डा. राममनोहर लोहिया, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री दीनदयाल उपाध्याय व श्री मीनू मसानी जरूर गैर कांग्रेसी राजनीति से जुड़े थे लेकिन इनमें से किसी की भी देशभक्ति पर संदेह करना नादानी होगी। यह भी उल्लेखनीय है कि अब तक उपलब्ध सभी दस्तावेजों व संस्मरणों में तिब्बत की आजादी व भारत की सुरक्षा को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में देखा गया है। भारत की ओर से विदेश सचिव या चीन में राजदूत रह चुके सभी विदेश नीति विशेषज्ञों ने तिब्बत के प्रश्न पर पुनर्विचार व संशोधन का बार–बार सुझाव दिया है। इनमें सर्व श्री ए.पी. वैंकटेश्वरन, मुचकुंद दुबे, जगत मेहता, एन.एन.झा व रंगनाथन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्तमान राजनीतिज्ञों में श्री वेंकटरमण, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री रवि राय, श्री जार्ज फर्नांडीस, श्री इंद्रजीत गुप्त, श्री जनेश्वर मिश्र एवं श्री राम जेटमलानी की चिंताएं जगजाहिर हैं।

सातवां भ्रम यह है कि तिब्बत का प्रश्न सिर्फ दलाई लामा की पीढ़ी वाले तिब्बतियों का प्रश्न है। नई पीढ़ी वाले तिब्बती तिब्बत के अंदर आधुनिकीकरण तथा तिब्बत के बाहर पश्चिमीकरण से प्रभावित हैं। अपनी अस्मिता के बजाए चीनीकरण व अमरीकीकरण के प्रति ज्यादा आकर्षित हैं। कुछ साल पहले दिल्ली में थुप्तेन न्गोडुप की आत्माहुति, स्त्रियों द्वारा पेइचिंग में संपन्न विश्व महिला सम्मेलन के दौरान

विरोध प्रदर्शन तथा तिब्बती युवक कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न पर दलाई लामा द्वारा नरमी का खुला विरोध जैसे संकेत इस झूठ का पर्दाफाश करने के लिए काफी है, यह सतही प्रचार वैसे भी स्वतंत्रता आंदोलनों की प्रकृति का ज्ञान रखने वालों के लिए निरर्थक रहा है।

आठवां भ्रम इस आशंका के साथ जुड़ा है कि तिब्बत का प्रश्न उठाने पर चीन भारत पर पुनः 1962 जैसा हमलावर व्यवहार करेगा। इसलिए चुप रहना चाहिए। ऐसा मानने वाले यह भूल करते हैं कि स्वयं दलाई लामा बिना शर्त संवाद के आग्रही हैं। गांधीमार्ग पर चलकर सर्वानुमति की चेष्टा में हैं। फिर दलाई लामा के पक्षधर क्यों आघात व प्रहार का रास्ता खोलेंगे?

इस प्रसंग में नौवां व आखिरी महत्वपूर्ण भ्रम इस बात को लेकर है कि तिब्बत के सवाल पर सिर्फ कुछ भारतीय व अमेरिकी व्यक्तियों व समूहों के राष्ट्रवादी सरोकारों के कारण ही दिलचस्पी है; जबकि वास्तविकता दूसरी है। विगत वर्ष यूरोप के आठ सौ शहरों में नगरपालिका भवनों पर तिब्बती झंडे फहराकर एकजुटता प्रदर्शित की गई है। यूरोपीय संसद में रेडिकल पार्टी के 45 सदस्य हैं और वे तिब्बत के प्रश्न को सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में प्राथमिकता देते है। जर्मनी के 35 शहरों में तिब्बत समर्थक नागरिक मंच सक्रिय हैं। इटली, फ्रांस, इंग्लैंड व आस्ट्रेलिया में तिब्बत मुक्ति समर्थक स्थानीय जनसंगठनों के सक्रिय सहयोग से चलाए जा रहे हैं। विश्व भर में अहिंसावादी, पर्यावरणवादी तथा जनतंत्रवादी संगठनों का तिब्बत के प्रश्न पर अति सक्रिय सहयोग हो चुका है। इसीलिए पिछले 8 वर्ष में तीन बार तिब्बत समर्थक संसद सदस्यों व जनसंगठनों के सात अंतर्राष्ट्रीय समागम भारत, लिथुआनिया, बेलजियम, जर्मनी व अमेरिका में संपन्न हो चुके हैं। असलियत यह है कि भारत या अमेरिका की सरकार, भारत की तिब्बत मित्र संस्थाएं दोनों ही आज तिब्बत के प्रश्न पर विश्व जनमत या विश्व राजनीति का नेतृत्व नहीं कर रही हैं। अमेरिका को चीनी बाजार का लोभ है। भारत को चीनी सेना का भय है।

—

'वृहत्तर–चीन' का मिथक और अरुणाचल पर चीन का दावा

–मोहन गुरुस्वामी

ऐसा लगता है कि चीन या तो माहौल का जायजा लेना चाहता है या अरुणाचल प्रदेश या उसके एक हिस्से पर विवाद का नया चक्र शुरू करना चाहता है। भारत में चीन के राजदूत सुन युक्सी के हाल में इस विषय पर नया राग छेड़ने से तो ऐसा ही लगता है। चीन इस बात को लेकर भी कभी स्पष्ट नहीं रहा कि वह अरुणाचल का कितना हिस्सा चाहता है।

कल मैंने ल्हासा में एक ट्रेवल एजेंट के कार्यालय में लगे एक नक्शे को देखा। उसमें तवांग इलाके को चीन का हिस्सा दिखाया गया है। कई अन्य नक्शों में उन्होंने दिखाया है कि उनकी सीमा पहाड़ों के साथ–साथ चल रही है जिसका मतलब है कि पूरे अरुणाचल प्रदेश को वे अपना मानते हैं।

अरुणाचल क्षेत्र पर चीन का दावा इस बात पर आधारित है कि तवांग इलाके का प्रशासन ल्हासा से चलता था और विवादित क्षेत्र तिब्बत के आध्यात्मिक और लौकिक शासक दलाई लामा के प्रति निष्ठा रखता था। तो चीन को इस तर्क पर भी गौर करना चाहिए कि सिक्किम 19वीं सदी तक तिब्बत का जागीरदार रहा है और दार्जिलिंग को ब्रिटिश शासकों ने जबरन हथिया लिया। इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए क्या वे सिक्किम और दार्जिलिंग पर भी वास्तव में अपनी दावेदारी जताएंगे? निश्चित रूप से नहीं। ऐसा करना असंगत होगा। समय अब बदल गया है। 21वीं सदी में स्थिरता रहे, इसके लिए 20वीं सदी की सीमाओं को स्थिर रखना होगा, चाहे हमारी लालसाएं कुछ भी हों।

इस मसले के मर्म में दो बड़े देशों की राष्ट्रीय पहचान जैसा बड़ा सवाल है और यह भी कि वे कब और कैसे विकसित होंगे।

मुगल साम्राज्य का भारत, अफगानिस्तान से बंगाल तक फैला हुआ था और दक्षिण में यह गोदावरी से ज्यादा दूर आगे तक नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में आज का पूरा भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश शामिल था, लेकिन इसमें अफगानिस्तान नहीं था और उन्होंने कभी अफगानिस्तान को जोड़ने का प्रयास भी नहीं किया। ब्रिटिश लोगों ने ही पहली बार 1826 में बर्मा को हराकर असम को भारत में शामिल किया और यांदाबो की संधि के द्वारा इस विलय को औपचारिक स्वरूप प्रदान किया।

पहली बार ब्रिटिश लोग 1886 में ब्रह्मपुत्र घाटी के पार गए जब उन्होंने नए चाय बागानों पर धावा बोलने वाली जनजातियों के एक लूटमार दल का पीछा करने के लिए लोहित घाटी में एक जत्था भेजा। इससे साफ होता है कि तब यह क्षेत्र न तो चीन के नियंत्रण में था और न ही तिब्बतियों के क्योंकि दलाई लामा या ल्हासा में चीनी अम्बान ने इसका कोई विरोध नहीं किया। जल्दी ही यहां ब्रिटिश शासन का कदम जम गया। तिब्बतियों ने दुनिया से स्वनिर्धारित अलगाव बनाए रखा और 19वीं सदी के दूसरे हिस्से में खोजी दलों और साहसिक लोगों के लिए सबसे बड़ी चुनौती यही रही कि ल्हासा में पहली बार कौन पहुंचता है। इस मामले में भारतीय सर्वेक्षण विभाग के गुप्तचर भी कम नहीं थे। इनमें सबसे प्रख्यात नाम शरत चंद्र दास का था जिनकी तिब्बत पर लिखी पुस्तक आज भी चाव से पढ़ी जाती है। जब साहसिक लोगों ने (इनमें अक्सर अन्वेषकों के छद्मवेश में सैन्य अधिकारी होते थे) ने तिब्बत जाना

शुरू कर दिया तो भारत में शासन करने वाले अंग्रेजों को चिंता होने लगी। भारत के तत्कालीन गर्वनर जनरल लॉर्ड कर्जन को सबसे ज्यादा चिंता इस खबर से हुई कि रूस के जार शासन के सबसे प्रख्यात खोजी कर्नल ग्रोम्बशेवस्की तिब्बत में देखे गए हैं। साल 1903 में कर्जन ने तिब्बत में एक सैन्य अभियान भेजने का निर्णय लिया जिसका नेतृत्व ग्रोम्बशेवस्की के पुराने प्रतिद्वंद्वी कर्नल फ्रांसिस यंगहसबैंड को सौंपा गया। गोरखाओं और अंग्रेज सिपाहियों के मिश्रण वाली एक मजबूत सैन्य टुकड़ी ने चुम्बी घाटी में नाथू ला दर्रे को पार किया और बिना किसी बाधा के शिगास्ते तक पहुंच गई। शिगास्ते में उन्हें तिब्बती सेना का दस्ता मिला लेकिन उसने केवल ऐसा विरोध किया जिससे सकारात्मक प्रतिरोध कहा जा सकता है। ब्रिटिश भारतीय सैनिकों ने उनपर गोलियों की बौछार कर दी, लेकिन उधर से एक भी गोली नहीं चलाई गई। यह जालियांवाला बाग से पहले की घटना थी। शिगास्ते से ल्हासा तक यंगहसबैंड ने बड़े आराम से मार्च किया। अंग्रेजों ने तिब्बतियों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे अलग–थलग रहना छोड़ेंगे और कारोबारी रियायतें देंगे, हालांकि 1904 में जैसे ही वे बाहर आए ये रियायतें खत्म हो गईं।

1907 में ब्रिटेन और रूस औचारिक रूप से इस बात पर सहमत हो गए कि तिब्बत को ''अलग–थलग छोड़ देने में उनका हित है, जो हाल तक अपनी इस स्थिति से बाहर नहीं जाना चाहता था।'' यह जानना पाठकों के हित में रहेगा कि इसके बावजूद तिब्बत को लेकर बड़ा खेल जारी रहा। 1907 में रूसी सेना के कर्नल मैनरहाइम (जो बाद में फील्ड मार्शल मैनरहाइम और फिनलैंड के पहले राष्ट्रपति बने) ने किरगिजिस्तान से चीन के उत्तरपूर्व स्थित हारबिन तक आने वाले एक घुड़सवार दल का नेतृत्व किया ताकि घुड़सवारों के आनेजाने का मार्ग तलाशा जा सके। इसके बाद का महत्वपूर्ण साल 1913 का था, जब चिंग वंश के ढह जाने के बाद तिब्बतियों ने अपनी आज़ादी की घोषणा कर दी और चीन में सुन यात सेन के नेतृत्व में गणतंत्र की स्थापना हुई। उन्होंने तिब्बत पर हमला कर वहां मौजूद चीनी रक्षकों को नाथू ला से पार भारत तक खदेड़ दिया। 1913 में ही अंग्रेजों ने भारत–तिब्बत के बीच सीमांकन के लिए शिमला सम्मेलन बुलाया। ब्रिटिश सरकार ने 1914 में मैकमोहन रेखा का प्रस्ताव रखा जिसे तिब्बतियों ने स्वीकार कर लिया। हालांकि, चीनी अम्बान ने इसका शुरुआत में ही विरोध किया, लेकिन ऐसा लगता है कि उनका विरोध मैकमोहन रेखा को लेकर नहीं बल्कि इस बात को लेकर था कि ब्रिटिश सरकार तिब्बत को एक संप्रभु राष्ट्र मानते हुए सीधे उसी से समझौता कर रही है। इसके बाद इस दिशा में कुछ और काम हुए। विदेश मंत्रालय में तत्कालीन उपसचिव, आईसीएस अधिकारी सर ओलाफ करोए के आग्रह पर 1935 में मैकमोहन रेखा को अधिसूचित कर दिया गया।

1944 में आईसीएस अधिकारी जे पी मिल्स ने नेफा में ब्रिटिश–भारतीय प्रशासन की स्थापना की, लेकिन इसके दायरे से तवांग इलाके को बाहर रखा गया और तवांग पर ल्हासा द्वारा नियुक्त प्रधान लामा का प्रशासन चलता रहा, जबकि यह मैकमोहन रेखा से काफी नीचे है। इसकी काफी हद तक वजह यह थी कि असम के गवर्नर हेनरी ट्विनैम अपनी ताकत खो चुके थे और तिब्बतियों को भड़काना नहीं चाहते थे।

1947 में दलाई लामा (वही जो अब धर्मशाला में हैं) ने नए आज़ाद हुए भारत को एक पत्र भेजकर नेफा (अरुणाचल) के कुछ जिलों पर अपना दावा पेश किया। 7 अक्टूबर, 1950 में चीनी सेना ने तिब्बती सीमा पर सात स्थानों पर हमला कर दिया और पूरे तिब्बत पर फिर से अपना नियंत्रण हासिल करने की इच्छा सार्वजनिक कर दी। शायद इसकी प्रतिक्रिया में ही 16 फरवरी, 1951 को आईएफएएस मेजर रेलैंगानो बॉब खाटिंग ने तवांग में भारतीय तिरंगा झंडा फहराया और इस भूभाग का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।

इस कथा का सार यह है कि अरुणाचल पर भारत का दावा किसी महान ऐतिहासिक परंपरा या सांस्कृतिक जुड़ाव पर आधारित नहीं है। हमारा उस पर अधिकार इस वजह से है कि ब्रिटिश वहां पहुंचे थे। लेकिन चीन का भी अरुणाचल पर दावा करने का कोई अधिकार नहीं है, सिवाय इसके कि चिंग साम्राज्य के दरबार में लगे चीन के विस्तारवादी आकांक्षाओं वाले कुछ खयाली मानचित्रों में ऐसा दर्शाया गया था। अब महत्वपूर्ण बात यह है कि हम वहां सौ साल से भी ज्यादा समय से हैं और इससे मुद्दा सुलझ जाता है। अरुणाचल प्रदेश की जनसंख्या में विभिन्न वर्गों का बहुत अच्छा मिश्रण है। इसकी जनसंख्या में तिब्बतियों का हिस्सा सिर्फ 10 फीसदी है। जनसंख्या का सबसे बड़ा 68 फीसदी हिस्सा इंडो–मंगोलायड जनजातियों का है। शेष हिस्सा नागालैण्ड और असम से आए प्रवासियों का है। यदि धार्मिक पहचान की बात करें तो 37 फीसदी हिस्से के साथ सबसे बड़ी जनसंख्या हिंदुओं की है, इसके बाद 36 फीसदी प्रकृति पूजकों और 13 फीसदी जनसंख्या बौद्धों की है।

हाल के जनसंख्या के आंकड़ों से पता चलता है कि वहां ईसाइयत काफी तेजी से बढ़ रही है जो संभवतः पैसे के बल पर हो रहे धर्मांतरण की वजह से हो रहा है। कुल मिलाकर वहां कुल 21 जनजातीय समूह और 100 से ज्यादा जातीय उपसमूह हैं जो 50 से भी ज्यादा भाषाएं और बोलियां बोलते हैं। राज्य की करीब 10 लाख की जनसंख्या 17 शहरों और 3,649 गांवों में बिखरी हुई है। मोनपाओं के कुछ गांवों को छोड़कर, जो मैकमोहन रेखा के उत्तर में हैं, यह जातीय हिसाब से सघन है और सटा हुआ क्षेत्र है। वास्तव में भारत भविष्य में होने वाली सीमा संबंधी वार्ताओं में मैकमोहन रेखा के उत्तर में स्थित मोनपा गांवों को भी अपनी सीमा में शामिल करने का मुद्दा उठा सकता है।

कई जानकार पर्यवेक्षकों का कहना है कि पीमाको घाटी से सांगपो (ब्रह्मपुत्र) के दक्षिण का क्षेत्र जब तक कि यह नदी अरुणाचल के सुबनसारी डिवीजन में नहीं प्रवेश कर जाती, एक तार्किक सीमा हो सकती है क्योंकि प्रचंड धारा और पुल बनाना असंभव जैसा होने से इस क्षेत्र में शायद ही कोई चीनी प्रशासनिक इकाई होगी।

यह बात सच है कि ऐतिहासिक रूप से भारत की सीमा तिब्बत से कभी नहीं मिलती थी, ऐसा तब हुआ जब अंग्रेजों ने 1846 में नेपाल से कुमाउं और गढ़वाल हासिल कर लिया और 1886 में अपने साम्राज्य का विस्तार अरुणाचल प्रदेश तक कर लिया। दुर्गम हिमालय सांस्कृतिक रूप से हमेशा भारत का हिस्सा रहा है उत्तर में किसी तरह की घुसपैठ के खिलाफ प्राकृतिक सीमा के रूप में रहा चाहे वह तिब्बतियों का घुसपैठ हो या चीनियों की। लेकिन अब समय बदल गया है और तकनीक तथा मनुष्य की महान इंजीनियरिंग ताकत से सबसे दुर्गम भूभाग को भी अपने वश में करना संभव हो गया है। अब हिमालय उस तरह से अवरोध नहीं रह गया है जैसा कि पहले था।

चीन और भारत दुनिया की महान अर्थव्यवस्थाओं और ताकतों में शुमार हो गए हैं तो क्या भारत के लिए अब यह संभव है कि वह चीन को हिमालय के पार ऐसी सामरिक रूप से महत्वपूर्ण जगह हासिल करने दे जो मैदान से कुछ ही मील दूर हो? 17वीं से 20वीं सदी की शुरुआत तक यह नीति रही है कि सीमा से आगे की जमीन पर अपना दावा किया जाए ताकि खुद को पड़ोसी देश की सेना से दूर रखा जा सके।

चाइना–रिव्यू मैगजीन में हाल में लिखे एक लेख में शंघाई के फुडान विश्वविद्यालय में स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ चाइनीज हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी के निदेशक प्रोफेसर जी जियानजियोंग ने लिखा है, ''इस दावे में कि तिब्बत तांग राजवंश के शासन से ही हमेशा चीन का हिस्सा रहा है, सचाई यह है कि चिंघाई–तिब्बत पठार का बाद में चीनी राजवंशों का हिस्सा बनना, इस प्रकार के दावों की पुष्टि नहीं करता।''

जी ने यह भी लिखा है कि 1912 में चीन जनवादी गणतंत्र के गठन के पहले तो चीन का स्वरूप भी साफ नहीं हो पाया था। यहां तक कि चिंग (मांचू) शासन के दौरान भी चीन शब्द का मतलब आमतौर पर उन सभी क्षेत्रों के रूप में माना जाता था जो चिंग साम्राज्य की सीमाओं में आते थे। कभी–कभी तो इसमें सिर्फ 18 आंतरिक राज्यों को शामिल किया जाता था और मंचूरिया, आंतरिक मंगोलिया, तिब्बत और सिंक्यांग को इससे बाहर माना जाता था।

प्रोफेसर जी ने कहा है कि "वृहत्तर चीन" की धारणा पूरी तरह चिंग दरबार के रिकॉर्ड में दर्ज एकतरफा विचारों पर आधारित हैं जो दरबार की तारीफ में बढ़ाचढ़ा कर लिखे गए हैं। जी ने उन लोगों की आलोचना की जो यह समझते हैं कि ऐतिहासिक चीन के क्षेत्रीय विस्तार को जितना ही बढ़ाचढ़ा कर बताएंगे उन्हें उतना ही ज्यादा "देशभक्त" माना जाएगा।

इस परिप्रेक्ष्य में मैं भारत में चीन के राजदूत सुन युक्सी के साथ हुई हाल की बातचीत के बारे में बताना चाहूंगा। राजदूत सुन ने कहा कि उनके गैर इरादतन दिए गए बयान की भारत में जमकर आलोचना हुई लेकिन चीन में उन्हें बहुत तारीफ मिली। बीजिंग में रहने वाले विद्वान जी जियानजियांग की इस सलाह पर गौर करते हैंः "चीन वास्तव में यदि शांतिपूर्वक आगे बढ़ना चाहता है और भविष्य में अपने ठोस कदम रखना चाहता है तो हमें अपने इतिहास का सारांश समझना होगा और अपने अनुभवों से सीख लेनी होगी।" यही बात भारत में साउथ ब्लॉक के बाबुओं और मीडिया पंडितों पर भी लागू होती है। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो जान सकते हैं कि कौन हम पर हंसेगा!

हार्ड न्यूज मैगजीन, दिल्ली से साभार, अगस्त 2006

—

मैकमहोन रेखा, तिब्बत और भारत
– सुनंदा के. दत्ता रे

1989 में दिया गया वक्तव्य

कहा जाता है कि जब चीन ने भारत सरकार को 1950 में सूचित किया कि उन्होंने तिब्बत को मुक्त करा दिया है, तो नेहरू जी ने पूछा था–''मुक्त किया! मगर किससे?''

पहले जब ब्रिटिश–भारत ने सिक्किम के दार्जिलिंग क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था और वहां सड़क बनाने के लिए पहाड़ियां उड़ाने लगे तो वहां खड़े एक वृद्ध भुटिया ने दार्जिलिंग के पहले ब्रिटिश कमिश्नर से कहा था–'' साहब, इस पाउडर की आवाज तो ल्हासा में भी सुनाई देगी।'' खैर, मैं इतनी आशा तो नहीं करता कि मेरे शब्दों की आवाज फिलहाल वास्तविक राजनीति में कोई परिवर्तन लाएगी। लेकिन मैं इतना जरूर सोचता हूं कि साउथ ब्लॉक–हमारा विदेश मंत्रालय–जो अधिक निकट है, यहां कही गई बातों को समझेगा और क्या पता, शायद कुछ कार्रवाई भी करे।

मैं भारत की भूमिका पर जोर दे रहा था। भारतीय भूमिका होनी ही चाहिए, क्योंकि एकतरफा निर्णय वैधानिक रूप से चाहे जो भी हों, राजनीति में कभी भी व्यावहारिक या कारगर नहीं होते। ब्रिटिश–भारत और चीन के बीच हुआ कलकत्ता सम्मेलन मेरे दिमाग में है, क्योंकि इसमें ब्रिटिश साम्राज्ञी और चीनी सम्राट ने आपस में फैसला कर लिया कि सिक्किम अब से ब्रिटिश संरक्षण में रहेगा। पर इस फैसले में न तो सिक्किम की जनता की कोई भागीदारी थी और न ही तिब्बत की, जो सिक्किम पर एक तरह के अस्पष्ट अधिकार का दावा रखता था। फलतः दोनों ने ही तुरंत इस फैसले को मानने से इनकार कर दिया। एक तरफा निर्णयों और कार्रवाइयों के यही छिपे खतरे होते हैं। लेकिन भारत सरकार वास्तविकता के अपेक्षाकृत निकट है और हम इसे संबोधित कर सकते हैं, क्योंकि इस मामले में इसे महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

मेरा कहना यह नहीं है कि भारत को (तिब्बत के लिए) 1971 की तरह दूसरा मुक्ति युद्ध चीन से लड़ना चाहिए। मैं यह भी नहीं कहता कि भारत को दूसरी शांति सेना भेज देनी चाहिए, इस बार पर्वतों के पार। न ही मैं यह चाहता हूं कि हमें कोई त्वरित सैन्य बल भेज देना चाहिए, जैसा मालदीव में किया गया था। लेकिन एक दूसरी सांकेतिक प्रक्रिया भी है जिसे 'अन्य साधनों द्वारा लड़ाई' कहा जाता है। उसमें निश्चित रूप से भारत के लिए यह स्पष्ट करने का अच्छा अवसर होगा कि वह तिब्बत में केवल मानवतावादी रूचि नहीं लेता, बल्कि एक स्वशासी, स्वाधीन तिब्बत उसके स्वयं के हितों की रक्षा के लिए भी आवश्यक है।

मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि तिब्बत पर हमारे रुख का मुख्य आधार भय है। देश में एक धारणा बन गई है कि हमें तिब्बत के बारे में कुछ भी वहीं तक कहना चाहिए, जहां तक वह चीनियों को नाराज न करे और हमारे सीमा–संबंधी मुद्दों को प्रभावित न करे। ऐसे रुख की अति भी हो सकती है। मेरे ख्याल से, अक्तूबर 1987 में, विदेश मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने घोषणा की थी कि भारत सरकार ने दलाई लामा से कहा है कि उनकी कुछ बातें और उनके अनुयायियों की कुछ गतिविधियां सरकार को पसंद नहीं हैं। वस्तुतः ऐसा कोई संदेश परम–पावन दलाई लामा या धर्मशाला में उनके निजी दल

को नहीं भेजा गया। लेकिन नई दिल्ली ने इस तरह की घोषणा को जगजाहिर करना जरूरी समझा, ताकि चीनी संतुष्ट रहें। इस तरह की हरकतें सबसे अधिक खेदजनक हैं क्योंकि हमने ही 1959 में परम–पावन दलाई लामा और बड़ी संख्या में अन्य तिब्बतियों को देश में आदर और सम्मान से रहने का स्थान देने का साहसिक कार्य (जहां श्रेय है, वहां दें) किया था।

पूरे यूरोप में निर्वासित सरकारें और तरह–तरह के ताजों के दावेदार हैं। यदि आप पुर्तगाल जाएं तो बार और रेस्तरां में ढेरों राजे–महाराजे भटकते मिलेंगे। उनके प्रति पूरे सम्मान के बावजूद मैं कहूंगा कि उनकी स्थिति वह नहीं है जैसी कि तिब्बत के दलाई लामा को हमारे देश और हमारे समाज में मिली है। यह उस आदर का परिचायक है जो भारत की जनता दलाई लामा को देती है और उस आदर का भी जो भारत सरकार राजनैतिक तकाजों के बावजूद तिब्बती नेताओं को देती है।

लेकिन फिर भी तिब्बत के मामले में भारत द्वारा किसी सुनिश्चित कार्रवाई का अभाव दिखता है। जब मैं पत्रकार होने के नाते, विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता से पूछता हूं कि हम तिब्बत के बारे में क्यों नहीं बोलते, तो मुझे यह विश्वास दिलाया जाता है कि हम बोलते हैं, लेकिन अंदरूनी रूप से। क्योंकि एक तो, उनके अनुसार ये अंदरूनी संपर्क–सूत्र ज्यादा कारगर होते हैं और दूसरे, ये चीनियों को नाराज भी नहीं करते। लेकिन शेष विश्व तो यह नहीं जानता? और यही बात हमने अफगानिस्तान में सोवियत उपस्थिति के बारे में भी कही थी। लेकिन शेष विश्व न तो यह सब जानता है और न ही इस पर विश्वास करता है। वह हमारे नेताओं की बातों की तुलना करता है श्री मितरां या बिल हेडन, ऑस्ट्रेलिया के वर्तमान गवर्नर–जनरल, की बातों से। बिल हेडन जब ऑस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री थे तब उन्होंने ल्हासा में ही और वह भी एक राजकीय भोज के दौरान तिब्बत में मानवाधिकारों के उल्लंघन के बारे में प्रश्न उठाया था।

यह कहना आश्चर्यजनक है कि भारत को तिब्बत के बारे में अपना दृष्टिकोण साफ नहीं करना चाहिए या यह कर्तव्य छोड़ देना चाहिए। क्योंकि अब तक यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए थी कि इस प्रकार राजनीति में समर्पण की नीति कभी प्रभावी नहीं होती। मैं सिर्फ एक उदाहरण देना चाहूंगा। 1954 के भारत–चीन समझौते में भारत ने स्वेच्छा से तिब्बत में अपने वे क्षेत्रेतर अधिकार छोड़ दिए, जो उसे अंग्रेजों से विरासत में मिले थे। हालांकि नेहरू जी का यह मानना ठीक ही था कि किसी दूसरे देश में अपने सैनिकों को तैनात करना, अतिथि–गृहों और डाक सेवा का संचालन करना साम्राज्यवाद की निशानी होगी। लेकिन व्यावहारिक राजनीति के तकाजे के अनुसार उन्हें इसके बदले चीन से भी बराबरी का त्याग मांगना चाहिए था। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उन्हें विश्वास था कि चीनी कृतज्ञतावश स्वयं ही वह छूट दे देंगे जो भारत को चाहिए। पर चीन से नेहरू को मिले कड़वे घूंट से भी शायद कोई सबक नहीं लिया गया।

यह मुद्दा उठाने पर कहा जाता है कि भारत–चीन के संवेदनशील संबंधों में बाहरी मुद्दे लाना अच्छी कूटनीति नहीं होगी। मैं यह कहता हूं कि तिब्बत बाहरी मुद्दा है ही नहीं। हमें तो सिर्फ यह देखना चाहिए कि चीन किस तरह अपनी नीतियां संचालित करता है। जब गोर्बाचोव चीन आने के इच्छुक थे तब चीनियों ने दो शर्तों रखी थीं। पहली–अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं को हटाना, और दूसरी – कंबोडिया से वियतनाम का अलगाव। अब सोवियत–चीन संबंधों में अफगानिस्तान और कंबोडिया से ज्यादा बाहरी और क्या हो सकता है? फिर भी ये दोनों ही चीन की प्राथमिकताओं में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। और चीन ने सोवियत संघ से इनकी मांग करने और पाने का यह अच्छा अवसर समझा। लेकिन यही स्थिति अगर भारत के साथ होती तो हम शायद ही चीन की कूटनीतिक चालों की बराबरी करते।

हमें तिब्बत के मामले में ऐसा क्यों करना चाहिए? क्यों हमें सीमा–संबंधी वार्ताओं में तिब्बत को एक निश्चित स्थान देने पर भी विचार करना चाहिए? यदि हम इतिहास में लौटें तो गंगटोक में ब्रिटेन के पहले राजनैतिक अफसरों में एक चार्ल्स बेल – जिन पर सिक्किम, भूटान और तिब्बत की जिम्मेदारी थी – ने कहा था कि तिब्बत की चुंबी घाटी भारत के हृदय पर रखी हुई एक नुकीली कटार के समान है। और हम उसी कटार को कुंद करना चाहते हैं। यदि आप सिक्किम सीमा पर नाथूला तक जाएं, तो पाएंगे कि वहां चीनी टुकड़ियां भरी पड़ी हैं। वहां से यांग्त्से तक की पुरानी सड़क केवल सैनिक वाहनों द्वारा प्रयोग की जाती है, जबकि यह परंपरागत व्यापार–मार्ग था। चीनी सैनिक वहां उस बिंदु तक हैं जहां से चुंबी का दक्षिणी छोर और बंगला देश का उत्तरी छोर सिर्फ साठ–सत्तर मील है–गंगा ब्रह्मपुत्र मैदानों से मात्र साठ–सत्तर मील।

हमारे लिए तिब्बत की अलग पहचान पर जोर देने का सुरक्षा कारणों के अलावा एक और महत्वपूर्ण राजनीतिक कारण भी हैं – मैकमहोन रेखा। भारत–चीन के सारे संबंध मैकमहोन रेखा पर ही निर्भर करते है। यह सभी को पता है कि भारत का अक्सई–चिन और अन्य चौदह हजार पांच सौ वर्गमील क्षेत्र अभी अवैध रूप से चीन के कब्जे में है। मैकमहोन रेखा हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि अरूणाचल प्रदेश, असम और संपूर्ण उत्तर–पूर्व की सुरक्षा इसी पर निर्भर करती है।

मैकमहोन रेखा का अस्तित्व, तिब्बत के एक स्वतंत्र, सार्वभौम देश के रूप में अस्तित्व पर ही निर्भर करता है। मैं 1914 के शिमला सम्मेलन की विस्तृत चर्चा तो यहां नहीं करूंगा, लेकिन मैं परम–पावन दलाई लामा को उद्धृत करना चाहूंगा–''भारत सरकार यह मानती है कि भारत और तिब्बत की सीमा मैकमहोन रेखा के अनुसार तय हुई है। यह सीमा शिमला सम्मेलन में तय हुई थी और यह सम्मेलन केवल तिब्बत और ब्रिटिश सरकार के बीच हुआ था। यदि निर्णय के समय तिब्बत का कोई स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय अस्तित्व नहीं था तो इसे इस प्रकार के समझौते में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था। अतः यह स्पष्ट है कि यदि आप तिब्बत को सार्वभौम देश नहीं मानते तो आप शिमला सम्मेलन को भी नहीं मानते। और इसलिए आप मैकमोहन रेखा को भी मान्यता नहीं देते।''

भले ही यह असाधारण लगे, पर हमारा विदेश मंत्रालय ठीक यही करता है। इसके प्रवक्ता कहते हैंः हम तिब्बत को चीन का एक स्वशासी क्षेत्र मानते हैं और चीन के आंतरिक मामलों पर कोई टिप्पणी नहीं करते। पर वे यह नहीं कहते कि हम दक्षिण अफ्रीका और फिजी के आंतरिक मामलों पर टिप्पणी करते हैं। लेकिन वह अलग बात है।

यदि तिब्बत 1914 में स्वाधीन नहीं था, तो शिमला सम्मेलन में इसकी भागीदारी भी ठीक नहीं थी और तब इस सम्मेलन में जो समझौता हुआ वह भी ठीक नहीं था। फिर तो मैकमहोन रेखा सही में उतनी ही अमान्य है जितनी कि चीनी कहते हैं। सत्य तो यह है कि भारत अपनी सीमाओं की रक्षा तिब्बत की स्वतंत्रता को माने। यह जोखिम से भरी कूटनीति है और इस मामले में हम वाकई परमपावन दलाई लामा के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमें ऐसी स्थिति से निपटने का मार्ग बताया। उनका स्ट्रॉसबर्ग प्रस्ताव तिब्बत की ऐतिहासिक, वैधानिक स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता को मंजूर करने का रास्ता तो बताता ही है, साथ ही एक ऐसी सीमित व्यवस्था करने का रास्ता भी बतता है जिसमें तिब्बत कुछ हद तक चीन का संरक्षित क्षेत्र ही रहे। लेकिन जबकि हम इस प्रस्ताव का समर्थन करने में भी झिझकते हैं, क्योंकि यह चीनियों को नाराज कर देगा, चीनी हमसे संबंधित प्रश्नों पर ऐसी कोई संवेदनशीलता नहीं दर्शाते।

सिक्किम के भारतीय राज्य बन जाने के चौदह वर्ष बाद भी चीन उसे मान्यता नहीं देता। कुछ ही समय पहले जब सिक्किमी राज–परिवार की एक सदस्या तिब्बत जाना चाहती थी तो काठमांडू स्थित

चीनी दूतावास ने कहा– ''हां आप जा सकती हैं, लेकिन भारतीय पासपोर्ट पर नहीं।'' वह भारतीय नागरिक बन चुकी थीं, उनके पास भारतीय पासपोर्ट था, लेकिन फिर भी वह चीनियों द्वारा दिए अनुमति पत्र (Laissez passer) पर ही अपने संबंधियों से मिलने ल्हासा गईं।

दूसरा मुद्दा जिस पर चीन का उतना ही अड़ियल रवैया है– वह है अरूणाचल प्रदेश। लोगों को याद होगा कि अरूणाचल प्रदेश को राज्य बनाए जाने पर कितना हंगामा मचा था। मैं यह सब चीनियों पर आघात करने के उद्देश्य से नहीं गिना रहा, बल्कि इसलिए कह रहा हूं ताकि आप देख सकें कि आप कूटनीति में केवल उस पर ध्यान देते हैं, जिसे आप अपने राष्ट्रीय हित समझते हैं। लेकिन चीन, सिक्किम और अरूणाचल प्रदेश को भारत का हिस्सा न मानने को भी अपने राष्ट्रीय हितों का ही एक भाग समझता है।

इसी प्रकार, जब 1988 में भारत ने वर्तमान समझौता– प्रक्रिया के अंतर्गत ''बीजिंग रिव्यू'' पत्रिका पर लगा लगभग 26 साल पुराना प्रतिबंध हटा लिया तो यह आशा की गई कि चीनी बदले में दोस्ताना व्यवहार करेंगे। लेकिन इसके बाद जो पहला ही अंक आया, उसमें यह बात दुहराई गई थी कि बीजिंग मैकमहोन रेखा को नहीं मानता। तो, दोस्ती के भारतीय हाथ को बार–बार यही बदला मिला है कि उसे झटक दिया गया।

दलाई लामा ने हमें बड़ा ही सीधा–साफ रास्ता बताया है कि कैसे हम तिब्बती अधिकारों का समर्थन कर सकते हैं। इसके अनुसार हम सिद्धांत रूप में तिब्बत के संप्रभु अधिकारों को स्पष्ट रूप में रख सकते हैं, पर व्यवहारिक रूप में इसकी मांग किए बिना ही। जो प्रस्ताव 1981 में विचार के लिए रखा गया था वह देंग सियाओपिंग के 'एक देश, दो व्यवस्थां' के फार्मूले पर आधारित था। तब यह प्रस्तावित किया गया था कि परमपावन दलाई लामा ल्हासा वापस जाने को तैयार हैं यदि तिब्बत की सीमाएं फिर से निश्चित की जाएं जिससे चीनी साम्राज्य में रह रहे सभी तिब्बती इसके अंतर्गत आ जाएं। और तिब्बत को केवल वही राजनीतिक और आर्थिक अधिकार दिए जाएं जो चीन द्वारा ताइवान को दिए जाने का वादा किया गया था और जिन्हें वहां के कुओ मिनतांग शासन ने नामंजूर कर दिया था।

1951 के चीन–तिब्बत समझौते की दलाई लामा ने पुष्टि नही की जिसमें तिब्बत पर चीन का अधिपत्य स्वीकार किया गया था। इसी तरह 1981 के प्रस्ताव से भी कोई निष्कर्ष नहीं निकला। लेकिन इन सबसे इन प्रस्तावों को फिर न दुहराने का कोई कारण नहीं है। चीन द्वारा ताइवान को प्रस्तावित नौ–सूत्रीय प्रस्ताव की अतिशय उदारता से सभी चकित हैं। हम हांगकांग को दी जाने वाली उन सुविधाओं के बारे में भी जानते हैं, जिनका चीन ने वादा किया है जब हांगकांग 1997 में चीन से जुड़ जाएगा। तब यह चीन का एक विशेष–प्रशासित क्षेत्र हो जाएगा जिसकी व्यवस्था अपनी होगी।

यह दोनों ही बातें बताती हैं कि चीन का संवैधानिक ढांचा पूर्णतः रूढ़ नहीं है और इसमें आवश्यकतानुसार ढील दिया जाना असंभव नहीं है। जो सुविधाएं चीनी ताइवान और हांगकांग को परिस्थितिवश देने को बाध्य हुए हैं, उन्हें वह तिब्बत को भी दे सकते हैं। लेकिन वह स्वेच्छा से नहीं दिए हैं। वे बाध्य थे यह कहने के लिए और ऐसी बाध्यता पैदा करना तिब्बत के मामले में भी आवश्यक है।

पिछले दो वर्षों में तिब्बती अपने गृह–प्रदेश में युद्ध में लगे हैं और उन्होंने यह दिखा दिया है कि वे कितनी बहादुरी से अपने हल के फालों को हथियारों में भी बदल सकते हैं। असुरक्षित होते हुए भी वे अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। लेकिन राजनीति में सिर्फ यही काफी नहीं होता।

बाहरी दबाव भी पड़ना चाहिए। जो देश इसके लिए सबसे अच्छी स्थिति में है, वह निश्चय ही भारत है, और भारत को यह अधिकार भी है कि वह कूटनीतिक हलकों द्वारा चीन पर तिब्बत में अधिकारों के लिए दबाव डाले। आखिर तिब्बत के अधिकारों की घोषणा भारत के मैकमहोन रेखा से जुड़े सुरक्षा–हितों के लिए आवश्यक है। लेकिन ऐसा कुछ करने की बजाय, राजीव गांधी ने चीन में रहते हुए, ज्योति बसु की तरह, कुछ भी नहीं कहा।

ब्रिटेन का रूख यह था कि हम (ब्रिटेन) तिब्बत पर चीन का आधिपत्य स्वीकार लें लेकिन इस शर्त पर कि व्यवहार में चीन ऐसे किसी अधिकार का प्रयोग कभी नहीं करेगा। व्यवहार में तिब्बत ब्रिटिश–भारत के अधीन रहेगा, लेकिन सिद्धांततः मंचू चीन का संरक्षित क्षेत्र होगा। लेकिन इस प्रकार के बंटवारे तभी तक टिकते हैं जब तक साम्राज्यवादी शक्तियां क्रियाशील हों। उनके कमजोर पड़ने पर ये बंटवारे भी असफल हो जाते हैं।

इसलिए उन तरीकों से भारत का रुख निश्चित करने की जरूरत नहीं है। अतीत में भारत ने इस प्रकार के जोड़–तोड़ से ऊपर उठने की क्षमता दिखाई है। मैं एक घटना याद कर पा रहा हूं – 2500 वीं बुद्ध जयंती पर नेहरू जी ने सिक्किम के चोग्याल को ल्हासा जाकर दलाई लामा को निमंत्रित करने को कहा था। यह यात्रा चीनियों को रास नहीं आई। लेकिन यह भारतीयों के लिए एक प्रकार की कूटनीतिक विजय थी और चीनियों के लिए एक झटका।

वह भावना, वह साहस, जिसने उस समय इस कदम को प्रेरित किया, अब धूमिल नजर आती है। और यही भावना और साहस हमें फिर से पाना है, यदि अतीत से मुक्ति पानी है और तिब्बत की पहचान को स्वीकारना है तो यह पहचान, तीन–तरफा काम करेगी। एक तो यह अंतर्राष्ट्रीय मानवतावाद, जिसके बारे में हम बहुत सुन चुके हैं, को जगाने का कार्य करेगी। दूसरे, वह मैकमहोन रेखा के वैधानिक आधार को दृढ़ता देगी। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह कि बीजिंग को बता देगी कि भारत अब उपेक्षा करने योग्य सहयोगी नहीं है। एशिया की दोनों बड़ी क्षेत्रीय शक्तियों के बीच अच्छे संबंध निश्चित रूप से होने चाहिए, लेकिन ये संबंध सिर्फ एकतरफा समर्पण की बजाय किसी और तथ्य पर आधारित होने चाहिए।

चीन ने हाल में परस्पर सामंजस्य की बात कही है और श्री राजीव गांधी ने परस्पर हितों की। लेकिन मेरा मानना है कि ये संबंध केवल परस्पर सम्मान पर ही आधारित हो सकते हैं। और यह सम्मान तभी जन्म लेगा जब भारत तिब्बत के लिए बोलना अपना वैधानिक और नैतिक अधिकार मान लेगा।

——

एशियाई जल युद्ध से बचना होगा
– ब्रह्म चेलानी

सबसे आवश्यक संसाधन होने के नाते शांति, जनस्वास्थ्य और समृद्धि की जल सामरिक चाबी है। पिछले वर्षों के युद्ध जमीन के लिए लड़े गए थे। आज के युद्ध ऊर्जा के लिए लड़े जा रहे हैं, लेकिन भविष्य के युद्ध जल यानी पानी के लिए होंगे। फिलहाल तो इसकी सबसे ज्यादा संभावना एशिया में दिखती है।

संयुक्त राष्ट्र के 2006 की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अंटार्कटिका को छोड़कर एशिया में अन्य सभी महाद्वीपों की तुलना में सबसे कम ताजा जल है। हालांकि, पृथ्वी के दो–तिहाई हिस्से में जल ही जल है, लेकिन यह जल काफी खारा होता है जिससे इसका उपयोग नहीं हो पाता। दुनिया में जल का सिर्फ 2.5 फीसदी हिस्सा ही पीने योग्य होता है, लेकिन इसका भी दो–तिहाई हिस्सा ध्रुवीय हिमशिखरों और हिमनदियों में बंद है। इस प्रकार दुनिया में उपलब्ध कुल जल का 1 फीसदी से कम हिस्सा ही मनुष्यों या अन्य जीव–जंतुओं के उपभोग के लिए उपलब्ध है।

एशिया में वनों के उजड़ने, नदी घाटियों के कुप्रंबधन, पर्यावरण के प्रतिकूल सिंचाई व्यवस्था, भूमिगत जल के अतिशय उपयोग और जलस्रोतों में प्रदूषण आदि से जलसंकट और बढ़ गया है। भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन की वजह से एशिया के कई हिस्सों में जल स्तर नीचे गिरता जा रहा है। भूमिगत जलभंडार खत्म होते जाने से वेटलैंड और झील सूख सकते हैं क्योंकि ये भूमिगत जल स्रोतों से जुड़े होते हैं। ताजे जल की जगह खारे समुद्रीय जल को मैदानी इलाकों में पहुंचा कर इसका उपयोग किया जा सकता है, जैसा कि एशिया के कुछ समुद्रतटीय क्षेत्रों में हो भी रहा है। गंगा के डेल्टा वाले क्षेत्र के कुओं में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले आर्सेनिक भंडार होते हैं जिससे पूर्वी भारत और बांग्लादेश के करोड़ों लोगों के शरीर में पेयजल और चावल जैसे कृषि उत्पादों के साथ बड़ी मात्रा में आर्सेनिक भी पहुंच जाता है। वास्तव में एशिया में आज जल तक पहुंच ही लोगों को अमीर और गरीब में विभाजित कर देता है। गरीब लोग जहां जल की बुनियादी जरूरत पूरी करने और दैनिक उपयोग के लिए जल हासिल करने का संघर्ष कर रहे हैं, वहीं अमीर लोग बड़े पैमाने पर बोतलबंद पेयजल पर निर्भर हैं। उपलब्ध ताजे जल की गुणवत्ता और मात्रा वास्तव में एशिया में सुरक्षा संबंधी चुनौतियों का एक महत्वपूर्ण घटक हो गई है। कई देशों तक बहने वाली नदियों पर बनने वाले बांध अंतरराष्ट्रीय संघर्ष को बढ़ावा दे रहे हैं। यदि इन या अन्य जल इंजीनियरिंग परियोजनाओं पर भविष्य में किसी युद्ध की संभावना को खत्म करना है तो इस संबंध में अंतरराष्ट्रीय नियम–कानून बनाने होंगे।

दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ते सैन्य खर्चों, सबसे खतरनाक विवादित स्थानों और संसाधनों के लिए सबसे तीखी प्रतिस्पर्धा वाला स्थान एशिया अब जल युद्ध के लिए सबसे बड़ा केंद्र बनता दिख रहा है। कुछ देशों द्वारा नदियों के किनारे होने की स्थिति या उन पर अपने प्रभुत्व का दुरुपयोग करने की वजह से यह संभावना बलवती हुई है। नदी तटों के प्रभुत्व के मामलों में कोई अंतरराष्ट्रीय कानूनी सिद्धांत भी नहीं लागू होता है और इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि नदियों के किनारे रहने

वाले अन्य देशों के लिए जल छोड़ना राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल हो सकता है।

नदियों के ऊपरी हिस्सों में स्थित बांधों, बैराज, नहरों और अन्य सिंचाई व्यवस्था से जल को राजनीतिक हथियार बनाने में मदद मिलती है। युद्ध की स्थिति में इस हथियार का खुलकर उपयोग किया जा सकता है और शांतिकाल में भी इसका थोड़ा उपयोग उन देशों के प्रति असंतोष जताने में किया जा सकता है जहां से नदी गुजर रही हो। यहां तक कि अत्यंत जरूरी मौसम में हाइड्रोलॉजिक आंकड़े देने में आनाकानी भी राजनीतिक हथियार बन सकता है। इस प्रकार के कदम से नदियों के निचले हिस्से में स्थित देश अपनी नदी जल तक पहुंच की कमी की भरपाई के लिए सैन्य क्षमताओं में बढ़ोतरी कर सकते हैं।

जापान, मलेशिया और म्यांमार को छोड़कर अन्य एशियाई देश पहले से ही जल संकट का सामना कर रहे हैं। खारे जल द्वारा धीरे–धीरे तटीय क्षेत्रों को काटने, लगातार चक्रवाती बाढ़ का सामना करने और जलवायु परिवर्तन की वजह से महासागरों का जलस्तर बढ़ने से बांग्लादेश और मालदीव जैसे निचले क्षेत्रों में स्थित देशों का भविष्य पहले से ही दांव पर लगा हुआ है। बांग्लादेश में आज बहुत ज्यादा जल है, फिर भी इसकी जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी नहीं है। 1971 में खून–खराबे के बीच जन्मा, दुनिया में जनसंख्या के लिहाज से सातवां बड़ा देश (बांग्लादेश) अब जल कब्र रूपी प्रेत का सामना कर रहा है।

चीन और भारत पहले से ही जल–तनाव वाली अर्थव्यवस्थाएं हैं। सिंचाई आधारित कृषि के प्रसार और गहन जल के उपयोग वाले उद्योग और बढ़ते मध्यम वर्ग की वजह से ज्यादा जल हासिल करने के लिए दोनों देशों के बीच गंभीर संघर्ष की नौबत बन रही है। ये दो बड़े देश अब ऐसे चिरस्थायी जल संकट के दौर में प्रवेश कर रहे हैं जो जल्दी ही प्रति व्यक्ति उपलब्धता के हिसाब से मध्यपूर्व के संकट की बराबरी कर सकते हैं।

यदि दोनों देशों के बीच जल की मांग वर्तमान मनमानी गति से ही बढ़ती रही तो भारी जल संकट की वजह से दोनों देशों की आर्थिक तरक्की की रफ्तार धीमी पड़ सकती है। जल संकट की वजह से खाद्य पदार्थों का निर्यात करने वाले देश चीन और भारत प्रमुख आयातक बन जाएंगे जिससे निश्चित रूप से पूरी दुनिया में खाद्य संकट को बढ़ावा मिलेगा। हाल यह है कि भारत की कृषि योग्य भूमि चीन से ज्यादा है (चीन के 13.71 करोड़ हेक्टेयर की तुलना में भारत में 16.05 करोड़ हेक्टेयर जमीन) लेकिन गंगा के अलावा भारत की अन्य सभी प्रमुख नदियां चीन के कब्जे वाले तिब्बती पठार से निकलती हैं। तिब्बत दुनिया का सबसे बड़ा पठार है, जिसमें विस्तृत हिमनदियां, विशाल भूमिगत सोते हैं और ऊंचे अक्षांश पर होने की वजह से इसे दुनिया की महानतम नदियों का उद्गम होने का गौरव हासिल है।

एशिया की लगभग सभी प्रमुख नदियां यहीं से निकलती हैं। इस प्रकार तिब्बत की एक विशिष्ट स्थित है। दुनिया का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें इतने विशाल आकार का जल भंडार हो और जिसका लाभ एक पूरे महाद्वीप के अधिकांश हिस्से के लोग उठा रहे हों।

तिब्बत पर अपना नियंत्रण हासिल कर चीन ने दक्षिणी और दक्षिण–पूर्वी एशिया में बहने वाली कई प्रमुख नदियों के पारिस्थितिकीय संभावनाओं पर भी नियंत्रण कर लिया है। लेकिन चीन तिब्बत पठार में कई गहन अंतर घाटी और अंतर नदी जल हस्तांतरण परियोजनाओं जैसे खिलवाड़ कर रहा है।

चीन में अभी जो “विशाल दक्षिण–उत्तर जल हस्तांतरण परियोजना” चल रही है, वह मानव निर्मित नहरों से इसके उत्तरी अर्द्ध सूखे वाले क्षेत्रों तक जल पहुंचाने की अत्यधिक महत्वाकांक्षी इंजीनियरिंग

प्रयास है। इस परियोजना के तीसरे चरण में तिब्बती पठार से जल के हस्तांतरण के विचार का राष्ट्रपति हू जिनताओ ने भी जमकर समर्थन किया था। हू जिनताओ खुद जलविज्ञानी थे और तिब्बत में 1989 में बर्बर सैनिक शासन लागू करने के बाद वह कम्युनिस्ट पार्टी में बड़ी आसानी से ऊंचाई पर पहुंच गए। प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ ने खुलकर कहा था कि जल संकट ''चीनी राष्ट्र के अस्तित्व के लिए ही खतरा है।''

लेकिन इस चुनौती से निपटने के लिए चीन जिन विशालकाय परियोजनाओं पर काम कर रहा है, उनसे तिब्बत के नाजुक पारिस्थितिकीतंत्र को नुकसान पहुंचेगा। इससे अंतर नदी तटीय संघर्षों की शुरुआत भी हो सकती है। उदाहरण के लिए मेकांग नदी घाटी की जलराजनीति और गहरा सकती है क्योंकि चीन ने निचली धारा के पास स्थिति देशों की जरूरतों की चिंताओं को नजरअंदाज करते हुए मेकांग की ऊंची धाराओं पर कई नए बांध बनाए हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी को उत्तर की ओर मोड़ने की कोशिश पर भारत की चिंताओं पर आधे मन से ही ध्यान देते हुए बीजिंग ने उस मोड़ की पहचान की है जहां भारत में प्रवेश करने से ठीक पहले ब्रह्मपुत्र दुनिया का सबसे लंबा और गहरा दर्रा बनाती है। चीन अपने जल और ऊर्जा जरूरतों के लिए इसे सबसे बड़े ऐसे भंडार के रूप में देख रहा है जिसका अभी तक दोहन नहीं हुआ है। चीन यदि ब्रह्मपुत्र नदी के उक्त विशाल मोड़ पर दुनिया की सबसे बड़ी जलविद्युत परियोजना बनाना शुरू करता है तो ब्रह्मपुत्र नदी के जल वितरण को लेकर चीन–भारत संघर्ष शुरू होने में देर नहीं लगेगी।

एशिया आगे भी ऐसा महाद्वीप बना रहेगा जहां बुनियादी सुविधाओं के अभाव और जल तक पहुंच न रखने वाली सबसे बड़ी जनसंख्या रहती है। बढ़ती मांग और जल के कुप्रबंधन की वजह से इस प्रकार के जल संकट बने रहने से शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों, अगल–बगल के प्रांतों और पड़ोसी देशों के बीच प्रतिस्पर्धा गहरा सकती है।

जैसे–जैसे ग्लोबल वार्मिंग बढ़ेगा एशिया में जल को लेकर स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विवाद बढ़ता जाएगा। इससे बचने के लिए यह जरूरी होगा कि देशों के भीतर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों पर नियंत्रण के लिए सहकारी संस्थागत तंत्र बनाया जाए।

यह बात साफ है कि एशिया में जल विवाद को रोकने या उससे निपटने के लिए ऐसी सहकारी नदी घाटी व्यवस्था बनानी होगी जिसमें सभी नदी तटीय पड़ोसी देशों को शामिल किया जाए। इस प्रकार की संस्थागत व्यवस्था पारदर्शिता, सूचनाओं के आदान–प्रदान, प्रदूषण नियंत्रण और इस प्रतिज्ञा पर केंद्रित होगी कि सीमापार बहने वाली नदियों की प्राकृतिक धाराओं को मोड़ने का प्रयास नहीं होगा या उन पर ऐसी परियोजनाओं का निर्माण नहीं किया जाएगा जिससे सीमा पार जाने वाली जल धारा में कमी आए।

इन सिद्धांतों के आधार पर सफलतापूर्वक अंतरराष्ट्रीय घाटी समझौते (जैसे सिंधु, नील और सेनेगल नदी घाटी समझौता) किए गए हैं।

संसाधनों के बंटवारे के लिए यदि कोई संस्थागत सहयोग नहीं होता है और जल लड़ाई का नया अखाड़ा बन जाता है तो एशिया की शांति खत्म हो जाएगी। चीन के पूर्व जल संसाधन मंत्री वांग शुचेंग के शब्दों से कुछ संकेत मिलता है, "जल की एक–एक बूंद के लिए लड़ें या मर जाएं, आज चीन को इसी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।"

(ब्रह्म चेलानी नई दिल्ली के थिंक टैंक सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च में सामरिक अध्ययन के प्रोफेसर हैं)

निर्मल वर्मा और तिब्बत

अहिंसा और हिंसा के बीच एक बहुत बड़ी जमीन है

—शंकर शरण की निर्मल वर्मा से बातचीत

'kdj 'kj.k & हिंदी जगत में बहुत कम लोग हैं जो तिब्बत के लिए सोचते और मुखर होकर बोलते हैं। तिब्बत से आपकी सहानुभूति कब से और कैसे उत्पन्न हुई?

fue'y oek & दरअसल मेरी पृष्ठभूमि कुछ ऐसी रही है कि तिब्बत पर चीनी आक्रमण होने से पहले भी कम्युनिस्ट व्यवस्थाओं के इतिहास से मैं अपरिचित नहीं था। मैंने कई वर्ष चेकोस्लोवाकिया में बिताए थे। मैं वहां पर चेक भाषा और साहित्य का अध्ययन करने गया था। उन दिनों का अनुभव मेरे लिए यह था कि सोवियत संघ ने जिस प्रकार एक छोटे से देश चेकोस्लोवाकिया पर बराबर दबाव डाला और जब वहां की कम्युनिस्ट पार्टी ने कम्युनिज्म का सुधार करने के लिए कदम उठाए तो उसे किस तरह कुचलने के लिए आक्रमण किया। तभी से मुझे पता चला कि सोवियत सत्ता का न तो अंतराष्ट्रीय भाइचारे से कोई संबंध है, जिसे वे कम्युनिज्म के नाम पर बराबर प्रचारित करते रहे, न ही वे उन शक्तियों से मूलभूत रूप से अलग हैं जिन्हें वे अमेरिका या इंग्लैंड की तरह साम्राज्यवादी कहते रहे। जब किसी छोटे देश, चाहे उसमें कम्युनिस्ट पार्टी की ही व्यवस्था क्यों न हो, यदि वहां पर सरकार की नीतियां किसी बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के विरूद्ध जाती हैं या उसकी महत्वाकांक्षाओं के रास्ते में रूकावट डालती हैं तो उस बड़ी कम्युनिस्ट व्यवस्था को चाहे वह चीन हो, सोवियत संघ हो, उसके सामने किसी तरह की कोई नैतिक हिचकिचाहट या अवरोध नहीं रहता कि वो बल के द्वारा या छल के द्वारा उस छोटे राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता, स्वतंत्रता को छीनने का प्रयत्न न करे। ऐसे अनुभव के बाद कम्युनिज्म के प्रति जो मेरा सम्मोहन या आकर्षण था वह कुछ इस बुरी तरह टूटा कि जब तिब्बत की अंदरूनी नीतियों में चीन ने हस्तक्षेप करना शुरु किया तो मुझे यह समझते देर न लगी कि यह वही कम्युनिस्ट प्रकार की साम्राज्यवादी लिप्सा है जिसका स्वरूप मैंने यूरोप में सोवियत संघ की नीतियों में देखा था।

'kdj 'kj.k &सोवियत संघ की नीतियों का ऐसा स्वरूप सबसे पहले आपने कब महसूस किया था?

fue'y oek & इसका धीरे–धीरे अहसास मुझे भारत में भी हुआ था जब 1956 में हंगरी में एक बहुत बड़े विरोध की आवाज उठी थी, जिसमें हंगेरियन कम्युनिस्ट सत्ता के विरूद्ध वहां के मजदूर, वहां की जनता, यहां तक कि कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों ने भी अपनी आवाज उठाई थी। तब स्तालिन की मृत्यु हो चुकी थी और ख्रुश्चेव सत्ता में थे। ख्रुश्चेव ने अपनी सेनाएं हंगरी में भेजी और काफी बड़े रक्तपात के बाद वे इस विरोध को काबू में कर पाए थे। तब पहली बार मुझे लगा कि खुद को श्रमिकों की सरकार कहने वाली सत्ता किस तरह से दूसरे देश की व्यवस्था का दमन कर सकती है जहां चाहे खुद मेहनतकशों की सरकार मानी जाती है। यह एक शिक्षाप्रद अनुभव था। मुझे लगा कि एक दृष्टि से पश्चिमी साम्राज्यवाद और कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के बीच कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

'kdj 'kj.k &इससे पूर्व आप में साम्यवादी व्यवस्था के प्रति आकर्षण था?

fue'y oek & मेरे भीतर आकर्षण था। कॉलेज में और बाद में भी मैं समाजवाद के प्रति आकर्षित हुआ था। भारतीय समाजवाद में लोहिया और जयप्रकाश जी की किताबें मैंने पढ़ी थीं। मुझे लगता था

कि स्वतंत्रता के बाद भारत की आर्थिक समस्या तब तक नहीं सुलझ सकती जब तक कोई रेडिकल कदम इस असमता और शोषण को दूर करने के लिए न उठाया जाए। और मुझे लगता था कि कांग्रेस की नीतियां लोकतांत्रिक होने के बावजूद उस बुनियादी परिवर्तन के प्रति शिथिल हैं, उतनी उत्सुक नहीं हैं जितनी कि वामपंथी पार्टियों की नीतियां हैं। समाजवाद के प्रति आकर्षण मुझे कम्युनिस्ट पार्टी के नजदीक ले गया। इसका कारण यह भी था कि कम्युनिज्म के नाम पर चीन की क्रांति सफल हो चुकी थी। फिर सोवियत संघ से भी बड़ी आशाएं थीं क्योंकि उसने जर्मन फासिज्म को हराया था। मन में यह एक प्रबल चीज थी कि यदि सोवियत संघ में सोवियत सत्ता के प्रति जनता का विश्वास न होता तो वे स्वतंत्रता के लिए इतने बड़े पैमाने पर बलिदान नहीं करते। लेकिन जब शीत–युद्ध की राजनीति चली और फिर ख्रुश्चेव की गुप्त रिपोर्ट सामने आई तो पहली बार लगा कि जो 1936 के आसपास सोवियत संघ में सीक्रेट ट्रायल्स हुए थे, बहुत से कवियों को लेबर कैंप में भिजवाया गया था, और क्योंकि हम इतने अधिक फैनेटिकल थे कि जो कुछ सोवियत विरोध में लिखा जाता था, जैसे ऑरवेल या कोएस्लर जैसे व्यक्ति थे, या सिरोनी जैसे लेखक जो इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में रहे थे मगर विक्षुब्ध होकर भाग आए थे,, उनकी चीजें पढ़ते तो थे, मगर उन पर अधिक विश्वास नहीं हो पाता था। कम्युनिस्ट प्रचार इतना शक्तिशाली था कि इन विरोधी आवाजों पर हमारा विश्वास नहीं हो पाता था।

मगर जब वह सब घटनाएं होने लगीं –हंगरी, चेकोस्लोवाकिया पर सोवियत आक्रमण और खुद भारत में रणदिवे के समय कम्युनिस्ट पार्टी में संकीर्ण नीतियों का अनुकरण – इससे मुझे लगा कि न केवल कम्युनिस्ट पार्टी का लोकतंत्र में कोई विश्वास नहीं है बल्कि स्वयं मार्क्सवाद के आमूल परिवर्तन की परिकल्पना में भी बहुत बड़ा खोखलापन है। यद्यपि वह प्रचार का एक मुखौटा जरूर है।

अब मेरे जैसे व्यक्ति, जिसकी पृष्ठभूमि ऐसी रही हो, उसे समझने में देर नहीं लगी कि चीन का तिब्बत के प्रति रवैया बराबर धोखाधड़ी का, छल का, प्रपंच का रहा है, और जवाहरलाल नेहरू का यह तरीका रहा कि वे चीन पर विश्वास करते रहे। उनका सोवियत संघ और चीन के प्रति हमेशा सद्‌भावना और सहानुभूति का रवैया रहां। चीनी क्रांति का बड़े उत्साह से उन्होंने स्वागत किया था इसलिए वे कलपना भी नहीं कर सकते थे... और तिब्बत के बारे में उनका कुछ ज्यादा गहरा ज्ञान नहीं था कि उसका क्या इतिहास रहा है। चीन की बराबर एक विस्तारवादी नीति रही। तिब्बत शक्तिशाली होता था तो स्वतंत्र रहता था वरना चीन उसे अपना उपनिवेश बनाने की कोशिश करता रहता था। नेहरूजी का चीनियों पर अंधविश्वास – सा था और दलाई लामा उन दिनों बहुत छोटे थे। तिब्बत अपने को बड़ा अरक्षित पता था। उसका सबसे बड़ा सहारा नेहरू और भारत थे। जब चीन को यह लगा कि दलाई लामा उसका खेल नहीं खेलने वाले हैं तो उसने तिब्बत में एक गहरा दमन शुरु किया । इसके परिणामस्वरूप दलाई लामा और हजारों तिब्बती शरणार्थियों को भारत आना पड़ा। इसके प्रति मेरे मन में कतई संदेह नहीं था पर कम्युनिस्ट पार्टी कहती थी कि दलाई लामा तिब्बत की सामंती शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'kdj 'kj.k &कम्युनिस्ट तो अब भी कहते हैं!

fue'y oek' & इसका मतलब आज तक, सोवियत संघ की घटनाओं के बाद भी, कम्युनिस्ट पार्टी ने कोई सबक नहीं सीखा है। मुझे तिब्बत के ऊपर चीन की सुजरेनिटी (आधिपत्य) या सॉवरैनिटी (संप्रभुता) की बात किसी भी तर्क के आधार पर समझ नहीं आती थी। तिबबत की सभ्यता, संस्कृति, उसका बौद्ध धर्म और अतीत बहुत कुछ भारत की सभ्यता–संस्कृति और बौद्धधर्म के निकट रहा है। तिब्बत से बौद्ध भिक्षु शताब्दियों से भारत आते रहे। यहां की कई पांडुलिपियों का उन्होंने अनुवाद किया जो तिब्बत के संग्रहालयों में रहा। कश्मीर और तिब्बत के बीच सांस्कृतिक संबंध थे। तिब्बत की एक स्वायत्त सांस्कृतिक अस्मिता थी जिसकी चीनी सभ्यता से कोई समानता नहीं थी। नेहरू जी ने तिब्बत पर चीन

की सुजरेनिटी मानी थी पर उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उस सुजरेनिटी का मतलब ये होगा कि वह एक दिन चीन का उपनिवेश बनकर रह जाएगा। किसी तरह की स्वायत्तता तिब्बत के हाथ में नहीं बचेगी।... इधर दलाई लामा ने जर्मनी में एक विनम्र घोषणा भी की कि हम चीन से बाहर होने की मांग नहीं कर रहे, उसके भीतर रह कर ही एक तरह की स्वायत्ता चाहते हैं। पर इस तरह की मांगों को भी ठुकरा दिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि चीन के नेताओं में किसी तरह की इच्छा नहीं है कि वे किसी प्रकार की रियायत या तिब्बत के प्रति उदारता का बर्ताव करें। उलटे वे तिब्बत में जिस प्रकार चीनियों को भेजकर वहां की डेमोग्राफी को बदल रहे हैं, वहां की प्रकृति का विनाश कररहे हैं, वहां अणुबमों की सामग्री का चूरा तथा करकट फेंक रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि वे तिब्बत के प्राकृतिक साधनों का पूरा दोहन करने में लगे हुए हैं और तिब्बत के सांस्कृतिक चरित्र का आमूल परिवर्तन करने में सक्रिय हैं।

'kdj 'kj.k &कभी–कभी तो लगता है कि स्वयं चीनी भी तिब्बत को अपना हिस्सा नहीं मानते। अपने हिस्से के साथ कोई इतना बुरा बर्ताव नहीं करता। चीनी क्रांति के तुरंत बाद ही चीनी सेना तिब्बत में गई थी। क्या उस समय भी आपको बुरा लगा था या आपने उस समय उतना ध्यान नहीं दिया था?

fueZy oekZ & उस समय चीन का तिब्बत के प्रति रुख उग्र और हिंसात्मक नहीं था। जब उन्होंने अपनी क्रांति की विजय को कॉनसोलिडेट कर लिया, सुदृढ़ कर लिया, तब वे तिब्बत के प्रति अधिक आक्रामक नीतियां अपनाने लगे। उस समय तो बहुत उत्साह था हमारे भीतर चीनी क्रांति के प्रति। चीनी सभ्यता भी बड़ी महान सभ्यता रही है। सन यात् सेन की क्रांति, फिर च्यांग काई शेक और जवाहरलाल नेहरू के संबंध बहुत अच्छे थे। जब जापानी आक्रमण चीन पर हुआ था, हमारी सहज रूप से सहानुभूति चीन के साथ थी। शायद इसी के कारण कुछ देर लगी यह समझ पाने में कि जिस कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन को मुक्त किया था वही कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में आने के बाद किसी छोटे देश को अपना गुलाम बनाएगी – इसकी कल्पना कम हो पाती थी उन दिनों। मगर यह भी एक कारण था कि तिब्बत के बारे में हमारा ज्ञान बहुत कम था, अनुभव नहीं था, उसे हम बहुत पिछड़ा हुआ समझते थे।

'kdj 'kj.k &तिब्बती भी दुनिया से कटे हुए रहते थे। वे स्वयं भी इसे एक कारण मानते हैं जिससे कि चीन उन पर काबिज हो सका। अच्छा, अभी जो निर्वासित तिब्बती अपनी स्वतंत्रता या स्वायत्तता के लिए आवाज उठा रहे हैं उसमें कभी–कभी एक दुविधा–सी दिखती है। कभी लगता है कि वे चीन से पूर्ण स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, कभी लगता है कि वे चीन के अंदर रहकर किसी प्रकार की स्वायत्ता को भी स्वीकार कर सकते हैं। जैसा आपने कहा कि इतिहास भी ऐसा ही रहा है कि शक्तिशाली होने पर तिब्बत स्वतंत्र रहता आया है, अन्यथा चीन के अधीन रहा है। यह स्थिति थोड़ी पेचीदा लगती है। कया इसे कुछ सरल किया जा सकता है? आपके विचार में स्वायत्तता या स्वतंत्रता में क्या उचित या संभव है?

'kdj 'kj.k &तिब्बत के लिए वातावरण बनाने में चीन के नेताओं पर दबाव डालने में अमरीका की भूमिका क्या बहुत बड़ी होगी?

fueZy oekZ & अमरीका की नीति महत्वपूर्ण हो सकती है पर अमरीका अपनी स्वार्थ–लिप्साओं में इतना लिप्त है कि वह मानव अधिकारों का प्रश्न तभी उठाता है जब यह स्वार्थों से जुड़ता हो। कश्मीर में आज जो कुछ हो रहा है उसमें अमरीका ज्यादातर चुप्पी साधने का काम करता है।... पर मैं समझता हूं कि अमरीका की तुलना में अफ्रीका और एशिया के देशों को तिब्बत के मामले में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। विशेषकर भारत को। और भारत की चुप्पी या ढुलमुल नीति मुझे तो बहुत ही लज्जास्पद जान पड़ती है। भारत के नेताओं को डर लगता है कि तिब्बत के बारे में बोलने से कहीं कश्मीर के मामले को न उठाया जाए। लेकिन मैं समझता हूं कि उन्हें स्पष्ट रूप से कश्मीर और तिब्बत के भीतर

क्या बुनियादी अंतर है इसका पूरा इतिहास बताना चाहिए। कश्मीर अपनी संस्कृति में हजारों वर्ष से भारत का अभिन्न भाग रहा है जबकि तिब्बत हमेशा सांस्कृतिक रूप से चीन से बिलकुल भिन्न रहा है। भारत के प्रतिनिधियों को यह अंतर समझना चाहिए। चूंकि कश्मीर में मुस्लिम कट्टरपंथियों की आतंकवादी कार्रवाई हो रही है इससे डरकर और चीन के साथ मैत्री दिखाने की लालसा में तिब्बत पर चुप्पी साध लेना या उसे बलिदान कर देना – इस पर भारत के बुद्धिजीवियों और राजनीतिज्ञों को अपनी आवाज उठानी चाहिए।

'kdj 'kj.k &ऐसा लगता है कि डर से ज्यादा यह हमारे राजनीतिज्ञों का प्रिय तर्क हो जाता है कुछ न करने का। डर से अधिक यह अकर्मण्यता है।

fue'y oek & उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि हम आज उतना भी नहीं बोल रहे हैं जितना मसला 1950 या 60 के दशक में उठाते थे, जब हम तिब्बत के मामले को सबसे आगे लाकर रखते थे और चीन से इस पर खासी बातचीत होती थी। हम तिब्बत के हित को अपने देश–हित के साथ जोड़कर देखते थे। यह बात तो खैर दूसरी है कि अभी भी यहां से नदियों का जल हमारे यहां प्रदूषित होकर आता है तो उससे हमारे आर्थिक स्वास्थ्य और पर्यावरण पर बुरा असर पड़ता है। मुझे तो यह लगता है कि भारत की नैतिक आवाज अमरीका से कहीं ज्यादा अर्थ रखेगी यदि भारत संयुक्त राष्ट्र या अन्य जगहों पर इन बातों को रखे। नेहरूजी ही थे जिन्होंने अपनी नामसमझी में कुछ गलतियां तो कीं, पर उन्होंने ही इसे स्वीकार भी किया, भारत ने ही अपनी गलती को पहचाना भी। इसी अपराध–बोध से भारत ने दलाई लामा को शरण दी। कोई समृद्ध देश न होते हुए भी तिब्बती शरणार्थियों की सहायता के लिए जो कुछ कर सकता था, भारत ने किया। पर यह बात मुझे बहुत अखरती है कि दलाई लामा आज तक भारत की संसद में नहीं बोल सके हैं जबकि उन्होंने अमरीका की सीनेट में भाषण दिया, और फ्रांस, इटली के राजनीतिज्ञों ने उन्हें बुलाया। पर भारत से इतना प्राचीन संबंध और पड़ोसी होते हुए भी हमारी संसद में उन्हें इतना महत्व नहीं दिया जाता। यह दुखद है।

'kdj 'kj.k &ऐसा लगता है कि पश्चिमी देशों में सरकार के स्तर पर शुरू से ही यह धारणा बन गई है कि जब दलाई लामा भारत में हैं और ाारत ही कुछ नहीं बोलता तो पश्चिमी देश कितनी दूर तक जा सकते हैं।

fue'y oek & कभी–कभी कुछ तिब्बती मित्र बोलते हैं कि यदि दलाई लामा भारत छोड़ कहीं और रहे होते तो शायद तिब्बत प्रश्न पर और सक्रियता दिखाई पड़ सकती थी।

'kdj 'kj.k &जी हां, ऐसा पता चला है कि कुछ सरकारें, जैसे लिबुआनिया की सरकार तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता देना चाहती है। शायद जर्मनी भी। पर जब तक भारत इसे मान्यता नहीं देता तब तक प्रोटोकॉल की दृष्टि से यह एक अजीब–सी स्थिति हो जाएगी। इससे ऐसा जरूर लगता है कि भारत में रहने से तिब्बती निर्वासित सरकार का समर्थन व्यापक नहीं हो पा रहा है। परन्तु ऐसा भी लगता है कि भारत में आम पढे–लिखे लोगों में – कट्टर वामपंथियों को छोड़कर– तिब्बत के प्रति सहानुभूति का भाव तो है मगर लोग ये नहीं समझ पाते कि तब करें क्या ? एक बेबसी–सी भी महसूस करते हैं। क्या आप कोई सलाह दे सकते हैं कि तिब्बत की मदद के लिए भारत के लोगों को क्या करना चाहिए।

fue'y oek & मुझे ऐसा लगता है कि तिब्बती निर्वासित सरकार को थोड़ा निर्भीक होकर भारतीय शहरों में, कम से कम बड़े शहरों में सीधे–सीधे, अगर राजनीतिक मंच पर नहीं तो सांस्कृतिक मंचों से अपनी बात करनी चाहिए। आखिर तिब्बत की दृष्टि में, उनकी संस्कृति ही उनकी राजनीति है क्योंकि वे सांस्कृतिक, राजनीतिक, धर्म और धर्मनिरपेक्षता में हम जैसे सेक्युलरिस्टों की तरह भेद नहीं करते। और यह बहुत संदर बात है क्योंकि उनके लिए धर्म वही है जो उनके समूचे जीवन को प्रभावित करता

है। उनका धर्म वह नहीं है कि चर्च या मंदिर में जाकर पूजा करने के बाद हम व्यावहारिक दुनिया में लग जाते हैं। उनका व्यावहारिक और गैर–व्यावहारिक जीवन एक धर्म सूत्रता के साथ बंधा हुआ है। तो इस बात से उन्हें नहीं डरना चाहिए कि यदि वे अपना संदेश भारत के बुद्धिजीवियों को, राजनीतिज्ञों को या जो कर्मठ लोग हैं, या आम जनता है यहां जाकर तिब्बत की समस्या पर, तिब्बत में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में, इस तरह कहें जिसमें भारत सरकार को ये न महसूस हो कि कोई राजनैतिक प्रोपेगंडा किया जा रहा है – क्योंकि तब उसे रोका जा सकता है। राजनीति उनका धर्म है और धर्म उनकी राजनीति है, इसलिए जो कुछ भी वे कहेंगे उसमें राजनीति की अनुगूंज तो रहेगी ही। और तिब्बत की अस्मिता और बौद्ध धर्म आपस में इनते गुंथे हुए हैं कि भारतीय जनता में उनके प्रति हमेशा सहानुभूति जागृत होती रहेगी। एक तो तिब्बतियों को स्वयं अपनी ओर से अधिक सक्रिय होना चाहिए और डरना नहीं चाहिए। भारतीय सरकार उन पर कोई विरोधी कदम तभी उठाती है जब उसे लगता है कि वह बिना किसी विरोध के ऐसा कर सकती है। अगर किसी तिब्बती प्रदर्शन पर पुलिस यहां लाठी चलाती है और चारों तरफ से लोग और राजनीतिक पार्टियां सरकार की ऐसी नीति की आलोचना करती हैं तो आप देखेंगे कि सरकार धीरे–धीरे एक दूसरी तरह का रुख अपनाने लगती है। क्योकि सरकार और सत्ताधारियों के मन में भी तिब्बतियों के प्रति कोई विरोध का भाव नहीं है। या तो वहां आलस्य है या फिर सहानुभूति ही है जो तभी मजबूत हो सकती हैं जब स्वयं तिब्बतियों की ओर से एक मुहिम या आंदोलन सतत रूप से चलता रहे – सांस्कृतिक स्तर पर, धार्मिक स्तर पर और अन्य मंचों पर।

दूसरे, हमारी राजनीतिक पार्टियों को तिब्बत के प्रश्न को नैतिक रूप में बराबर एक मुहिम की तरह संसद और इसके बाहर उठाते रहना चाहिए। इसे भारतीय राजनीतिक जीवन के कॉनसेंस के रूप में प्रस्तुत करते रहना चाहिए। ये पार्टियां, जैसे कांग्रेस, कोई मोनोलिथिक तो नही है। इनमें तरह–तरह के विचारों के लोग हैं, तिब्बत के समर्थक लोग भी हैं उन्हें हर अवसर पर इस प्रश्न को सामने रखना चाहिए। इस तरह तिब्बतियों तथा भारतीयों दोनों पक्षों से यह आना चाहिए। दोनों चीजें आपस में संबंधित हैं। तिब्बतियों का आंदोलन जितना ही शक्तिशाली होगा भारत सरकार उन्हें उतना ही स्कोप देगी कि वे अपना काम कर सकें। अगर तिब्बती डरते रहेंगे तो भारतीय सरकार भी उन्हें डराती रहेगी क्योंकि उसका फायदा इसी में है कि वे चुप बैठे रहें। हालांकि मिथ्या रूप में ही भारत सरकार ऐसा समझती है, वास्तव में तिब्बत के प्रश्न को उठाने में ही भारत सरकार का भी हित है और यदि भारत सरकार यह उठाती है तो चीन सरकार आकर उसका मुंह थोड़े ही बंद कर देगी। भारत कोई चीन के अधीन तो नहीं है। यह स्वतंत्र देश है और एक स्वतंत्र देश को जो नैतिक और राजनैतिक रूप से उचित लगे उसे कहने का अधिकार है।

'kdj 'kj.k &हां, दुनिया में जो सरकारें तिब्बत के बारे में बोलती हैं उनके चीन से संबंध चल ही रहे हैं। खत्म नहीं हो गए। पर जहां तक तिब्बतियों की बात है, जो निर्वासन में हैं, उनकी रणनीति अभी तक यही रही है कि दुनिया के नेताओं से, सांसदों से, प्रमुख लोगों से मिलकर उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयास करना चाहिए कि वे अपनी–अपनी सरकारों को प्रेरित करें ताकि वे चीन पर तिब्बत समस्या के समाधान के लिए दबाव डालें। यह पिछले कई वर्षों से चल रहा है। किंतु चीनी नेतृत्व के पास पहुंचकर बात खत्म हो जाती है क्योंकि वे तो जो स्वयं कहते हैं उसे भी नहीं करते। देंग सियाओ पिंग ने कहा था कि तिब्बत की स्वतंत्रता को छोड़कर किसी भी बात पर बात हो सकती है। दलाई लामा ने 1988 में स्ट्रासबर्ग प्रस्तावों में स्वतंत्रता की बात भी नहीं की – केवल धार्मिक, सांस्कृतिक स्वायत्तता चाही। फिर भी चीनियों ने बातचीत से इंकार कर दिया। इस तरह तिब्बतियों की रणनीति एक बंद गली में जाकर खत्म हो जाती हैं। आपके विचार में क्या कोई और रास्ता हो सकता है?

fue'y oekZ & आपका प्रश्न महत्वपूर्ण है। इसके बारे में कई बार मैंने सोचा भी है और तिब्बती भी इस पर सोचते हैं। उनमें कभी–कभी गहरा असंतोष देखा जाता है कि उनके प्रयास निष्फल हो रहे हैं। दलाई लामा के प्रयासों से कोई परिणाम अभी तक नहीं मिला है, ऐसा लगता है। मैं मैं समझता हूं कि दलाई लामा ने जहां तक अहिंसा को अपना असूल बनाया है वहां तक तो बिलकुल ठीक ही है। परंतु अहिंसात्मक तरीके जिस तरह से अपनाए जा रहे हैं, केवल सरकारों को एप्रोच किया जाता है। तिब्बत के बाहर या अंदर तिब्बती लोग चीन के आधिपत्य के विरूद्ध किसी तरह का अहिंसात्मक आंदोलन ठोस रूप से नहीं चलाते हैं– जिसमें उन्हें कुछ बलिदान भी करना पड़े, जिसकी खबर सारे देश में फैलेगी कि तिब्बतियों को कष्ट दिए गए, उन्हें जेल भेजा गया। इससे एक दूसरी तरह का समर्थन तिब्बतियों के प्रति उभरता है। गांधीजी ने अहिंसा के भीतर ही ऐसा शक्तिशाली आंदोलन छेड़ा था जिससे दुनिया का ध्यान आकर्षित हुआ था। ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे दुनिया को लगे कि देखो एक ये लोग हैं जो अपने देश के लिए अहिंसात्मक रूप से अपना बलिदान करने के लिए तैयार हैं। इसलिए ऐसे तरीके अपनाना जरूरी हो गया है कि दूसरे देशों की सरकारों पर निर्भर न रहकर स्वयं तिब्बतियों को लेकर आंदोलन आगे बढ़े। इसका स्वरूप क्या हो इस पर तो तिब्बती नेताओं को ही सोचना चाहिए पर मुझे लगता है कि हिंसा और अहिंसा के बीच एक बहुत बड़ी जमीन है जहां पर हर तरह की स्ट्रेटेजी और टैक्टिक्स अपनाई जानी चाहिए।

'kadj 'kj.k &मैं बहुत दिनों से देख रहा हूं कि अक्सर यह होता है कि कोई गोष्ठी आयोजित की जाती है; कुछ बड़े–बड़े लोग आते हैं, वहीं परिचित चेहरे–वहीं बातें होती हैं। कुछ महीने बाद फिर कोई गोष्ठी होती है । अब जो भारतीय सांसदों का मंच है वह भी शायद ही कभी स्वयं कुछ करता है। सांसदों के मुख्य क्रिया–कलाप दूसरे हैं। अपने स्वतंत्र राजनीतिक क्रियाकलाओं में वह तिब्बत पर शायद ही कभी चर्चा करते हैं।

fue'y oekZ & यह बात आपने बहुत ठीक उठाई। आप स्वयं ही उसे महत्व नहीं देंगे तो और लोग कैसे देंगे।

'kadj 'kj.k &कुछ पुराने साम्यवादी हैं जो तिब्बत से सहानुभूति तो रखते हैं मगर उनका कहना है कि चीनियों के खिलाफ नारे लगाने, प्रदर्शन से तिब्बत का नुकसान ही होता है। चीनी चिढ़ जाते हैं। इसलिए अच्छा यह है कि चीनियों को कह–सुनकर तैयार किया जाए और जो भी वह देना चाहें उसी को लेकर तिब्बतियों का भला किया जा सकता है। चीन के खिलाफ बोलने से कोई फायदा नहीं है। आपको यह बात कैसी लगती है?

fue'y oekZ & जो भी थोड़ा बहुत काम हो रहा है वह लोग उसे भी इस तर्क के पीछे नष्ट कर देना चाहते हैं। प्रदर्शनों का एक समाचार महत्व होता है, पर चीन उससे डर नहीं जाता। किंतु यदि उसे भी बंद कर दें तो चीन पर क्या दबाव रह जाएगा? फिर क्या उसके मन में तिब्बत के प्रति प्रेम पैदा हो जाएगा? यह कैसा तर्क है! यह कुतर्क है। चीन को तो कोई भी बातचीत दलाई लामा से ही केरनी पड़ेगी और दलाई लामा के न्यूनतम प्रस्तावों के प्रति भी चीन का क्या रुख है? वह जरा भी सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। इसलिए वामपंथियों का तर्क मेरी समझ में नहीं आता।

'kadj 'kj.k &अमरीका के बारे में तो अपने कहा पर अन्य पश्चिमी देशों में, सरकार या जनता के स्तर पर, तिब्बत के प्रति कैसा भाव है?

fue'y oekZ & पिछले वर्षों में स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। विशेषकर तब से, जब से दलाई लामा को नोबेल शांति पुरस्कार मिला है। वरना जब वे पेरिस या लंदन जाते थे तो कोई बड़ा राज्य अधिकारी उनसे नहीं मिलता था, छोटे–मोटे लोग मिलते रहते थे। राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री उनसे भेंट करने में कतराते थे क्योंकि चीन से व्यापारिक संबंध इन देशों के भी हैं। पर व्यापारिक–राजनीतिक हित ही

सौ प्रतिशत सच नहीं है। थोड़ी–सी जगह बची रहती है जहां अंतर्मन भी कुछ कहना चाहता है – जहां कहीं अत्याचार हो रहा हो या किसी निर्दोष पर निर्ममता या बर्बरता बढ़ती जा रही हो क्योंकि ये सरकारें कोई तानाशाही सरकारें तो नहीं हैं। जनता ही इन्हें चुनकर भेजती है तो जनता के प्रति भी उनका एक उत्तरदायित्व रहता है। जनता समाचार माध्यमों से घटनाओं के बारे में जानती रहती है। इसलिए अमरीका में भी राजनीतिक नेता छिपकर चीन का समर्थन क्यों न करें, खुले रूप से करने में कतराते हैं। यह एक बड़ी बात है। और यूरोप में तिब्बत की मदद करने की इच्छा अमरीका की तुलना में अधिक है।

'kdj 'kj.k &कुछ वर्षों से भारत और चीन के बीच संबंध सुधारने की चर्चा हो रही है। क्या आपको लगता है कि वास्तव में संबंध सुधर रहे हैं? दूसरी बात यह है कि कब से और क्यों भारत और चीन के संबंध बिगड़े थे? यह प्रश्न इसलिए कि कुछ लोगों का मानना है कि तिब्बती शरणार्थियों के कारण ही भारत और चीन के संबंध बिगड़े थे।

fue'y oek' & मैं इससे बिलकुल सहमत नहीं हूं। मैं समझता हूं कि भारत को चीन के प्रति एक नीति रखनी चाहिए जिसमें उसे तिब्बत के मामले को नहीं उलझाना चाहिए। तिब्बत का मामला भारत की सीमाओं का मामला है – यह एक प्रश्न है। इस पर किसी प्रकार का समर्पण नहीं होना चाहिए। इसे ध्यान में रखकर भारत चीन से संबंध सुधार सकता है तो वह तभी सुधरेगा जब उसमें इतनी शक्ति होगी, जब चीन को भी यह लगे कि उसे भारत के साथ संबंध सुधारने चाहिए। चीन के साथ भारत का सीमा–विवाद तिब्बत के प्रश्न से जुड़ा हुआ है ओर उसका स्थाई हल तब तक नहीं हो सकता जब तक दोनों मामलों को एक साथ न देखा जाए। और संबंध सुधार की किसी भी वार्ता में इस प्रश्न को कालीन के नीचे नहीं दबा देना चाहिए – जैसा भारत सरकार ने पिछले बीस–तीस वर्षों में करना शुरू कर दिया। अपनी सीमा या तिब्बत के मामले को छोड़कर कोई समझौता नहीं किया जाना चाहिए। यह सुलझ न पाए यह एक बात है पर चीन को यह न लगे कि भारत ने उसे स्वीकार कर लिया है। यह स्पष्ट रहना जरूरी है। इससे कूटनीतिक रूप से किया जाना चाहिए। फिर सांस्कृतिक आदान–प्रदान में हमारे लेखक चीन जाते हैं। उन्हें तिब्बत के बारे में वहां प्रश्न उठाना चाहिए। वहां के लेखकों तथा संस्कृति के बारे में जानकारी लेनी चाहिए। मुझे इस बात पर गहरी आपत्ति है कि हमारे लोग तिब्बत को चीन का अंदरूनी मामला मानने लगे हैं।

'kdj 'kj.k &एक प्रश्न यह है कि दलाई लामा के प्रति कुछ भारतीय मित्रों का कहना है कि उनके नेतृत्व में धर्म और राजनीति एक जगह मौजूद है। इसलिए लोकतंत्र के लिए इसका परिणाम अच्छा कैसे हो सकता है। यहां कई लोग भारत के संदर्भ में अकसर इस तरह की चर्चा करते ही रहते हैं तो क्या तिब्बत के संबंध में भी वही बात है ?

fue'y oek' & इसके बारे में मैंने संकेत किया था कि तिब्बतियों के लिए लौकिक और गैर–लौकिक संसार अलग–अलग नहीं है। देखा जाए तो भारतीयों का भी अलग–अलग नहीं है। पर हमारे तथाकथित धर्मनिरपेक्षियों ने यूरोप के सांस्कृतिक प्रभाव में 'सेक्युलर' और 'रिलीजियस' को दो खेमों में विभाजित करने की कोशिश की है। यद्यपि एक भारतीय के जीवन में ऐसा कोई भेद नहीं रहता। धार्मिक अनुष्ठान उसके लौकिक, सांसारिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। देखा जाए तो 'धर्म' का असली अर्थ यही है और इसी अर्थ में वह अंग्रेजी के 'रिलीजन' से बहुत अलग है। रिलीजन जहां एक खास तरह की निष्ठा या आस्था से संबंध रखता है, धर्म मनुष्य के जीवन के समूचे क्रिया–कलाप से जुड़ा है, इसका अर्थ व्यापक है। यह बात तिब्बती लोगों पर और भी गहराई से लागू होती है। वहां बौद्धधर्म की नींव बड़ी पुरानी और गहरी है। उसमें भिक्षु जीवन और गैर–भिक्षु जीवन के बीच उतना गहरा अंतराल नहीं है जितना कि भारत या और देशों में है – जहां बिशप, प्रीस्ट्स, पुजारी या मुल्ला हैं उनका एक अलग

संप्रदाय बना रहता है, और जो आम जन हैं उनका अलग– जो सांसारिक जीवन बिताते हैं और इन दोनों के बीच कोई गहरा संबंध नहीं रहता। तो पहले यह समझना चाहिए कि तिब्बती समाज की एक विशिष्ट बात है जो उसकी अस्मिता को बनाती है। फिर जहां धर्म लौकिक जीवन से अलग हो जाता है वहां यह आश्वासन स्वतः ही नहीं मिल जाता कि वहां तानाशाही सत्ता नहीं कायम होगी। सोवियत संघ में तो धर्म को पूरी तरह निष्कासित कर दिया गया था पर वहां घोर तानाशाही का विकास हुआ। इसलिए यह कहना कि धर्म और राजनीतिक के मिलने से ही किसी तरह की अलोकतांत्रिक व्यवस्था के जमने का खतरा रहता है – यह अपने में भी गलत विचार है।

दूसरी बात जो ज्यादा महत्वपूर्ण है वह यह कि दलाई लामा ने पिछले वर्षों में अनेक ऐसे वक्तव्य दिए हैं कि अगर मुझे फिर से तिब्बत जाने का अवसर मिले और वहां जीवन सामान्य हो जाए तो सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था वही नहीं रहेगी जो पहले थी। उन्होंने यह भी कहा है कि वहां एक लोकतांत्रिक व्यवस्था होगी। यहां निर्वासित तिब्बती सरकार की संस्थाएं भी लोकतांत्रिक तरीके से ही अपना कार्य करती हैं। यहां लोगों को यह मालूम नहीं है कि पिछले वर्षों में दलाई लामा के मिशन में रेडिकल चेंज आया है। और ये परिवर्तन कोई आधुनिकीकरण के मोह में नहीं किए हैं दलाई लामा ने। वह पश्चिमी लोकतांत्रिक संस्थाओं का अनुकरण मात्र नहीं करने जा रहे हैं। उन्होंने उन संस्थाओं का गठन करने पर जोर दिया है जो अपने धार्मिक–सांस्कृतिक चरित्र को अक्षुण्ण रखते हुए भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को विकसित कर सकें। जो शायद पुरानी व्यवस्था में उतना नहीं हो पाता था। इसीसे समझना चाहिए कि तिब्बत में जिस लोकतंत्र का विकास होगा वह भारतीयों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का विकास अपनी प्राचीन अस्मिता को खोकर किया गया है। दलाई लामा इसका उलटा करने का स्वप्न देख रहे हैं। यह अत्यंत महत्व की बात है। इसकी गंभीरता को समझने का प्रयास करना चाहिए।

—

तिब्बत का सवाल और कश्मीर एक जैसे सवाल नहीं हैं

भारतीय नीति निर्धारकों को मूर्ख बनाने की चीनी चाल

– माधुरी संथानम सोंधी

हमारी आजादी के बाद कुछ दशकों तक, जिसके तुरंत बाद तिब्बत में चीन की पहली घुसपैठ हुई और दशक भर बाद दलाई लामा भागकर भारत आए देश के लोगों में एक अहिंसक और शांतिपूर्ण देश पर चीनी हमले के खिलाफ काफी गुस्सा था और तिब्बती जनता की आजादी के लिए उनकी वैध मांगों का समर्थन करने का भारतीय सरकार पर भारी दबाव था। इस मामले में कम्युनिस्ट पार्टियों को छोड़कर एकदम सर्वसम्मति का माहौल था। और 1962 के चीनी हमले के बाद वह भावना और मजबूत हुई।

लेकिन 70 के दशक के मध्य तक भारत सरकार तिब्बत के मामले में कई वजहों से अधिक सतर्क रवैया अपनाने लगी थी। हालांकि वह अभी भी चीन के खिलाफ समय–समय पर 'तिब्बत के तुरूप' का इस्तेमाल कर रही थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से आक्साई चिन और मैकमोहन रेखा तथा तिब्बत की संप्रभुता के बारे में रवैया नरम करने के बावजूद सरकार तिब्बत के मानवाधिकारों के सवाल पर भी मुंह खोलने में कतराने लगी है। जबकि दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों के अधिकारों के प्रति वह खुलकर बोलती रही है।

अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी तिब्बत के मानवाधिकारों के प्रति अधिक सजग हुई। फिर भी हमारा रवैया इस मामले में नरम बना हुआ है। वैसे मानवाधिकारों के मामले में भारत की स्थिति आदर्श न होते हुए भी काफी ठीक–ठाक है। हमने पहले चीनी रवैये को ही दुहराने की कोशिश की कि एशिया में मानवाधिकारों का मामला यूरोप से मूलभूत रूप से अलग किस्म का है। यानी सरकार नागरिक कानूनों के उल्लंघन और उत्पीड़न का समर्थन करने लगी। लेकिन भारत का जनमत उसके साथ नहीं था और अंततः उसे अपना रवैया बदलना ही नहीं पड़ा बल्कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन भी करना पड़ा। लेकिन चीन अपने पुराने रवैये पर अड़ा हुआ है। जिसकी मिसाल बीजिंग में विश्व महिला सम्मेलन में भी देखने को मिली।

लेकिन भारत सरकार अभी भी तिब्बत के सवाल को नजरअंदाज कर रही है। यहां तक कि राजनैतिक नेता भी अपनी बोली नरम कर चुके हैं। बड़ी सफाई से यह दलील पेश की जाती है कि यह देश की एकता और अस्तित्व का सवाल है। कुछ हलकों में यह पुख्ता मान्यता है कि मानवाधिकारों, वैधानिक पहलुओं और राष्ट्रीयता के मामले में भारत–कश्मीर और चीन–तिब्बत का सवाल एक जैसा है और इन विवादों पर चीन और भारत को कोई साझा रवैया अपनाना चाहिए। यह विचार निश्चित रूप से चीन से शुरू हुआ है। लेकिन उन्होंने इस तथाकथित संयुक्त समस्या पर कोई ठोस रवैया नहीं दिखाया है। हालांकि भारत तिब्बत पर चीन के स्वायत्त अधिकार को सार्वजनिक रूप से

स्वीकार कर चुका है लेकिन चीन का कश्मीर के मामले में ऐसा कोई बयान नहीं आया। अरूणांचल प्रदेश और सिक्किम के बारे में भारतीय पक्ष पर उसके रवैये को वापस लेने की बात तो भूल ही जाइए।

चूंकि हम कोई सफलता की स्थिति में नहीं दिखते और कश्मीर के मामले में पाकिस्तान के साथ सुरक्षा और एशिया में शांतिपूर्ण व्यवस्था कायम करने के व्यापक मुद्दे जुड़े हुए हैं, जो अंततः जवाहरलाल नेहरू का दर्शन और विचार था, इसलिए यह जरूरी हो गया कि इन दोनों एकदम अलग–अलग समस्याओं पर अलग विचार रखें जिन्हें गलती से जोड़ दिया गया है।

हम पहले राष्ट्रीयता के सवाल को ही देखें। अंग्रेजों के यहां से जाने के लगभग एक सदी पहले से भारत खुद को एक देश मानने लगा था और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आंदोलन अखिल भारतीय था। यहां तक कि अंग्रेजों के आने के पहले भी भारत में राजनैतिक सत्ता भले ही विभिन्न शासकों के बीच बंटी रही हो लेकिन पूरा उपमहाद्वीप साझे समाजिक संबंधों और धर्म, संस्कृति सभ्यता और रीति–रिवाजों के जरिए जुड़ा हुआ था जो शायद ईसाई मध्य युग में भी यूरोप की परिस्थिति के एकदम विपरीत है। संस्कृत बौद्धिक और संपर्क भाषा के रूप में सक्रिय थी जैसा कि यूरोप के मामले में लैटिन रही है। कश्मीर इसी सभ्यता की एक कड़ी था। और उसकी राजनैतिक सत्ता भी बाकी भारत से जुड़ी हुई रही है।

चीन और तिब्बत के बीच ऐसा कोई संपर्क–सूत्र नहीं रहा है। पहले चीनियों ने यह दलील देने की कोशिश की कि दोनों एक ही नस्ल के लोग हैं। लेकिन विज्ञानी अनुसंधानों के बाद उन्होंने यह तर्क छोड़ दिया है। समाजशास्त्रीय, भाषाविज्ञान और संस्कृति के लिहाज से दोनों देश एकदम भिन्न रहे हैं। एक ही साझा विरासत है और वह भी एक हद तक ही– वह है बौद्व धर्म। तिब्बत में बौद्व धर्म शताब्दियों से स्थापित है। जबकि चीन से कनफ्यूशियसवाद और ताओवाद पूरी तरह अभी खत्म नहीं हुआ। यही नहीं, चीन में बौद्व धर्म को बाहरी संस्कृति का प्रभाव माना गया और उसका प्रभाव काफी हद तक कम कर दिया गया। समय–समय पर तिब्बत के बौद्व धर्म का प्रभाव चीन पर तो रहा है लेकिन कनफ्युशियस या ताओ का प्रभाव तिब्बत पर कभी नहीं रहा। चीनी और तिब्बती सभ्यता के केंद्र हमेशा अलग और भिन्न रहे हैं। तिब्बत का आकार और सभ्यता चीनी सभ्यता से कोसों दूर हैं।

कश्मीर और तिब्बत समस्याओं की बुनियाद और वैधानिकता भी एकदम अलग है। भारत में 1947 में दो देश बने जिसमें ब्रिटिश राज के सीधे नियंत्रण वाले क्षेत्रों का बंटवारा हुआ। लेकिन सैकड़ों स्वतंत्र रियासतों को उनसे अलग–अलग विलय प्रावधान करने की छूट दी गई।

भारत की ओर से सरदार पटेल ने 560 रियासतों के विलय की बातचीत सफलतापूर्वक निभाई। दो बड़ी रियासतें रह गईं। जिनमें कश्मीर की जिम्मेदारी खुद नेहरू ने अपने ऊपर ली थी। कश्मीर में हिंदू महाराजा थे जो पाकिस्तान या भारत में विलय के इच्छुक नहीं थे और शेख अब्दुल्ला की नेशनल कॉन्फ्रेंस की लोकतंत्र और लोकतांत्रिक भारत की ओर झुकने की लोकप्रिय मांग पर भी रोड़ा लगाए हुए थे।

1947 के तुरंत बाद पाकिस्तानी कबायली इलाकों के लोगों और बाद में पाकिस्तानी फौज ने कश्मीर पर धावा बोल दिया। इससे महाराज ने भारत से मदद की गुहार की और कश्मीर की स्वायत्तता की शर्त पर विलय की संधि पर हस्ताक्षर किये। भारतीय सेना घाटी में उतरी और वह पाकिस्तानियों को सफलतापूर्वक खदेड़ रही थी कि मामला राष्ट्र संघ में ले जाया गया और युद्ध विराम की घोषणा हुई। आज भी मामला वहीं पड़ा हुआ है। इस बीच भारतीय संविधान की धारा 370 के अंतर्गत कश्मीर में संपत्ति और व्यवसाय कश्मीरियों के हाथ में ही रहे और निर्वाचित लोकतांत्रिक प्रक्रिया की स्थापना हुई।

इसके विपरीत तिब्बत को 13 वें दलाई लामा ने स्वतंत्र संप्रभु देश घोषित किया जिसके पास संधि करने के भी पूर्ण अधिकार थे। यह व्यवस्था 1949 में चीनी लाल फौज के हमले तक 40 वर्षों तक बनी रही। इसके पहले वहां दलाई लामाओं के द्वारा स्वशासन बहाल था हालांकि ल्हासा में दो चीनी अंबान होते थे जो चीन के सामरिक हितों का ख्याल रखते थे और दलाई लामा तथा पंचेन लामा के चयन में हस्तक्षेप के जरिए प्रभावी बने रहने की कोशिश करते थे।

इसी मध्य युग की 'रियासती' व्यवस्था (जिसे नेहरू और पश्चिमी लोग 'अधिराज्यवाद' कहते थे) के सहारे चीनियों ने अपने को तिब्बत का शासक घोषित किया है। बीजिंग में कम्युनिस्ट राज की स्थापना के साल भर बाद ल्हासा के निमंत्रण के बिना ही उनकी फौज वहां आ पहुंची। उनका दावा था कि वे वहां तिब्बत को 'विदेशी उपनिवेशवादियों' के चंगुल से मुक्त कराने आए हैं। मानों उस समय दो अंग्रेज व्यक्तियों की मौजूदगी से ही वहां उपनिवेश बन जाता। ये व्यक्ति थे – रार्बट फोर्ड, एक वायरलैस आपरेटर और ल्हासा में ब्रिटिश वाणिज्यदूत। बहुत डराने–धमकाने के बाद बीजिंग गए तिब्बती प्रतिनिधियों को चीन से विलय–पत्र जैसी संधि पर हस्ताक्षर करने को मजबूर किया गया। इस संधि पर तिब्बती सरकार का अनुमोदन नहीं हुआ और पेकिंग में जाली मुहर लगाकर इसे वाजिब करार दिया गया।

कश्मीर और तिब्बत की मौजूदा हालत भी बिल्कुल अलग है। हालांकि ल्हासा के इर्द–गिर्द मध्य तिब्बत के हिस्से को ''स्वायत्त तिब्बत क्षेत्र'' घोषित किया गया है और बाकी दो प्रांतों आम्दो और खम को चीनी प्रांतों में मिला लिया गया है। बावजूद इसके स्वायत्तता भी पूरी तरह नहीं दी गई है। बाकी की बातें जगजाहिर हैं।

तिब्बती भाषा को दबाने, नरसंहार और उनकी सभ्यता–संस्कृति को नष्ट करने, तिब्बतियों का मुंह बंद कराने के सफल प्रयास और भौगोलिक इकाई तोड़ने–फोड़ने की कोशिशें हुई हैं। आज तिब्बत की लगभग आधी आबादी चीनियों की है जबकि 1949 में उनकी संख्या कुछ सैंकड़ा ही थी।

——

भय–मुक्त नीति की आवश्यकता

–जार्ज फर्नांडीस

अपनी बात एक अनुभव से प्रारंभ करना चाहूंगा। 1991 के दिसंबर में जब चीन के प्रधानमंत्री लिपेंग भारत यात्रा पर आगे तब का यह अनुभव है। लिपेंग की यह यात्रा विवादास्पद थी, हालांकि भारत सरकार के आमंत्रण पर ही वे आए थे।

इसके पूर्व हमारे प्रधानमंत्री चीन के दौरे पर गए थे और भारत सरकार की तरफ से भरसक प्रयास किए गए कि जब चीनी प्रधानमंत्री हमारे यहां आए तब उन्हें किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं हो। उन प्रयासों में था – शहर के एक हिस्से में बड़ी संख्या में लोगों की रोकथाम करके उसे सील करना, इस राजधानी के नागरिकों को, भारतीय नागरिकों को, सड़कों पर चलने से रोकना, कुछ लोगों को कुछ खास इलाकों में न जाने की हिदायत देना, सुरक्षा प्रहरियों का छतों पर चढ़कर देखना कि लोग अपनी खिड़की न खोलें, संसद सदस्यों के घरों के फाटकों पर चिटखनियां चढ़ा देना। इस सबसे जिन लोगों को असुविधा हुई, उनमें से मैं भी एक था। इस तरह के तमाम इंतजाम अपने आप में प्रजातांत्रिक कहलाने वाले देश में शर्मनाक हैं। हममें से कुछ लोगों को संसद तक पैदल चलना पड़ा, क्योंकि सड़कें बंद थीं, यातायात की अनुमति नहीं थी। घर से संसद तक का जो रास्ता लगभग दस मिनट का है, इसमें करीब घंटा–घंटा भर लगा क्योंकि लोगों को काफी घूमकर जाने के लिए कहा गया था।

लेकिन यहां के तिब्बती समुदाय के लोग इस तरह ठेल दिए जाने के लिए तैयार नहीं थे, उन्होंने सरकार के हरेक आदेश की अवहेलना की, वे विरोध करने के लिए सड़कों पर आए, जैसा कि कोई भी आम नागरिक कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में विरोध किया ही जाना चाहिए। वे अपने मौलिक अधिकार का उपयोग करते हुए चीनी प्रधानमंत्री से कहना चाहते थे कि वे उनकी इस यात्रा के बारे में क्या सोचते हैं, विशेषकर इस परिस्थिति में जबकि तिब्बती लोग आजादी की मांग कर रहे हैं। ऐहतियात के तौर पर उनमें से सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। सुरक्षाकर्मी जिस किसी को भी तिब्बती समझता था चाहे वे 'थाई' हो या 'बर्मी', पकड़ लिया गया। जब चीनी प्रधानमंत्री राजघाट गांधी समाधि जा रहे थे, तिब्बती वहां प्रदर्शन करना चाहते थे। उनकी पिटाई की गई और अंततः उन्होंने गुस्से में बौखलाकर चीनी राष्ट्रीय ध्वज जलाना तय किया। इसके बदले और अधिक गिरफ्तारियां हुई। प्रत्येक गिरफ्तारी अन्यायपूर्ण थी। इस सबमें कुछ भी विधिसम्मत या न्याय संगत नहीं था।

इस कारण हमें इस मुद्दे को संसद में उठाने का अवसर मिला। बड़े योजनाबद्ध तरीकों से इस मुद्दे पर होने वाली चर्चा को बंद कराने के प्रयास किए गए। साथ ही ये भी प्रयास किए गए कि किसी तरह मानवाधिकार हनन के वे मुद्दे यहां, इस देश की राजधानी में, हमारी संसद में जोर देकर न उठाए जाएं। और तब हम सर्वोच्च न्यायालय में गए और हमें दो अति महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय प्राप्त हुए। पहला, सर्वोच्च न्यायालय ने बिना किसी शर्त सभी बंदियों की रिहाई का आदेश दिया, और यह भी तय किया कि इसके लागू किए जाने में कार्यपालिका की ओर से कोई रूकावट न हो। दूसरा आदेश था –तिब्बती भारत में शरणार्थी हैं इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन फिर भी उन्हें इस देश में मानवाधिकार प्राप्त हैं। उनमें से एक अधिकार है कि वे ऐसे किसी उद्देश्य के लिए, जो उनके लिए महत्वपूर्ण है,

विरोध प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे विरोध प्रदर्शन में यदि राष्ट्रीय ध्वज जलाने की नौबत आए तो उन्हें वह राष्ट्रीय ध्वज जलाने का अधिकार है, और कार्यपालिका इस तरह के प्रदर्शन के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकेगी।

हम चीन विरोधी नहीं हैं। हम सब चाहते हैं कि चीन से हमारे संबंध प्रगाढ़ मैत्रीपूर्ण हों। चीन न केवल जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा देश है, किंतु इसका एक इतिहास है, दुनिया की अनेक प्रजाओं को जिससे ईर्ष्या हो ऐसी चीन की संस्कृति रही है, अनेक संभावनाओं से भरा वह देश है। ये संभावनाएं विश्व के हित में उजागर होंगी या वे अंततोगत्वा विश्व को कहां ले जाएंगी इस बात पर विवाद हो सकता है जिसमें हम अभी नहीं पड़ेंगे। जिम्मेदार लोगों की हैसियत से तथा संसद सदस्य की हैसियत से जब कोई तिब्बत के मसले पर अपनी चिंता प्रकट करता है तथा तिब्बत के हित की बात करता है तब चीन अनेक प्रकार की बाधाएं खड़ी करता है; चाहे वह मुद्दा संसद के भीतर या संसद के बाहर ही क्यों न उठाया गया हो। इस मुद्दे पर जो भी कुछ करने लायक है वह अपने दफ्तर के कमरों में बैठकर ही नहीं किया जा सकता। ऐसी अनेक चीजें होंगी जिसके लिए हमें अपने संसदीय कक्ष, दफ्तर तथा घरों से बाहर निकलकर करना पड़ेगा। हम लोगों के प्रतिनिधि हैं जिसके कारण हमें न केवल विशेष अवसर ही मिला है किंतु ऐसे मुद्दों पर खड़े होने की नैतिक तथा राजनैतिक सत्ता भी मिली हुई है।

क्योंकि चीन सैनिक और आर्थिक दृष्ट से ताकतवर है इस वजह से हमें सही और गलत के बीच चुनाव करने में हिचकिचाहट होती है। भारत सरकार का अपना ही रवैया देखिए। मुझे इस बात से कतई इंकार है कि सत्ता में बैठा कोई भी व्यक्ति हमारी रक्षा—आवश्यकताओं को नहीं पहचानता। अगर इन प्रश्नों से अनभिज्ञ ऐसा कोई व्यक्ति सत्ता और जिम्मेदारी के स्थान पर पहुंच भी जाता है तो हमारे पास एक कायमी सरकारी तंत्र है, प्रशासन है, जिसके पास हमारे देश की सुरक्षा की समस्या के विषय में किसी को भी योग्य रूप से शिक्षित करने की पूरी व्यवस्था है।

तिब्बत में परमाणु कचरे के बारे में ठीक ही कहा गया है। चीन जब तिब्बत में परमाणु कचरा डाले जा रहा है तो तिब्बत के लोगों के अलावा किसी और से अधिक वह हमें ही प्रभावित करने वाला है। क्योंकि जो बड़ी—बड़ी नदियां हमारे देश में आती हैं और जो भारत में बहती हुई समुद्र में मिलती हैं उनका उद्‌गम स्थल तिब्बत ही तो है। इसके ऊपर से चीन ने तिब्बत क्षेत्र में जो बड़े पैमाने पर पर्यावरण विनाश किया है, पेड़ों को काट डाला है, तिब्बत को रेगिस्तान बनाया जा रहा है — इन सब कारणों से भारतीय नदियों में 'गाद' भरती है। हमारे उत्तर—पूर्व के क्षेत्र में — आसाम में हम यह अनुभव कर ही रहे हैं। और इससे आगे नीचे बंगलादेश में नदियों में जो कुछ घटित हो रहा है, उसके कारण खानाबदोश लोग सैकड़ों की संख्या में मर रहे हैं। लेकिन किसी ने भी कभी चीन की ओर उंगली नहीं उठाई, बंगलादेशियों ने भी नहीं। वे तो ये भी नहीं कहेंगे कि ये नदियां किसी स्थान विशेष से आ रही हैं, कि जंगलों की कटाई हो रही है कि ये नदियां अपने साथ नीचे हमारे देश में 'गाद' ला रही हैं, और हम यहां हैं।

अगर हम सुरक्षा से जुड़े अन्य मुद्दों पर बात करें, जिसमें सबसे अहम मुद्दा परमाणु हथियारों का है, तो हम जानते हैं कि चीन के पास परमाणु हथियार हैं। चीन को कोई भी यह नहीं कह सका है कि इन हथियारों का क्या करें। इस मुद्दे पर चीन किसी की नहीं सुनेगा और इन परमाणु हथियारों का मुंह बॉन या कॅनबरा या टोकियो या वाषिंग्टन की तरफ नहीं रखा गया है। आज की तारीख में इन हथियारों का मुंह चीन के दक्षिण की तरफ है।

तिब्बत के बारे में कुछ भी करने में यही बाधक कारण हैं जिनकों अनिवार्य रूप से आगे कर दिया

जाता है। आगे न भी किया जाए तब भी चीन और उसके पड़ोसियों के विषय में जब भी कोई चर्चा उठती है तब दिमाग में तो ये बातें रहती ही हैं। संसद सदस्यों के बीच भी यही स्थिति है ऐसा मैंने हमेशाा पाया है।

लंदन में एक सभा में मैं बोल रहा था। ये बात 1989 की है। उसमें सभी ब्रितानी संसद–सदस्य थे। बार–बार एक ही प्रश्न मेरे समक्ष रखा जा रहा था। वह था – सुरक्षा का प्रश्न –''आप चीन से कैसे निपटेंगे?'' तब मुझे क्रिकेट टीम का सिद्धांत प्रस्तुत करना पड़ा। मैंने कहा एक टीम ग्यारह सदस्यीय है और एक टीम नौ सदस्यीय, तो उन्नीस–बीस संतुलन बराबर–सा है। यदि वे लोग एक अरब दस करोड़ हैं तो हम लोग भी लगभग नब्बे करोड़ हैं। अनुपात 11 और 9 का बैठा, तब भी हम ठीक हैं, चिंता न करें और जहां तक मैदान का सवाल है, हम उनसे बेहतर स्थिति में हैं। मैंने यह बातें कहीं, शायद उन्हें इसमें एक तरह की झुंझलाहट का आभास हुआ होगा। लेकिन ऐसा था नहीं। क्योंकि मैं मानता हूं कि चीन के विषय में एक तरह का जो डर लोगों के दिमाग में भरा जा रहा है उससे निबटे बिना हम किसी भी प्रकार की सार्थक पहल नहीं कर पाएंगे।

तिब्बतियों की दूसरी समस्या है, उनके सिर पर हाथ रखने वाला कोई नहीं है क्योंकि इस समय उनका कोई देश नहीं है। अगर उनके पास देश होता तो उनको पूछने वाले बहुत होते। इस समय जो लोग इस विश्व की विभिन्न परिषदों में उक्त मुद्दे को ले जा सकते हैं, दृढ़ता पूर्वक उठा सकते हैं, उनमें से कोई भी तिब्बतियों को अपनी पांख में लेने को तैयार नहीं है। इनमें से कोई नहीं जो कहे कि हां, यह एक मुद्दा है जिस पर संघर्ष की आवश्यकता है और हम इसे कुछ सिद्धांतों के आधार पर उठा रहे हैं।

आज की अधिकतर राजनीति, विशेषकर हमारे इस क्षेत्र के इर्द–गिर्द चलती है। आपके पास कश्मीर मुद्दा है तो धर्म एक भूमिका निभाता है, इस्लामिक राष्ट्रों का संघ एक भूमिका रखता है। मैं यहां उनको घसीटना नहीं चाहता। असल बात यह है कि विश्व–संदर्भ में धर्म की एक अहम् भूमिका राजनीति में बनी हुई है। किन्हीं कारणों से तिब्बत ऐसा नहीं कर सकता। उन्होंने धर्म को कभी हथियार नहीं बनाया। किसी ने तिब्बत को एक ऐसे मसले के रूप में नहीं देखा जहां धार्मिक एकता या भाईचारे के लिए एक धर्म विशेष उन्हें आवश्यक मददगार होकर सहायता पहुंचा सके। इसलिए जब कभी तिब्बत के भविष्य के बारे में चर्चा चलती है तो दिक्कत पैदा होती है। हमारे लिए, मेरे लिए, एक भारतीय होने के नाते, तिब्बत का अर्थ केवल स्वाधीनता संघर्ष ही नहीं है।

तिब्बत का हमारे लिए सबसे पहले माने हैं – विश्वासघात; विश्वासघात जो 1947 में किया गया, विश्वासघात जो 1950 में भी किया गया। हमें इसके लिए प्रायश्चित करना होगा। हम आज यह नहीं कह सकते कि तिब्बत तिब्बतियों का मसला है। यह समस्या हमने पैदा की है – पूरी तरह से। जो भी कोई दिल्ली पर राज करे उसे देश की सुरक्षा की चिंता करनी ही होगी, अन्यथा अधिक समय तक दिल्ली के तख्त पर नहीं बने रह सकते।

जब ब्रिटिश गए, उन्होंने कहा कि तिब्बत एक 'बफर' राज्य है, तिब्बत हमेशा सदियों से एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा; और अगर आप अपने देश को चलाना चाहते हैं तो आप देखें कि तिब्बत जैसा है वैसा ही रहे, जैसा कि हम आपके लिए छोड़ जा रहे हैं। विश्वासघात यहीं पर हुआ; याद रहे वह विश्वासघात ही था। किसके द्वारा, कैसे, क्यों – ये सारे ऐतिहासिक तथ्य हैं। हम इनमें नहीं जाएंगे।

तिब्बत कई भिन्न–भिन्न रूपों में हम पर प्रभाव डालता है; उदाहरणार्थ –पर्यावरण, हमारी नदियां, एक मानवाधिकार की भी समस्या है और मेरा ऐसा मानना है कि यदि भारत विश्व में मानवाधिकार पर

नहीं बोलता तो हम निर्माल्य ही कहे जाएंगे। यह गांधी का देश है यह हमेशा याद रखना होगा, हमें इसे भूलना कदापि स्वीकार्य नहीं होगा। हमने अपना नैतिक बल और मान्यता खो दी है। 1949 में तिब्बत के साथ जो हुआ तबसे लेकर आज तक हमारे व्यवहार के कारण एक रूप में, तथा नागरिक स्तर पर इसमें से प्रत्येक ने जो कुछ किया या नहीं किया उस कारण नागरिक के रूप में भी हमारी नैतिक सत्ता का पतन हुआ है। यह पतन दोनों स्तर पर हुआ है। गांधी के पास देश नहीं था। भारत तब तक एक गुलाम राष्ट्र था। लेकिन उनमें वह बल थाा, उनके पास नैतिक सत्ता थी जो विश्व में कहीं भी लोगों को झकझोर सकती थी। वह शक्ति विश्व के लोगों को कहीं भी प्रेरित कर सकती थी। तिब्बती प्रजा के मानवाधिकार पर हो रहे अत्याचार का मुद्दा उठाने में हमें कठिनाई शायद इसलिए हो रही है कि हमारी नैतिक सत्ता का नागरिक तथा राष्ट्र –दोनों स्तरों पर पतन हो गया है। दबी जबान से हम यह तो कह देते हैं कि हां, यह समस्या तो है ही, लेकिन इन मुद्दों को लेकर कुछ सौदा किया जा सकता है।

कोई चीन को कैसे यह कह सकता है कि आप अगर कश्मीर मुद्दे पर खास प्रकार का रूख लेंगे तो हम तिब्बत के बारे में चुप्पी साधे रहेंगे? इन दो स्थितियों में समानता देखी ही कैसे जा सकती है? क्या कश्मीर की समस्या तिब्बत की समस्या जैसी ही है? क्या इस प्रकार की बात को और इस प्रकार के तर्क को हम स्वीकार कर लेंगे? मुझे पता नहीं कि जब हमारे नीति–निर्धारक लोग चीन के साथ इस प्रकार की या किसी भी प्रकार की सौदेबाजी कर रहे थे तब उन्हें इस बात का ध्यान रहा कि नहीं कि दुनिया हमें क्या कहेगी। थियेनमन चौक में विद्यार्थियों पर ढाए गए अमानुषिक जुल्म, तिब्बत में चीन द्वारा लगातार किए जा रहे विनाश – केवल पर्यावरण एवं प्रकृति का ही नहीं बल्कि पूरी जाति का नाश – इस सबके बावजूद भी भारत खुद को भी उन्हीं के स्तर पर लाकर यह कहेगा कि अच्छा, अब हमारे लिए यह खोज लेना जरूरी है कि आप और हमारे बीच में सहजीवन कैसे हो। चीन को इस समस्त विनाश लीला के बावजूद अगर हम इस प्रकार के सौदे करेंगे तो दुनिया हमें किस नजर से देखेगी यह कभी हमारे नीति–निर्धारकों ने सोचा है?

---tk lkor g og [kkor g---

यह एक चिंताजनक तथ्य है कि इस देश में चीन के बारे में जितनी भी जानकारी और विशेषज्ञता है उसे संकलित करने का न तो कोई गंभीर प्रयास किया गया और न ही अब तक कोई उपयोग किया गया। शायद ऐसा इतिहास के प्रति हमारे उपेक्षापूर्ण रूख के कारण है जबकि चीनी नियमित और सावधानीपूर्वक इतिहास का सूक्ष्म और विस्तृत रिकार्ड रखते और तथ्य इकट्ठा करते हैं। उदहारण के लिए कू फू में रह रहा कंफ्यूशियस के वंशजों का परिवार पीढ़ियों से अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं का विस्तृत विवरण रखता है। इसमें युद्ध से लेकर अकाल तक, उपभोक्ता सामग्रियों की कीमत से लेकर उस काल में हो रहे सामाजिक–सांस्कृतिक विकास तक की जानकारी शामिल है। यह ऐतिहासिक परंपरा चीनी अधिकारियों के कार्यकलापों में भी प्रकट होती है – चाहे वे घरेलू मामले हों या विदेश नीति।

यह राष्ट्रीय हित के मामलों में नई दिल्ली द्वारा संचालित एक ढीले, बिखरे हुए रवैऐ के ठीक विपरीत है। यहां यह याद करना उपयोगी होगा कि भारत सरकार को पहली बार चीन द्वारा भारतीय सीमा के पश्चिमी भाग अक्साई चिन में अतिक्रमण का पता एक चीनी पत्रिका में ही दिए गए रेखा–मानचित्र से मिला था।

——

तिब्बत में चीन
मार्क्सवाद के दामन पर धब्बा
सुब्रत मुखर्जी

चीन ओलंपिक का लाभ उठाते हुए पूरी दुनिया को अपनी उपलब्धियां दिखाना चाहता है, जो तिब्बत में मानवाधिकारों के उसके रिकॉर्ड और उसकी नीतियों की वजह से धूमिल पड़ गई हैं। निर्वासित तिब्बतियों के विरोध की वजह से विभिन्न देशों से बीजिंग तक जाने के अपने मार्ग के दौरान ओलंपिक मशाल दौड़ में कई जगह व्यवधान आए। इससे पूरी दुनिया तिब्बतियों की दुर्दशा के बारे में जागरूक होने को मजबूर हुई है। ओलंपिक मशाल शांति और मित्रता का प्रतीक होती है, लेकिन इस बार यह चीन के अत्याचारी शासन और असहिष्णुता का आईना बन गया है।

आरोपों से घिरे चीनी नेतृत्व की हालत हेलसिंकी समझौते के बाद के पूर्व सोवियत संघ के नेताओं जैसी हो गई है, जब सोवियत संघ में मानवाधिकारों की खराब हालत की पुष्टि हो गई थी।

तिब्बत पर चीनी अधिकार का दावा लगातार दमन के द्वारा झूठ पर आधारित है। तिब्बती संस्कृति और पहचान को मिटाने का प्रयास हो रहा है। चीन के दावे के विपरीत तिब्बत एक आजाद देश रहा है और 1949–50 तक इसके बहुत से देशों से राजनयिक संबंध रहे हैं। ब्रिटेन जैसी कई महाशक्तियों द्वारा 19वीं शताब्दी में तिब्बत को बफर देश के रूप में मान्यता देना तिब्बत की प्रभुसत्ता का एक और प्रमाण है। तिब्बत साल 1911 तक तिब्बत चीनी गणतंत्र का हिस्सा बनने से इनकार करता रहा है।

माओ और चाउ ने चीनी कार्रवाई का समर्थन दो तथ्यों के आधार पर कियाः

अ– जब मंगोलिया ने चीन पर कब्जा किया तो उसने तिब्बत पर भी कब्जा किया था

ब– इसके बाद तिब्बत पर मंचूरिया का कब्जा होना यह साबित करता है कि तिब्बत चीन का एक हिस्सा था

इस तरह से तो यह भी तर्क दिया जा सकता है कि पठानों और मुगलों ने कुछ समय तक भारत पर शासन किया था, इसलिए भारत मध्य एशिया का हिस्सा है या भारत पर 200 साल तक ब्रिटिश शासन को देखते हुए इसे स्थायी रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा होना चाहिए।

साल 1951 में चीन की जनमुक्ति सेना द्वारा तिब्बत पर जबरन कब्जे के बाद चीन ने तिब्बती अधिकारियों को 17 बिंदुओं वाला एक समझौता करने को मजबूर किया। उसने तिब्बतियों को धमकी दी कि समझौते पर यदि उसने हस्ताक्षर नहीं किए तो उस पर सैन्य कार्रवाई की जाएगी।

इस समझौते के महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार थेः

1– तिब्बत के पहले से बने राजनीतिक संबंधों के मामले में चीन कोई दखल नहीं देगा,

2– दलाई लामा की स्थिति, कार्य और शक्तियां बरकरार रखी जाएंगी और

3– तिब्बती धार्मिक विश्वास में कोई दखल नहीं दिया जाएगा या बौद्ध मठों के वित्तीय मामलों को नियंत्रण में लेने का प्रयास नहीं होगा

चीनियों ने इनमें से किसी भी वायदे का सम्मान नहीं किया और स्थानीय तिब्बतियों के लगातार

दमन के अलावा उन्होंने तिब्बत में हान चीनियों के बसने को भी प्रोत्साहित किया। इसके परिणामस्वरूप आज हालत यह हो गई है कि ल्हासा में तिब्बतियों से ज्यादा हान चीनी लोग हो गए हैं।

प्रशासन, पुलिस, सेना और कारोबार एवं उद्यम सब जगह हान चीनियों का प्रभुत्व है। तिब्बती संस्कृति के संरक्षण की जगह चीनियों ने बौद्ध मठों को लूटा है और बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की गई है। तिब्बत में शिक्षा का माध्यम चीनी मंदारिन भाषा हो गई है और बौद्ध धार्मिक पुस्तकों का भी चीनी भाषा में अनुवाद ही पढ़ा जा सकता है।

पिछले 60 साल में लगातार दुष्प्रचार के बावजूद चीन आम तिब्बतियों में अपनी ईमानदारी साबित करने में सक्षम नहीं हुआ है। आम तिब्बती की नजर में अभी भी वे एक कब्जा करने वाली ताकत ही हैं। तिब्बती संस्कृति के दमन से पूरी दुनिया को धक्का लगा है। इस समय वहां जिस तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र की स्थापना की गई है वह माओ के दिमाग की उपज है। तिब्बत पर कब्जा करने के बाद चीन ने इसे दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। इसके बाद तिब्बत का अधिकांश हिस्सा चीन के चिंघाई, गांसू, सिचुआन और युन्नान प्रांतों में मिला दिया गया। यह विभाजन लोगों की मांग या जातीय व धार्मिक पहचान के आधार पर नहीं, बल्कि तिब्बत को हमेशा के लिए विकलांग बना देने की सोच के साथ ही किया गया।

अब जब दलाई इन सब क्षेत्रों को तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र में शामिल करने की मांग करते हैं तो चीनी प्रशासन उनकी बात सुनना ही नहीं चाहता। इस वजह से ही तिब्बत पूरी दुनिया का आकर्षण बना हुआ है। यह अब स्थानीय समस्या नहीं रह गया है। दलाई लामा चीन सरकार के भीतर ही तिब्बत को वास्तविक स्वायत्ता के लिए चल रहे संघर्ष के प्रतीक बन गए हैं। वह तिब्बत के लिए आज़ादी की मांग नहीं कर रहे।

चीनी राजनीतिक वर्ग के लिए यह सबसे गंभीर दुविधा है। पूरा साम्यवादी सत्ता प्रतिष्ठान अतिशय केंद्रीकरण और लोकतांत्रिक केंद्रीकरण पर आधारित है और इससे अलग होने का मतलब है सरकारी तंत्र के एक प्रमुख सिद्धांत को स्वीकार करना जिसे विकेंद्रीकरण कहते हैं। लेनिन ने साफ तौर पर केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण के आधार पर एनार्किस्ट जैसी अन्य विचारधाराओं से दूरी बनाए रखी थी।

तिब्बत के मसले को चीन जिस तरह से हल कर रहा है उससे मार्क्सवादी सिद्धांत की यह खामी सामने आ गई है कि उसमें आत्मनिर्धारण और अल्पसंख्यकों का कोई अधिकार नहीं है। मार्क्स के लिए राष्ट्रीयता नहीं, बल्कि वर्ग सबसे प्रमुख कारक था।

सर्वहारा के अंतरराष्ट्रीयवाद की उनकी दृष्टि से यह उम्मीद थी कि फ्रांस की क्रांति में हुई मनुष्यों की एकता की घोषणा को एक कदम आगे ले जाया जा सकेगा। 'दुनिया के मजदूरों एक हो' का नारा इसी विश्वास के आधार पर दिया गया है। यहां तक कि राष्ट्रीयता के सवाल और आत्मनिर्धारण के अधिकार पर मार्क्स को अपने चिर प्रतिद्वंद्वी बकुनिन का विरोध सहना पड़ा।

लेनिन इस शर्त पर आत्मनिर्धारण को लेकर ज्यादा उत्साहित थे कि यह कभी भी समाजवाद के हितों से ऊपर न हो। लेकिन जब बोल्शेविक पार्टी का गठन मजदूर वर्ग के विशिष्ट संगठन के रूप में हो गया तो आत्मनिर्धारण के अधिकार को पूरी तरह भुला दिया गया।

ऐसे में स्वायत्तता या आत्मनिर्धारण की गुंजाइश बहुत कम बचती थी। लेनिन ने व्यक्तिगत तौर पर 1923 में जार्जिया में हुए चुनावों के बाद गठित स्थानीय लोकतांत्रिक सरकार के बर्बर दमन को मंजूरी दी। स्टालिनवाद की जड़ें लेनिनवाद से ही निकली थीं।

अलग रहने के संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद स्वायत्तता के सवाल को कभी भी उच्च स्तर के केंद्रीकृत कम्युनिस्ट पार्टी ढांचे में जगह नहीं दी गई। भारत की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तिब्बत के मसले की तुलना कश्मीर से करके अपने वैचारिक भाई चीन का समर्थन करती है। इस तरह की तुलना निरर्थक है और दोनों क्षेत्रों के अलग ऐतिहासिक विकास की वजह से इस तरह की तुलना संभव ही नहीं है। कश्मीर के विलय की प्रकृति विलय को स्वीकार करने पर आधारित है। कश्मीर की स्थिति तकनीकी रूप से ट्रावनकोर, बीकानेर और भोपाल के समान ही है। इस प्रकार की व्यवस्था अभी चीनी प्रशासन के लिए अभिशाप जैसी ही है, जबकि दुनिया के अधिकांश हिस्से में सत्ता के बंटवारे और विकेंद्रित प्रणाली को स्वीकार किया जा रहा है। तिब्बत मसले के सौहार्दपूर्ण और तत्काल हल निकालने से ही पूरी दुनिया चीन को एक जिम्मेदार देश के रूप में स्वीकार करेगी न कि ओलंपिक खेलों के आयोजन की सफलता। हाल के ओलंपिक मशाल रैलियों में इसका संकेत मिल भी चुका है।

साभार, स्टेट्समैन (भारत), 27 मई, 2008 से

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं

तिब्बत से जुड़ी है हिमालय और भारत की सुरक्षा
– डा कुलदीप चंद अग्निहोत्री

इसे संयोग ही कहना चाहिए कि बीसवीं शताब्दी के मध्य में 1947 में भारत की ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार से मुक्ति हुई और चीन में माओ के नेतृत्व में कम्युनिस्ट क्रांति की सफलता के बाद वहां 1949 में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई।

स्वतंत्रता के उपरांत भारत की तिब्बत संबंधी नीतियां आत्मघाती ही नहीं बल्कि अनैतिक भी रहीं हैं। चीन में सत्ता परिवर्तन के उपरांत साम्यवादी चीन सरकार को मान्यता देने वाला भारत पहला देश बना। कूटनीतिक आधार पर मान्यता देने से पहले भारत को चाहिए था कि वह चीन के साथ तिब्बत मसला हल करता और या तो तिब्बत को भी बाहरी मंगोलिया की तरह स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में चीन से मान्यता दिलवाता, या फिर स्वयं तिब्बत के साथ भूटान जैसी संधि कर सकता था। क्योंकि उस समय की चीनी गतिविधियों और उसके प्रसारणों से लगभग स्पष्ट हो चुका था कि चीन तिब्बत पर अधिकार ही नहीं जमा रहा बल्कि इस अधिकार के बाद पूरा हिमालय ही विवादग्रस्त हो जाएगा।

यदि तिब्बत बचा रहता तो भारत अपनी सीमाओं पर विवाद में पड़ने के बजाए चीन के साथ तिब्बत के आमदो और खम की सीमाओं के बारे में बातचीत कर सकता था। परंतु तिब्बत के समाप्त हो जाने के कारण चीन अपने सीमा विवाद को भारत के दरवाजे तक ले आने में सफल रहा। मानचित्र से तिब्बत के विलुप्त हो जाने के बाद भारत को चीन का सामना करने के लिए अपनी सेनाओं को सशक्त करना चाहिए था परंतु पं. नेहरू ने न केवल सेनाओं को सशक्त करने में कोताही की, बल्कि देश को भुलावे में रखने का भी भरसक प्रयास किया। संसद को गुमराह ही नहीं किया बल्कि जिन लोगों ने चीन के संभावित आक्रमण की चेतावनी देनी चाही उन्हें युद्ध प्रेमी और शांति विरोधी तक कहा।

जिस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने चीन के साथ संधियां करके इतिहास में पहली बार लिखित रूप से तिब्बत को चीन का हिस्सा माना था, उसके लगभग पचास साल बाद 1954 में भारत सरकार ने चीन के साथ संधि करके दोनों देशों के इतिहास में पहली बार तिब्बत को चीन का अंग स्वीकार किया। इन समझौतों में भी भारत सरकार ब्रिटिश विरासत का ही पालन कर रही थी। लेकिन ताज्जुब है कि इसी समझौते में दिल्ली ने भारत के लिए तिब्बत में प्राप्त सभी सुविधाएं चीन के पक्ष में त्याग दीं। इतना ही नहीं भारतीय सम्पत्ति भी चीन को दान दे दी और तिब्बत का यह बलिदान भी उन पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया जिन्होंने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति सांस्कृतिक और आदर्शवादी नैतिक आधारों पर निर्माण करने का दंभ पाल रखा था।

चीन के लिए तिब्बत पर कब्जा तो पहला कदम था। वह हिमालय क्षेत्र के अन्य राज्यों नेपाल, वर्मा, भूटान तक में अपने तंत्र को फैलाना चाहता था। इसलिए उसने जल्दी ही इन राज्यों में एक सशक्त चीन समर्थक लाबी का निर्माण कर लिया। चीन के लिए यह सुविधाजनक भी था, क्योंकि उसके पास ऐसा करने के लिए एक वैचारिक आवरण भी था। भारत सरकार वैचारिक युद्धों के युग में भी भारतीय विचारधारा को त्यागकर अपने तटस्थ होने की पूंछ लगाए, विदूषक की मुद्रा में सभी के उपहास

का पात्र बन रही थी। चीन सरकार इस बात को भली भति समझ गई थी यदि भारत को रणभूमि में परास्त करके अपमानित किया जाए, तो पं. नेहरू की तथाकथित नैतिकता का मुलम्मा भी उतर जाएगा और हिमालयी क्षेत्र के राज्य भारत से सहायता और मार्गदर्शन की आशा रखने की बजाए चीन से भयभीत होकर उसके प्रभाव क्षेत्र में आ जाएंगे। 1962 में चीन का भारत पर आक्रमण इसी रणनीति का परिणाम था, जिसमें उसे पूरी सफलता मिली। हिमालय क्षेत्र के सभी राज्य चीन से संबंध बढ़ाने की ओर दौड़े। शत्रु का शत्रु मित्र की चाणक्य नीति के आधार पर चीन ने पाकिस्तान के साथ दोस्ती करके भारत की घेराबंदी को लगभग पूर्ण कर दिया।

तिब्बत को लेकर हमारे सामने वर्तमान स्थिति में क्या विकल्प खुले हैं? थोड़ा और विस्तार से बात करें तो प्रश्न केवल तिब्बत का ही नहीं है बल्कि पूरे हिमालयी क्षेत्र का है। जब तक चीन पड़ोसी देश बना रहेगा तब तक लद्दाख से लकर अरुणाचल प्रदेश तक संपूर्ण हिमालय सीमा विवाद ग्रस्त ही रहेगी। वैसे तो भारत सरकार ने भी अब इस सीमा को विवाद ग्रस्त मानकर और चीन के साथ सीमा विवाद पर लंबी–लंबी वार्ता करके स्वयं को चीनी चक्रव्यूह में फंसा ही लिया है। लेकिन इससे निकलने का उपाय क्या है? चीन के साथ भारत का विवाद सुलझ नहीं सकता क्योंकि चीन मूलतः विस्तारवादी देश है। भारत को हिमालय क्षेत्र में सुरक्षात्मक नहीं बल्कि आक्रामक विदेश नीति का पालन करना होगा। 1954 की □ारत और चीन की संधि केवल आठ सालों के लिए थी। 1962 में वह अपने आप स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हो गई क्योंकि दोनों देशों में से किसी ने भी इस संधि का नवीनीकरण नहीं किया। इस संधि के मृत हो जाने के कारण भारत की यह स्वीकृति कि तिब्बत चीन का हिस्सा है, अपने आप समाप्त हो जाता है। 1954 की संधि के समाप्त हो जाने के उपरांत भारत और तिब्बत के बीच 1914 की शिमला संधि बचती है। जिसके आधार पर दोनों देशों के संबंध आपस में निर्धारित किए जाने चाहिए।

जब तक तिब्बत क्षेत्र अहिंसा और शांति का क्षेत्र घोषित नहीं किया जाता, जैसा कि दलाई लामा मांग कर रहे हैं, तब तक हिमालय में शांति की संभावना नहीं हो सकती। हिमालयी क्षेत्र के देशों को साथ लेकर भारत सरकार को चीन पर यह दबाव बनाना चाहिए कि तिब्बत क्षेत्र को परमाणु रहित भी किया जाए और यहां से चीनी सेनाएं भी हटाईं जाएं। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यदि भारत सरकार अपनी चीनी नीति का निर्धारण करती है तब हिमालय भी सुरक्षित रहेगा और तिब्बत की समस्या का समाधान भी निकलेगा।

तिब्बत स्वतंत्रता के बिना अधूरी है भारत की स्वतंत्रता

भारत सरकार भारत और तिब्बत (अब चीन) के बीच सीमा निर्धारित करने के लिए मैकमोहन न रेखा को प्रमाण मानती है। चीन इस मैकमोहन रेखा को अमान्य करता है। इस का जन्म 1914 में शिमला मे हुई भारत और तिब्बत के बीच एक संधि से हुआ था। चीन ने इस वार्ता में शुरू में हिस्सा लिया, लेकिन बाद में उसने इसके निर्णयों से स्वयं को अलग कर लिया। तब भारत ने तिब्बत के साथ अपना सीमा निर्धारण कर लिया। यही सीमा रेखा मैकमोहन है। चीन का यह मानना है कि तिब्बत क्योंकि एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं था, वह चीन का ही हिस्सा था, इसलिए उसे भारत के साथ संधि करने का अधिकार ही नहीं था।

इस प्रकार भारत–तिब्बत (चीन) के बीच सीमा निर्धारक मैकमोहन रेखा की वैधता या अवैधता इसी एक बिंदु पर निर्भर करती है कि तिब्बत एक स्वतंत्र राष्ट्र था या नहीं। यदि वह स्वतंत्र राष्ट्र नहीं था तब मैकमोहन रेखा भी अवैध है। अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद पंडित नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने स्टैण्ड लिया कि तिब्बत स्वतंत्र राष्ट्र नहीं है, वह चीन का हिस्सा है, लेकिन मैकमोहन रेखा वैध है। यह स्टैण्ड अपने आप में विरोधाभासी है। मैकमोहन रेखा का अस्तित्व ही तिब्बत

के स्वतंत्र राष्ट्र के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है।

लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि 1962 के बाद भी क्या भारत सरकार ने देश के उत्तरी सीमांत की सुरक्षा में तिब्बत की आजादी की प्रासंगिकता को पहचाना है? ताज्जुब है कि भारत अब संवत् 2057 में भी तिब्बत को चीन का हिस्सा मान कर मैकमोहन रेखा के बारे में मानचित्रों के आदान प्रदान में लगा हुआ है। वह विरोधाभास के भींवर जाल में पचास साल बाद भी उलझा हुआ है।

भारत में ऐसे चीनविदों की कमी नहीं जो कि भारत और चीन के संबंधों को सुधारने के लिए ले—दे की नीति पर चलने की सलाह देते हैं। चीन तो मानता है कि साम्राज्यवादियों ने चीन से बर्मा, लाओस, वियतनाम, कोरिया (अन्नम), आसाम तथा अरुणाचल प्रदेश अलग कर दिए थे और इस सब पर उसका वैध हक बनता है। भारत, असम और अरुणाचल प्रदेश चीन को देकर मित्रता कर सकता है क्या? भारतीय संसद ने चीन के कब्जे से जिस भूमि को छुड़ाने का प्रण किया था क्या उसे भूला जा सकता है? चीन की विस्तारवादी नीति को कहां तक तुष्ट किया जा सकता है? चीन भारत को क्या देने को तैयार है? वह अधिक से अधिक सिक्किम को भारत का हिस्सा मानने को तैयार होगा? भारत में सिक्किम का विलय अंतिम रूप से हो चुका है तो क्या अब हमें चीन की मुहर की जरूरत है?

भारत की जनता ने तिब्बत का सदा साथ दिया है, उसे अपना माना है। दलाई लामा के प्रति भारतीयों की श्रद्धा इसका प्रमाण है। भारत सरकार की अपनी विवशताएं हो सकती हैं परंतु भारत की जनता तिब्बत के साथ है। भारत सरकार और भारतीय जनता के मत को एक सा नहीं मानना चाहिए। यदि जनमत प्रबल रूप से तिब्बत साथ उठेगा तो सरकार का मत भी पक्ष में हो ही जाएगा।

यूरोप और अमरीका के लिए तिब्बत का प्रश्न मानवाधिकारों का अथवा नैतिकता का प्रश्न हो सकता है या फिर समय—समय पर चीन की बाजू मरोड़ने का साधन हो सकता है। लेकिन तिब्बत का साथ देना भारत के लिए विशुद्ध राष्ट्रीय सुरक्षा के स्वार्थ की दृष्टि से भी आवश्यक है। तिब्बत जैसे राष्ट्र का बफर राज्य के रूप में बने रहना भारत के हित में है। तिब्बत की सहायता करना सही मायनों में भारत की अपनी सहायता है।

शायद एनडीए की सरकार पहली सरकार रही है जिसके रक्षामंत्री ने स्पष्ट रूप से कहा कि खतरा उधर से नहीं इधर है — अर्थात् पाकिस्तान से नहीं बल्कि चीन से है। रही बात भारत सरकार की नीति की, तो इतिहास साक्षी है, कि जनमत के आगे सरकारों के निर्णय बदलते आए हैं। आखिर नेहरू कृष्णा मेनन को हटाने के लिए विवश हुए तो यह जनमत के दबाव के कारण ही हुआ।

इसलिए तिब्बत के पक्ष में न्यायसंगत स्टैण्ड लने को भारत सरकार को विवश करने के लिए भारत में जनमत निर्माण आवश्यक है। 1962 की पराजय के बाद भारतीय जनमत के प्रबल दबाव में ही नेहरू ने तिब्बतियों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदला था। ज्यों—ज्यों प्रबुद्ध वर्ग में उत्तरी सीमांत की सुरक्षा के प्रति चेतना बढ़ेगी त्यों—त्यों सरकार तिब्बत के स्वनिर्णय के अधिकार के पक्ष में झुकेगी।

——

तिब्बत मुक्ति साधना में एक अनूठा प्रयोग

–कुलभूषण बक्शी

1997 में मेरठ में अंतर्राष्ट्रीय भारत तिब्बत सहयोग समिति की स्थापना के उपरान्त प्रत्येक वर्ष 10 मार्च को तिब्बत की राष्ट्रीय जनक्रांति की वर्षगांठ, 06 जुलाई को परम पावन दलाई लामा जी के जन्म दिन एवं 10 दिसंबर को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस समारोह के आयोजन के साथ–साथ कोर ग्रुप फॉर तिबेतन कॉज, नई दिल्ली द्वारा निर्देशित अन्य कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा था। किंतु धीरे–धीरे ऐसा प्रतीत होने लगा कि सभी आयोजन मंदिर में घंटी बजाने जैसे औपचारिकता मात्र होकर रह गए हैं। इनसे न तो तिब्बत की आजादी के समर्थन में और न जन साधारण को तिब्बत की समस्या के संबंध में जागरूकता उत्पन्न हो रही है, और न ही किसी जन आंदोलन का आधार तैयार करने में सफलता मिल रही है।

तिब्बत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग अथवा चीनी संविधान के अंतर्गत स्वायत्ता की मांग के आपसी भेद के कारण भारतीय जनमानस में जो दुविधा दृष्टिगत हो रही थी उसका उत्तर ढूंढ़ने में भी हमें कठिनाई अनुभव होने लगी थी। तब यह सोचा गया कि तिब्बत की आजादी अथवा स्ववायत्ता के पेचीदा प्रश्न को अलग रखकर तिब्बत पर चीन के कब्जे को लेकर भारतवर्ष के लिए पैदा हुई समस्याओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह विचार उठा कि तिब्बत पर चीन के कब्जे के कारण भारत की सुरक्षा पर पैदा हुए नए खतरे, पर्यावरण, भारतीय प्रमुख नदियों का बहाव चीन की ओर मोड़ने के प्रयास, तिब्बत में बड़ी मात्रा में चीनियों को बसाने एवं मानव अधिकारों के अभूतपूर्व हनन इत्यादि–इत्यादि के संबंध में निरंतर नई पीढ़ी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों में जागरूकता अभियान चलाया जाए। इसके साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में औपचारिक समारोहों का आयोजन भी चलता रहे। हमारे सहयोगियों ने यही तय किया कि तिब्बत की आजादी अथवा स्वायत्ता के प्रश्न को परम पावन दलाई लामा जी, निर्वासित तिब्बती सरकार, तिब्बती समाज एवं विश्वभर में फैले तिब्बत समर्थक समूहों के लिए छोड़ दिया जाए।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में समिति ने वर्ष 2004–2005 में मेरठ, गाजियाबाद, बागपत एवं आसपास के अन्य जनपदों में स्थित 101 महाविद्यालयों एवं विद्यालयों में तिब्बत के समर्थन में जागरूकता अभियान संचालन हेतु प्रतियोगिताएं आयोजन करने का निर्णय लिया। तदानुसार सभी प्राचार्यों से पत्रों एवं व्यक्तिगत संपर्क के परिणाम स्वरूप मेरठ जनपद के 49, गाजियाबाद के 12, बागपत के 8, बुलंदशहर के 2 एवं यमुनानगर (हरियाणा) के एक, यानी कुल मिलाकर 72 विद्यालयों एवं महाविद्यालयों ने प्रतियोगिताएं आयोजित की।

प्रतियोगिताएं भाषण, निबंध, क्विज एवं चित्रकला से संबंधित थीं और उन्हें कक्षा 10 तक के विद्यार्थियों के लिए एवं कक्षा 11 से ऊपर के विद्यार्थियों के लिए अलग–अलग आयोजित किया गया। कक्षा 10 तक के विद्यार्थियों के लिए निबंध एवं भाषण प्रतियोगिताओं का विषय थ ''तिब्बत भारत के लिए महत्वपूर्ण क्यों'' एवं 11 से ऊपर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए ''भारत की सुरक्षा के लिए तिब्बत का महत्व'' एवं दोनों श्रेणियों के लिए चित्रकला का विषय रखा गया 'आज का तिब्बत'।

क्विज प्रतियोगिताएं आयोजित करने के लिए 101 प्रश्न–उत्तर तैयार करके लगभग 5 हजार

विद्यार्थियों को उपलब्ध कराए गए और चित्र बनाने के लिए मानवाधिकारों का हनन, पर्यावरण का विनाश, जनसंख्या असंतुलन, भारत की सुरक्षा को तिब्बत में बिछाई जा रही रेलवे लाइन से खतरा आदि–आदि पर चित्र बनाने के लिए प्रेरित किया गया।

सभी प्राचार्यों को प्रतियोगिताएं विद्यालय स्तर पर आयोजित करके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वालों की सूची, निबंध एवं बनाए गए चित्रों को अंतर्राष्ट्रीय भारत तिब्बत सहयोग समिति, मेरठ को भेजने हेतु निवेदन किया गया।

सभी विद्यार्थी विजेताओं को स्मृतिचिन्ह एवं प्रमाण पत्र वितरित करने का आयोजन 10 दिसंबर, 2004 को देवनागरी इंटर कॉलेज, मेरठ में किया गया। वितरण समारोह में लगभग 1 हजार प्रतियोगिता प्रभारी, शिक्षक, प्राचार्य एवं प्रतियोगिताओं के विजेताओं ने भाग लिया। पुरस्कार वितरण निर्वासित तिब्बती सरकार, धर्मशाला में प्रधानमंत्री प्रो. सामदोंग रिनपोछे एवं डॉ. के.सी. अग्निहोत्री, सहसंयोजक, कोर ग्रुप फॉर तिब्बतन कॉज, नई दिल्ली के कर कमलों द्वारा करवाया गया। विभिन्न महाविद्यालयों और विद्यालयों में प्रतियोगिताएं आयोजित करने का क्रम तभी से निरंतर चल रहा है।

जागरूकता अभियान की दृष्टि से 23 सितंबर 2006 से 7 नवंबर 2006 तक 19 महाविद्यालयों एवं विद्यालयों में तिब्बत के विभिन्न विषयों से संबंधित फिल्में दिखाने का आयोजन निर्वासित तिब्बती सरकार, धर्मशाला के सहयोग से किया गया। बाद में यह कार्यक्रम प्रोजेक्टर के अभाव में आगे जारी नही रखा जा सका। लेकिन हमें आशा है कि सहयोग करने के इच्छुक लोगों की सहायता से यह अभियान आगे चलाया जा सकेगा। इससे नई पीढ़ी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में समिति की सहयोगी संस्था कल्याणं करोति के सहयोग से जागरूकता अभियान चलाने की प्रक्रिया को बल मिल सकता है।

उपरोक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त मेरठ एवं बागपत जनपदों के विभिन्न गांवों में समय–समय पर तिब्बत के समर्थन में उपलब्ध चित्रों की प्रदर्शनियों का भी आयोजन किया जा रहा है। हमारा यह अनुभव रहा है कि भाषा की सीमाओं से मुक्त फोटो कला हर भाषा–भाषी और निरक्षर लोगों तक भी अपना संदेश बहुत प्रभावकारी तरीके से पहुंचाती है। हमारे इस प्रयोग के आशाभरे परिणामों को देखते हुए हमने कोर ग्रुप को इस तरह के अभियान पूरे भारत में चलाने का सुझाव दिया है। आशा है कि इस तरह के प्रयासों से तिब्बती आंदोलन कहीं अधिक प्रभावकारी तरीके से आम भारतीय के मन तक पहुंच सकेगा।

श्री कुलभूषण बक्शी, एक वरिष्ठ गांधीवादी हैं और अंतरराष्ट्रीय भारत तिब्बत सहयोग समिति, मेरठ के अलावा वह समाजसेवी संस्था कल्याणं करोति, मेरठ के संचालक और कोर ग्रुप फॉर तिबेतन कॉज के राष्ट्रीय सहसंयोजक भी हैं।

––

तिब्बती चिकित्सा प्रणाली का समाजशास्त्र

डा. मनोज कुमार सिंह

तिब्बती चिकित्सा प्रणाली के विकास में भारतीय आयुर्वेद का विशेष योगदान रहा है। हिमालय एवं तिब्बत की संस्कृति एवं जनमानस से जुड़ी उस चिकित्सा विद्या का अभ्यास सदियों से हिमालयी क्षेत्रों एवं तिब्बत में हुआ। इसके विकास में बौद्ध दर्शन सहायक हुआ। हालांकि कई सदियों से इस पद्धति का धार्मिक एवं दार्शनिक आधार भारत रहा पर इसकी अभ्यास भूमि तिब्बत रही। इस विद्या ने न केवल वहां के लोगों को स्वस्थ रहने का तरीका दिया बल्कि कर्म, रहन –सहन, खान–पान एवं आचार – विचार को भी दिशा दी। यद्यपि तिब्बत पर चीनी नियंत्रण के बाद इस परम्परा को नष्ट करने की भरपूर कोशिश की गई परन्तु निर्वासन में रहने वाले तिब्बती समाज में परमपावन दलाई लामा के प्रयासों से यह प्रणाली अपने मूल और नियोजित रूप में आज भारत में जीवित है। इसके भारत में फिर से जीवित होने का एक लाभ यह हुआ है कि इसने भारत और विदेशों के लाखों लोगों को तिब्बत की जनता और उसकी राष्ट्रीय चिंताओं के साथ जोड़ने में काफी सहयोग दिया है।

frCcrh fpfdRlk i}fr D;k g : यह एक ऐसी चिकित्सा विद्या है जिसमें मस्तिश्क एवं षरीर के अंर्तसंबंधों का दर्शन एवं सिद्वांत निहित है। इसमें हमेशा बीमारी के मूल कारणों की तह तक जाने का प्रयास किया जाता है। इसे हिमालय के लदाख क्षेत्र में आमची चिकित्सा के रूप में भी जाना जाता है। समान्यतः हिमालय में प्रयोग होने वाली सभी चिकित्सा विद्याओं को सम्पूर्ण रूप से सोवा रिग पा चिकित्सा विद्या कहते हैं। इसकी तुलना भारतीय आर्युवेद, प्राचीन यूनान, फारस, पारम्परिक चीनी चिकित्सा विद्या एवं मध्यवर्ती एशिया की पारम्परिक चिकित्सा पद्वतियों से की जा सकती है। इसकी उत्पत्ति 2500 वर्ष पूर्व भारत से हुई। इसका उल्लेख भगवान बुद्व द्वारा प्रथम स्थापित ग्रंथ 'ग्युद–ब्जी' में किया गया है जिसे भारतीय विद्वान नागार्जुन, वाग्भट्ट एवं चन्द्रनन्द आदि ने परिवर्धित, प्रचारित एवं प्रसारित किया। सातवीं – आठवीं सदी में यह ग्रंथ तिब्बती भाषा में बरोचन एवं चन्द्रनन्द के द्वारा अनुवादित किया गया । कालान्तर में चीनी– पारसी व तिब्बती लोक चिकित्सा पद्वतियों को लेकर तिब्बत की सामाजिक एवं जलवायु सम्बन्धी परिस्थिति के अनुरूप महान् तिब्बती चिकित्सक युथोक–योन्टन –गोन्बो आदि के द्वारा परिवर्तित एवं परिवर्धित किया गया।

यह पद्वति स्वस्थ जीवन शैली के लिये शरीर, मन व आत्मा की पूर्णता एवं पवित्रता में विश्वास रखती है। सैद्वान्तिक रूप से यह आयुर्वेद के समान जंग– वा –इना(पंचमहाभूता) एवं नेस्पा – सुम (त्रिदोश) सिद्वान्त पर आधारित है। इस सिद्वान्त के अनुसार विश्व के समस्त जड़ एवं चेतन जंग –वा– इना (पंचमहाभूता) से निर्मित है। इस पंचमहाभूत सिद्वांत के आधार पर शरीर क्रिया विज्ञान, रोग विकृति विज्ञान तथा भैशजगुण विज्ञान स्थापित हुये हैं। आध्यात्मिकता, धर्म एवं ध्यान मानसिक स्वस्थ्य के आवश्यक साधन हैं। तिब्बती चिकित्सा एवं आयुर्वेद में सैद्वांतिक मूल अंतर यह है कि आयुर्वेद का जन्म वेद एवं ब्रह्मा माना जाते हैं जबकि तिब्बती चिकित्सा विद्या का जन्मदाता बौद्व धर्म है।

यह पद्वति मंगोलिया, भूटान, नेपाल, प्राचीन सोवियत संध के कुछ भाग तथा भारत में लोकप्रियता के साथ प्रयोग की जाती रही है। भारत के जम्मू कश्मीर के लदाख क्षेत्र से लेकर सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग क्षेत्र तथा अब सम्पूर्ण भारत में तिब्बती एवं भारतीय जनमानस के बीच वर्तमान स्वास्थ्य सेवा के सामने एक सशक्त वैकल्पिक चिकित्सा सेवा के रूप में प्रचलित है।

frCcrh fpfdRlk i)fr dk fo'o n'kZu % तिब्बती चिकित्सा विज्ञान ऐसी कला है जो कि स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिये एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह एक विज्ञान भी है क्योंकि इसके सिद्वांत में शरीर की व्यवस्थित एवं तार्किक संरचना एवं पर्यावरण के साथ उसके संबंधों का स्वरूप निहित है। यह एक कला है क्योंकि यह रोग का निदान चिकित्सक की दया पर आधारित तकनीकी की रचनात्मकता और अंर्तदृष्टि की सूक्ष्मता का उपयोग करके करती है। यह एक दर्शन है क्योंकि यह परोपकारिता, कर्म, नैतिकता के प्रमुख बौद्व सिद्वांतों पर आधारित है। चिकित्सा पद्वति के इस विज्ञान का बहुत ही गहरा सबंध धर्म एवं दर्शन के साथ है। यह बौद्व सिद्वांत के अभ्यास के साथ गहराई से संबधित है जो कि मस्तिष्क, शरीर एवं वातावरण के साथ अदृश्य संबंध पर दवाब डालती है। यह चिकित्सा विद्या दुख के प्रमुख कारणों की खोज अहम की अवधारणा में करती है जो अज्ञानता,उलझन एवं विभ्रम के रूप में जाहिर होता है। शरीर के अंदर विद्यमान तीन वृत्तियां कफ, वायु, पित्त के बीच मात्रा एवं गुणवत्ता के आधार पर असंतुलन के परिणाम के रूप में उत्पन्न कष्ट को रोग माना जाता है।

ऐसा देखा गया है कि अगर कोई तिब्बती चिकित्सक किसी रोगी को कोई औषधि प्रदान करता है, परन्तु वह दूसरे चिकित्सक के द्वारा दी गई दवा से रोगी ठीक हो जाता है। अर्थात् तिब्बती चिकित्सक एवं रोगी के बीच पूर्नजन्म एवं कर्म का सबंध है। तिब्बती चिकित्सा सिद्वांत में कहा गया है कि ब्रह्मांड पाँच तत्वों से मिलकर बना है। ये पाँच तत्व हैं – पृथ्वी, जल, आग, हवा एवं आकाश। ये पांच तत्व प्रत्येक उत्तक के गठन के लिये जिम्मेदार है। इन प्रत्येक तत्वों का विषेश प्रभाव है।

i'Foh : यह मांसपेशियों के गठन के लिये जिम्मेदार है। इससे हडडी, नाक और गंध की भावना प्रभावित होती है।

ty : यह खून के गठन के लिये जिम्म्दोर है। यह शरीर में तरल पदार्थ, जीभ और स्वाद का भाव उत्पन्न करता है।

ikod : शरीर का तापमान, आँखों का रंग और दृष्टि की भावना के लिये जिम्मेदार है।

ok;q : त्वचा, छूने और भावना के लिये जिम्मेदार है।

xxu : कान और सुनने की भावना के लिये जिम्मेदार है।

इस चिकित्सा पद्वति में रोगी का निरीक्षण/जाँच तीन प्रकार से किया जाता है । रोगी की नब्ज देखकर; रोगी को देखकर और रोगी से सवाल पूछकर। इसके अलावा जरूरत पडने पर रोगी के मूत्र की भी जाँच की जाती है।

बौद्व धर्म के प्रादुर्भाव के पहले तिब्बत में बोन धर्म का अभ्यास किया जाता था। प्राचीन तिब्बत में चिकित्सा विद्या ज्ञान के महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट अंग के रूप में माना जाता था। प्राचीन तिब्बती सामाजिक व्यवस्था में चिकित्सा विद्या एवं धार्मिक विष्वास एक दूसरे पर आश्रित थे। चिकित्सा से सबंधित व्यक्ति अधार्मिक नहीं हो सकता था और लामा अपना कार्य बिना पर्याप्त चिकित्सा विद्या के ज्ञान के धार्मिक क्रिया कर्म नहीं कर सकता था। सन 645 में तिब्बत के शासक थोन्मी सम्भोट धार्मिक एवं सांस्कृतिक साहित्य के अध्ययन के लिये भारत आये। उन्होने तिब्बती भाषा के लिये पाण्डुलिपि तैयार की और बहुत सारे भारतीय ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया जिसे कांग्युर एवं तंग्युर दो महत्वपूर्ण ग्रंथों में समाहित किया गया। आगे चलकर 22 से अधिक आयुर्वेद के क्षेत्र में किये गये कार्यों को तिब्बती ग्रंथों में शामिल किया गया। 'ग्युद–ब्जी' यानी चार तंत्र नामक ग्रंथ जो आज भी इस चिकित्सा पद्वति के अभ्यास के लिये मूल ग्रंथ माना जाता है। इस पद्वति के विकास पर चीन, मंगोलिया, बाइजेनटिना, फारस एवं पूर्ववर्ती बौद्व कालीन तिब्बती संस्कृति का विषेश प्रभाव है।

कालान्तर में बौद्व धर्म का तिब्बत में अनुसरण होन पर समान्य जन को शिक्षा देने के लिये कई मठों का अम्युदय हुआ और चिकित्सा विद्या के अभ्यास की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। 'चार तंत्र' नामक चिकित्सा शास्त्र का अविर्भाव चार खण्डों एवं 159 अध्यायों के साथ हुआ। यह ग्रन्थ आज भी तिब्बती चिकित्सा पद्वति

के अभ्यास एवं विकास के लिये प्रमुख है। इसके 159 अध्याय के अंतर्गत 5900 छंदों में चिकित्सा ज्ञान व्यक्त है। इसमें इमब्रायलॉजी, दैहिक गठन संबंधी विज्ञान, जीवन विद्या, रोग लक्षण विद्या, औषध विज्ञान, स्त्रीरोग विज्ञान, शिशुरोग विज्ञान, बुरी आत्माओं के कारण परेशानी, मानसिक आधात के धाव, विष विद्या, कायाकल्प, आदि विद्याओं की जानकारी दी गई है। इसके चार भाग इस प्रकार हैं–

1 मूल तंत्र – इसमें तिब्बती चिकित्सा पद्वति का मूल सारांश है। मूलतंत्र के प्रतीकात्मक वृक्ष के माध्यम से तिब्बती चिकित्सा के सम्पूर्ण सिद्वांत एवं व्यावहारिक अभ्यास को सहज एवं सम्यक् ढंग से समझाया गया है। स्वस्थ एवं अस्वस्थ शरीर की सम्पूर्ण संकल्पना, रोग निदान तथा रोगों के उपचार को 3 मूलों, 9 तनों, 47 शाखाओं, 224 पत्तों, 3 पुष्पों तथा 2 फलों की अवधारणा के रूप में समझाया गया है।

2 विवरणात्मक तंत्र – इसमें इमब्रायलॉजी एवं जीवतत्व का विस्तष्त वर्णन है।

3 मौखिक निर्देशन तंत्र – इसमें विषेश बीमारियों एवं उसके उपचार का वर्णन है।

4 अंतिम तंत्र – इसमें नाडी एवं पेशाब के परीक्षण के माध्यम से रोग के उपचार का विस्तृत वर्णन है।

15 वीं से 17 वीं शताब्दी के बाद तिब्बत में दो गुरूओं की वंश परम्परा के अनुकूल दो चिकित्सा परंपराओं का विकास हुआ – उत्तरी (चांग लुग) एवं दक्षिणी (सुर लुग)। इन दोनों वंशागत चिकित्सा विद्यालयों को पाँचवे दलाई लामा के प्रतिनिधि देशी सांझे ग्यात्सो (1653–1705) ने मिलाकर एक कर दिया। इसके अलावा संझे ग्यात्सो ने तिब्बती चिकित्सा पद्वति से युक्त थंका पेंटिंग को बढावा दिया। इन थंकाओं में सोवा –रिग – पा के सिद्वांत, औषधि एवं चिकित्सा विज्ञान से संबंधित पेंटिग होती है।

तिब्बत में इस पद्वति के विकास के क्रम में 20 वीं शताब्दी के शुरूआत में तेरहवें दलाई लामा जी का उल्लेखनीय योगदान रहा। 1916 में उनके प्रयास से तिब्बती समाज के आधुनिकीकरण करने के क्रम में मेन सी खंग या हाउस ऑफ मेडिसिन एवं एस्ट्रोलॉजी की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य तिब्बती चिकित्सा पद्वति एवं अस्पताल का कार्य करने के साथ – साथ तिब्बती कुलीन वर्ग को उच्च शिक्षा भी देना था।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि तिब्बत में इस चिकित्सा पद्वति की शिक्षा पारम्परिक तरीके से दी जाती थी जिसमें करीब 16 – 20 साल का समय भी लग जाता था। इसमें ज्योतिष शास्त्र का काफी महत्व था। ज्योतिष की जानकारी के बिना यह शिक्षा अधूरी मानी जाती थी।

frCcrh fpfdRlk i}fr dh Hkkjr e! i|uLFkkiuk

1949 में साम्यवादी चीन की सेना ने स्वतंत्र तिब्बत पर हमला किया और सन् 1959 के तिब्बती जन विद्रोह को कुचलने के बाद तिब्बत पर पूरा आधिपत्य कर लिया। तब परमपावन दलाई लामा जी को करीब एक लाख शरणार्थियों के साथ भारत में शरण लेनी पड़ी। भारत में दलाई लामा जी के सामने अपने लोगों को बसाने के साथ –साथ तिब्बत की सांस्कृतिक धरोहर का भी संरक्षण करने की चुनौती थी। दलाई लामा जी ने धर्मशाला में इस केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन के माध्यम से तिब्बती शरणार्थियों को पुनर्वासित करने एवं तिब्बत की अद्वितीय संस्थाओं को विकसित कर तिब्बती संस्कृति को पुर्नजीवित करने का प्रयास किया। इस श्रखंला में परमपावन दलाई लामा जी ने 23 मार्च 1961 को एक चिकित्सक एवं एक ज्योतिषी के साथ एक छोटे से पुराने घर में तिब्बती मेडिकल एण्ड एस्ट्रो इन्स्टीच्यूट की स्थापना की। इस संस्था के माध्यम से सन् 1966 में 3 चिकित्सकों की पढाई प्रथम बैच के रूप में पूरी हुई। आज इसमें अभी 376 स्टाफ कार्य कर रहें हैं। पिछले 50 वर्षों में अभी तक 50 शाखाएं और क्लिनिक खोली जा चुकी है। वर्तमान में मेडिकल का 15 वां बैच और ज्योतिष का 8 वां बैच चल रहा है। 12वीं पास कोई भी विद्यार्थी यहाँ नमांकन के लिये परीक्षा दे सकता है। इसकी पढाई पाँच साल की कर दी गई है और एक साल इंटर्नशिप के लिये होता है। 6 साल के बाद व्यक्ति को कच्छुपा की उपाधि प्रदान कर दी जाती है जो आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था के एम0 बी0 बी0 एस0 डिग्री

के बराबर है। कॉलेज एवं ज्योतिष विभाग के अलावा फार्मस्यूटिकल एवं शोध विभाग भी है जहाँ एड्स जैसी बीमारियों पर शोध किया जाता है। दवाओं की गुणवत्ता का नियंत्रण एवं वितरण फार्मास्युटिकल विभाग से किया जाता है। ज्योतिष विभाग जडी बूटियों को चुनने, तोड़ने एवं औषधि निर्माण का दिन निर्धारित भी करता है। धर्मशाला मुख्य अस्पताल में रोगियों को रहने की सुविधा उपलब्ध है। आधुनिक उपकरणों का भी उपयोग कई तरह की जाँच में किया जाता है। आजकल तिब्बेतन मेडिकल विश्वविद्यालय शुरू करने की परियोजना पर कार्य चल रहा है।

frCcrh fpfdRlk tulEidl dk l'kDr ek/;e

तिब्बती चिकित्सा की माँग देश विदेश में बढती जा रही है। पश्चिम के देशों में दबाव, मानसिक परेशानियों एवं तनाव जैसी समस्याओं के कारण तिब्बती दवा की खपत पर बढ़ रही है। लोग इस चिकित्सा सेवा की ओर बढ रहें हैं। धर्मशाला द्वारा संचालित भारत और नेपाल में पचास क्लिनिक के अलावा विदेश के कई बडे शहरों जैसे लंदन, वाशिंगटन, स्पेन, न्यूयार्क आदि शहरों में तिब्बती चिकित्सक काम करते है।

नई दिल्ली के क्लिनिक की गणना के अनुसार हर केंद्र में औसतन 150 रोगी प्रतिदिन इस सेवा का उपयोग उठाते हैं। इसके उपचार में व्यक्ति को भारी खर्च नहीं उठाना पडता। जडी बूटी की दवा होने के बावजूद इसकी लागत आधुनिक चिकित्सा की दवाओं से कम है। रोगी को उपचार के समय दवा की लागत एवं समान्य फीस देना होता है जो किसी भी वर्ग के लिये मान्य हो सकता है। इसके अलावा विशेष शिविरों के माध्यम से भी इस विद्या से उपचार किया जाता है। इससे न केवल इस पद्वति के बारे में लोगों को जानकारी मिलती है बल्कि आम लोग तिब्बत की वर्तमान समस्या से भी अवगत होते हैं। मेरठ, सालूगाडा आदि क्लिनिक के माध्यम से भारत के आम लोगों को तिब्बत की समस्या के बारे में जानकारी दी जाती है। यह आश्चर्य की बात है कि जिस चीन की सरकार ने संस्कृति क्रांति के नाम पर तिब्बत की धरोहर खासकर तिब्बती चिकित्सा व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया था वही सरकार अब जनमानस पर इसके प्रभाव को देखकर पारम्परिक चिकित्सा पद्वति के रूप में इसे संरक्षण दे रही है।

हिमालय औषधियुक्त जडी बूटियों का खजाना है। इसकी प्रासंगिकता को देखकर भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने आयुश विभाग के माध्यम से सोवा रिगपा अनुसंधान केन्द्र की स्थापना लेह – लद्दाख में की है जहाँ से जडी बुटियों की खेती और संरक्षण को बढावा दिया जा रहा हैं।

इसके अलावा 12 अप्रैल 2005 को केन्द्र सरकार द्वारा लागू राष्ट्रीय ग्रमीण स्वास्थ मिशन के तहत भारत की स्वास्थ्य सेवा में सुधार लाने के लिये आयुश को मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है। इस परियोजना में देश के विभिन्न भागों में हो रहे बहुल स्वास्थ सेवा के प्रयोग में इसे उपयुक्त स्थान दिया जा रहा है। इस संदर्भ में सोवा रिगपा के संरक्षण के लिये हिमालय क्षेत्र के कई स्वयं सेवी संगठनों को प्रोत्साहित किया गया है जिससे कि यह व्यवस्था मजबूत हो।

आज तिब्बत चिकित्सा पद्वति की उपयोगिता की दिशा में कई शोध संस्थान शोध को प्रेरित कर रहें हैं। भविष्य में विश्व समाज को एक वैकल्पिक सशक्त चिकित्सा पद्वति की सुविधा प्राप्त होगी। आज आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार परमपावन दलाई लामा जी ने धर्मशाला के एक क्लिनिक को आधार बनाकर तिब्बत चिकित्सा पद्वति के संगठन, सेवा व्यवस्था, प्रशिक्षण एवं दवा की गुणवत्ता एवं समुचित वितरण की संरचना विकसित कर इसे औपचारिक रूप दिया है उस प्रारूप को आधार बनाकर लदाख की आमची चिकित्सक के परम्परा को संरचनात्मक रूप से विकसित किया जा सकता है।

डॉ मनोज कुमार सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता
राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ मिशन
भारत सरकार, नई दिल्ली

दलाई लामा : निर्वासन में 50 साल

अहिंसा का संत सिपाही – दलाई लामा

– विजय क्रान्ति

आज जब हिंसा व्यक्ति और परिवार के स्तर से लेकर राष्ट्रीय राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के हिसाब किताब को चुकता करने की सबसे अधिक प्रचलित करेंसी बन चुकी है, तब तिब्बत के निर्वासित शासक और धर्मगुरु दलाई लामा के अहिंसक स्वतंत्रता आंदोलन की प्रभावशाली उपलब्धियों ने भगवान महावीर, भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी के अहिंसा संबंधी विचारों की प्रभावशीलता और अनंतकालिकता को एक बार फिर से स्थापित कर दिया है। दूसरी ओर फिलिस्तीनी जनता की राजनीतिक और धार्मिक आकांक्षाओं को हिंसा के रास्ते से सुलझाने में आस्था रखने वाला फिलिस्तीनी आंदोलन आज भी ठीक उसी जगह कदमताल करता हुआ दिख रहा है जहां से वह आज से पचास साल पहले शुरू हुआ था। हमारे युग के इन दो सबसे लंबे राजनीतिक आंदोलनों के संदर्भ में दलाई लामा की उस कार्यशैली का विश्लेषण जरूरी हो गया है जिसके बूते पर यह अस्त्र–शस्त्रहीन बौद्ध भिक्षु चीन जैसे शक्तिशाली और हृदयहीन शासक से टक्कर लिए हुए है।

बीसवीं शताब्दी का पहला आधा हिस्सा खत्म होते–होते दो ऐसी राजनीतिक घटनाएं घटीं जिन्होंने एशिया की राजनीति को बहुत गहरे तक प्रभावित किया। पचास साल बीतने पर आज भी ये दोनों घटनाएं अनसुलझी हैं और न केवल एशिया की बल्कि पूरी दुनिया की शांति को झकझोरने की पहले से कहीं ज्यादा आशंकाएं अपने गर्भ में समेटे हुए हैं। पहली घटना थी पश्चिमी गुट द्वारा पश्चिम एशिया के फिलिस्तीनी इलाके में इज़राइल की स्थापना करना और उसके जवाब में फिलिस्तीनी संघर्ष की शुरुआत। दूसरी घटना भी लगभग उसी समय घटी जब 1949 में माओ त्से–तुंग की कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन में कुओ मिन–तांग की सत्ता पलटकर शासन हथियाया और दो साल के भीतर चीन के दक्षिण–पश्चिम में बसे निरीह से पड़ोसी देश तिब्बत पर कब्जा जमा लिया।

पश्चिम एशिया में फिलिस्तीन की लड़ाई का नेतृत्व वहां के जुझारू नेता यासर अराफ़ात के हाथ में आया। दूसरी ओर तिब्बत की आजादी की लड़ाई का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी वहां के धार्मिक शासक दलाई लामा के ऊपर आई जो 1949–50 में तिब्बत पर पहला चीनी हमला होने के समय मात्र पंद्रह साल के थे। ऐसे संकटकाल में वयस्क होने से दो साल पहले ही उनके राजदरबारियों ने उनका राज्याभिषेक करके उन्हें एक अभूतपूर्व संकट से रूबरू होने पर मजबूर कर दिया था। तब से इन दोनों देशों की आजादी का संघर्ष समांतर चला आ रहा है –– लेकिन एक दूसरे से विपरीत शैलियों में और एकदम अलग परिणामों के साथ। इस दौर में यदि इन दोनों स्वतंत्रता आंदोलनों की प्रगति और उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो अंतर बहुत चौंकाने वाला है।

पश्चिम एशिया में इज़राइल और फिलिस्तीन के बीच चलने वाला संघर्ष जितना राजनीतिक है उससे कहीं ज्यादा धार्मिक है। इस संघर्ष में एक ओर तो पश्चिम के ईसाई देशों और दुनिया भर के यहूदियों की शह पर यहूदी देश इज़राइल सीना तान कर खड़ा है और दूसरी ओर दुनिया भर के इस्लामी देशों के अपरोक्ष और परोक्ष समर्थन के सहारे फिलिस्तीनी मुस्लिम समाज फिलिस्तीन की मुक्ति को एक इस्लामी जेहाद के रूप में लड़ रहा है। धर्म के नाम पर लड़े जा रहे इस युद्ध में पिछले साठ

साल के दौरान हिंसा के हर रूप का प्रयोग हो चुका है। इनमें इज़राइल और फिलिस्तीन का समर्थन करने वाले पड़ोसी देशों के बीच सीधे सैनिक युद्ध और इन देशों के हिस्सों पर इज़राइल के कब्जे की अति भी शामिल है। इसके अलावा पिछले पचास साल के दौरान शायद ही कोई महीना ऐसा गया होगा जब फिलिस्तीन के किसी न किसी आतंकवादी संगठन या आत्मघाती जेहादी ने बमों या हथियारों से इज़राइल के किसी शहर कस्बे में निर्दोष नागरिकों की हत्या न की हो और उसके जवाब में इज़राइली सेना ने निहत्थे फिलिस्तीनी नागरिको की बस्तियों पर बम न बरसाए हों।

हालांकि पिछले कुछ साल में अमेरिका की पहल पर इन दोनों पक्षों के बीच बातचीत शुरू कराने और हिंसा को रुकवाने की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। लेकिन इन कदमों के बावजूद न तो दोनों पक्षों के बीच अविश्वास में कोई कमी आई है, न हिंसा और जवाबी हिंसा का दौर थमा है और न युद्ध के बजाए शांति के रास्ते से कोई सर्वसम्मत और सम्मानजनक सहमति पैदा करने का वातावरण बन पाया है।

बल्कि हिंसा के रास्ते से फिलिस्तीन को मुक्ति दिलाने के पैरोकार और फिलिस्तीनियों के सबसे बड़े नेता यासर अराफ़ात अपने आखिरी दिन आते–आते अपनी ही जनता का विश्वास लगभग खो चुके थे। उनका स्थान उनका विरोधी हमास गुट महज इस आधार पर ले चुका था कि वह उनके मुकाबले कहीं ज्यादा बड़ी हिंसा में विश्वास जता रहा था। हालत यहां तक पहुंच चुकी थी कि बीमार यासर अराफात अपने ही घर में कैदी की तरह बंद हो चुके थे। इमरजेंसी की हालत में उनकी एंबुलेंस को इज़राइली बमों से बचाकर अस्पताल ले जाने के लिए उनके साथियों को इज़राइल सरकार से मन्नत चिरौरी करनी पड़ती थी। वर्तमान हालत को देखते हुए कहीं ऐसा संकेत नहीं है कि दोनों पक्षों की मौजूदा शर्तों और रणशैली के बूते पर भविष्य में कोई सर्वमान्य या सम्मानजनक हल निकल पाएगा।

दूसरी ओर तिब्बत पर सैनिक हमले और आखिरकार 1951 में तिब्बत के जबरन चीन में विलय के बाद का इतिहास कई मायनों में अलग और ज्यादा रोचक है। तिब्बत की आज़ादी के इस संघर्ष में एक ओर चीन की कम्युनिस्ट व्यवस्था है जो न तो धर्म में आस्था रखती है और न किसी ऐसे नैतिक नियम को मानती है जो चीन और उसके कम्युनिस्ट शासकों के राजनीतिक हितों के अनुकूल न हो। अपनी नीतियों और उद्देश्यों को पूरा करने में वह हिंसा के किसी भी रूप को अपनाने में घोषित आस्था रखती है। चीनी शासन की इन्हीं नीतियों का परिणाम है कि पिछले पचास साल के दौरान तिब्बत में कम से कम 12 लाख लोग किसी न किसी तरह की चीनी हिंसा के कारण अप्राकृतिक मौत का शिकार हो चुके हैं।

हिंसा में गहरी आस्था रखने वाली चीनी व्यवस्था के मुकाबले तिब्बत की हैसियत कुछ भी नहीं है। चीन की एक सौ तीस करोड़ से ज्यादा आबादी के मुकाबले तिब्बत की आबादी केवल 60 लाख थी। चीन की विशाल और आधुनिक सेना के मुकाबले तिब्बत की सेना इतनी छोटी और कमजोर थी कि 1949 के पहले हमले में ही वह लगभग पूरी तरह नष्ट हो गई। इसी तरह चीन की धर्म और नैतिकता विहीन शासन व्यवस्था के मुकाबले तिब्बत एक ऐसा धर्म प्रधान देश था जो भगवान बुद्ध के अहिंसा के संदेश में इस हद तक आस्था रखता था कि वहां जंगली जानवरों को मारने की भी मनाही थी।

यह सच है कि तिब्बत पर चीनी कब्जे के बाद वाले कुछ वर्षों में वहां की जनता ने चीनी सेना के खिलाफ जन आंदोलन चलाने के साथ–साथ छापामार युद्ध भी चलाया। 1959 में दलाई लामा द्वारा भागकर भारत में राजनीतिक शरण लेने के बाद तो इस छापामार लड़ाई में अमेरिका की खुफिया एजेंसी सी.आई.ए. ने भी उसे कुछ सहयोग दिया। लेकिन हिंसा के रास्ते से तिब्बत को आजादी दिलाने का यह विश्वास अपने आरंभिक दौर में रुख बदल गया जब दलाई लामा ने अपने स्वतंत्रता संग्राम को

महात्मा गांधी की शैली में अहिंसक और शांतिपूर्ण रखने का फैसला किया।

इसमें शक नहीं कि यासर अराफ़ात के हिंसक जेहाद के मुकाबले दलाई लामा के इस अहिंसक आंदोलन को दुनिया के अखबारों और समाचार माध्यमों में हमेशा छोटी सुर्खियां हासिल हुईं। लेकिन पिछले पचास साल के दौरान दलाई लामा के इस अहिंसक आंदोलन ने फिलिस्तीनी आंदोलन के मुकाबले जो कुछ हासिल किया है वह न केवल दलाई लामा के अनूठे व्यक्तित्व की शक्ति का परिचय देता है बल्कि भगवान महावीर, भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धांत की प्रभावशीलता और कालजेयता को भी दिखाता है। इसे समझने के लिए दलाई लामा और उनकी इस अहिंसक तिब्बत मुक्ति–साधना के अब तक के इतिहास को जानना ही काफी होगा।

पूरी दुनिया में अकेला तिब्बत ही ऐसा देश है जहां के शासक का चुनाव न तो किसी वोट से होता है, न वंश परंपरा के आधार पर और न किसी भी तरह के नामांकन के आधार पर। वहां दलाई लामा को भगवान बुद्ध के करुणामयी रूप 'अवलोकितेश्वर' का अवतार माना जाता है। परंपरा के अनुसार हर दलाई लामा अपनी मृत्यु के बाद फिर से अवतार लेता है। इस अवतारी बालक को तिब्बत की अपनी शैली में खोज कर उसे पहले तो धर्मगुरु के रूप में गद्दी पर बिठाया जाता है और फिर वयस्क होने पर देश का शासक बनाया जाता है। वर्तमान दलाई लामा तेनज़िन ग्यात्सो आम्दो प्रांत (अब चीन के चिंघाइ प्रांत का हिस्सा) के एक गरीब किसान के घर में पैदा हुए और इस परंपरा में 14वें हैं।

आधुनिक हथियारों से लैस पीपल्स लिबरेशन आर्मी चेयरमैन माओ के आदेश पर 1950 की सर्दिया शुरू होने अंत तक तिब्बत के पूर्वी प्रांत खम और आम्दो पर कब्जा कर चुकी थी। सदियों से बुद्ध के शांति संदेश को राष्ट्रीय जीवनशैली बना चुकी तिब्बत सरकार के पास इस संकट से निबटने के लिए न तो पर्याप्त सेना थी और न हथियार। अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति से दूर रहने की नीति के कारण संकट की इस घड़ी में तिब्बत खुद को अकेला और असहाय पा रहा था।

अब इस संकट से निबटने की जिम्मेदारी एक ऐसे 16 वर्षीय किशोर पर थी जिसके पास न तो अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति का अनुभव था और न एक मजबूत सेना। उसके पास था केवल भगवान बुद्ध का शांति संदेश, अपना आत्मविश्वास, अपने 60 लाख देशवासियों के हितों से प्रतिबद्धता और तिब्बतवासियों की उसके प्रति गहरी श्रद्धा और समर्पण की भावना।

आखिरकार चीन की कम्युनिस्ट सेना ने दलाई लामा की सरकार पर अपना कथित 17–सूत्री 'समझौता' थोपकर तिब्बत को चीन में मिला लिया। ऐसे में तिब्बत के लिए आशा का एकमात्र बाहरी स्रोत था उसका गुरु देश भारत। लेकिन भारत के तत्कालीन भोले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को अपने चीनी मित्रों पर इतना विश्वास था कि उन्होंने चीनी नेताओं के आश्वासनों में विश्वास करके न खुद तिब्बत सरकार को सहयोग दिया और न संयुक्त राष्ट्र संघ को कोई कदम उठाने दिया। यहां तक कि 1956 में भगवान बुद्ध के निर्वाण की 2500 वीं जयंती पर भारत यात्रा पर आए दलाई लामा को उन्होंन यह दिलासा देकर वापस भेज दिया कि चीनी नेता तिब्बत के साथ अन्याय नहीं करेंगे।

नेहरू जी को अपनी गलती का तब अहसास हुआ जब चीनी सेना ने मार्च 1959 में आजादी की मांग करने वाली तिब्बती जनता के खून से होली खेली और महीने भर में 87 हजार से ज्यादा तिब्बतियों की हत्या कर डाली। दलाई लामा को अपनी जान बचाने के लिए भारत में शरण लेनी पड़ी। इतना ही नहीं, कब्जाए हुए तिब्बत को छावनी की तरह इस्तेमाल करके चीनी सेना ने इतिहास में पहली बार भारत की सीमा पर आकर डेरा जमा लिया और 1962 में भारत पर हमला कर दिया। नेपाल, सिक्किम

और भूटान के दरवाजों पर भी चीनी सेना स्थायी रूप से आ खड़ी हुई। 'भारत–तिब्बत' सीमा से बदलकर 'भारत–चीन' सीमा पर चीन से रक्षा के लिए भारत हर पांच साल में उतना पैसा खर्च करता है जितने में भारत के हर उस क्षेत्र को स्कूल, अस्पताल और पीने का पानी हमेशा के लिए मुहैया कराया जा सकता है जहां ये सुविधाएं नहीं हैं। ऐसे में अब हालत यह है कि दलाई लामा को अपने गुरू देश भारत की सरकार पूरा सम्मान और स्नेह भी देती है और रहने, अपने लोगों को नेतृत्व देने और दुनिया भर में घूमकर अपने संघर्ष के प्रति लोगों को जाग्रत करने की स्वतंत्रता भी देती है पर राजनीतिक स्तर पर उनके साथ खड़े होने में अपना संकोच पहले की तरह कायम रखे हुए है।

अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए दलाई लामा ने पिछले 50 साल में एक लंबा रास्ता तय किया है। भारत से मिले प्यार और पुनर्वास की सहायता और मुट्ठी भर शरणार्थियों के बूते पर निर्वासित दलाई लामा ने तिब्बत की उस संस्कृति और राष्ट्रीय पहचान को फिर से जिंदा कर लिया है जिसको तिब्बत के भीतर चीन ने बेरहमी से नष्ट कर डाला है। आज वह धर्मशाला में अपनी निर्वासित सरकार चलाते हैं जिसे दूसरी सरकारों से भले ही कूटनीतिक मान्यता नहीं मिली पर शांति और भाईचारे पर आधारित दलाई लामा के राष्ट्रीय संघर्ष से अभिभूत दर्जनों सरकारें और राष्ट्रीय संसदें उन्हें अपने यहां आमंत्रित करके गौरव अनुभव करने लगी हैं। हालीवुड सितारों और पॉप संगीत के अंतर्राष्ट्रीय सितारों से लेकर दुनिया भर के मानवतावादी संगठन उनके आंदोलन को खुला समर्थन देकर गर्व अनुभव करने लगे हैं। सौ से ज्यादा देशों में उनके शांतिपूर्ण संघर्ष को सक्रिय सहयोग देने के लिए आज 300 से ज्यादा तिब्बत समर्थक संगठन खड़े हो चुके है। 2008 में बीजिंग ओलंपिक के माध्यम से चीन सरकार को दिए जाने वाले सम्मान का जिस विशाल पैमाने पर दुनिया भर में महीनों तक विरोध चला वह दलाई लामा के शांतिवादी आंदोलन की लोकप्रियता का ही प्रतीक था। उससे पहले मार्च 2008 में जिस तरह तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र से सैंकड़ों मील दूर के तिब्बती इलाकों में चीन विरोधी प्रदर्शन दो महीने तक चले उसने चीन सरकार और पूरी दुनिया को दिखा दिया कि पचास साल तक तिब्बत से बाहर रहने वाले दलाई लामा का प्रभाव उन तिब्बती पीढ़ियों में भी है जिन्होंने उन्हें कभी देखा तक नहीं।

यह देखकर कोई भी हैरान होता है कि दुनिया भर में शांति और सार्वभौमिक जिम्मेदारी का संदेश फैलाने वाला यह संत सिपाही आज दुनिया के हर लोकप्रियता संबंधी सर्वे में सबसे ऊपर आ चुका है। अमेरिकी कांग्रेस (संसद), यूरोपीय संसद और जर्मन संसद समेत कम से कम 20 संसदें तिब्बत के समर्थन में 50 से अधिक प्रस्ताव पारित कर चुकी हैं। अमेरिका, यूरोप और अन्य देशों के कम से कम 800 नगरों के मेयर चीन के कूटनीतिक गाली गलौज के बावजूद अपने नगरपालिका भवनों पर हर साल 10 मार्च को तिब्बत का झंडा लगाते हैं। लेकिन यह शांति के पुजारी दलाई लामा की ही शालीनता है कि वह शांति नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते हुए भी घोषणा करते हैं कि, ''मेरा शत्रु भी मेरी करुणा का अधिकारी है।''

दलाई लामा और यासर अराफ़ात की कार्यशैलियों और उपलब्धियों के इस अंतर को दो धर्मों के बीच अंतर के बजाए अहिंसा और हिंसा की शक्ति के अंतर के रूप में देखना शायद ज्यादा सही होगा।

——

मेरा शत्रु भी मेरी करुणा का अधिकारी है

नोबेल शांति पुरस्कार ग्रहण करते समय दलाई लामा का भाषण
(ऑस्लो, 10 दिसंबर 1989)

भाईयो और बहनो,

आज आपके बीच मुझे बहुत खुशी महसूस हो रही है। दुनिया के हर कोने से मेरे पुराने दोस्त भी यहां हैं जिनके बारे में मुझे उम्मीद है कि हम आगे भी मिलते रहेंगे। जब मैं दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में लोगों से मिलता हूं तो मुझे लगता है कि हम बुनियादी तौर पर एक हैं – एक मानव जाति। चाहे हमारे कपड़े अलग हों, या त्वचा का रंग अलग हो, या अलग–अलग भाषा बोलने वाले हों। यह तो सिर्फ सतही है, मगर हैं तो एक ही मानव जाति। यही तो हमें बांध कर रखता है और एक दूसरे को समझने में, दोस्ती और आत्मीयता बढ़ाने में मदद करता है।

यह सोचकर कि मैं आज क्या कहूंगा, मैंने निर्णय लिया कि जो साधारण कठिनाइयां, इंसानों को पेश आती हैं, उसी के सिलसिले में अपने विचार जाहिर करूंगा। क्येंकि हम एक ही भूमंडल पर रहते हैं, इसलिए हमें एक दूसरे और प्रकृति के साथ मेल–मिलाप और शांति के साथ रहना सीखना चाहिए। यह एक सपना नहीं बल्कि जरूरत है। कई तरह से हम एक दूसरे पर निर्भर हैं इसलिए एक समुदाय में अलग नहीं रह सकते और दूसरे समुदाय के बाहर क्या हो रहा है उसको भी नजरअंदाज नहीं कर सकते। मुश्किलों में एक दूसरे की मदद करनी चाहिए और अपनी खुशी में सबको शामिल करना चाहिए। मैं आपसे एक साधारण भिक्षु की तरह बात कर रहा हूं। अगर मेरी कही बात आपको महत्वपूर्ण लगे तो मैं उम्मीद करता हूं कि आप उस पर आचरण करेंगे।

आज मैं तिब्बत के लोगों की दशा और अभिलाषाओं के बारे में अपने विचार आपके साथ बांटना चाहता हूं। तिब्बती उच्च पुरस्कार के अधिकारी हैं जो पिछले चालीस सालों से विदेशी ताकतों का साहस और अनंत संकल्प से सामना कर रहे हैं। अपने बंदी देशवासियों का आजाद प्रवक्ता होने के नाते मेरा फर्ज है कि मैं उनके पक्ष में बोलूं। मैं नफरत या गुस्से में उनके लिए नहीं बोल रहा जिन्होंने मेरे लोगों को अत्यधिक कष्ट पहुंचाया और उनकी जमीन, धर और संस्कृति को नष्ट किया। वह भी इंसान हैं जो खुशी पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं और हमारी करूणा के हकदार हैं। मैं अपने देश की बुरी हालत और देशवासियों की अभिलाषाओं के बारे में बताना चाहता हूं क्योंकि आजादी की लड़ाई में हमने सच्चाई को ही तो अपनाया है।

भाईचारे की भावना को बढ़ाने में यह अहसास मदद करता है कि हम एक ही मानव जाति के हैं और दुखों से बचकर खुशी की तलाश में हैं। निरंतर छोटी होती दुनिया में यह अहसास बहुत जरूरी है। अगर हम स्वार्थी होकर दूसरों की जरूरत के बारे में न सोच कर केवल अपने अपने हित के बारे में सोचें तो हम उनका ही नहीं, अपना भी नुकसान करते हैं। इस सदी में यह तथ्य बिलकुल साफ हो चुका है। परमाणु युद्ध की शुरूआत करने का मतलब है, एक तरह की आत्महत्या। अल्पकालिक हित को पाने के लिए हवा या महासागर को दूषित करने का मतलब है जीवित रहने के आधार को नष्ट करना। लोग और देश आज एक दूसरे पर इतने निर्भर हो चुके हैं कि उनके पास सामूहिक जिम्मेदारी के अलावा कोई और रास्ता ही नहीं है।

आज हम एक विश्व परिवार की तरह हैं। देश के एक हिस्से की घटनाओं का असर सब पर पड़ता है। सिर्फ सकारात्मक ही नहीं बल्कि नकारात्मक घटनाओं का भी असर पड़ता है। असाधारण आधुनिक संचार तकनीकों के कारण दुनिया में क्या हो रहा है इसका केवल पता ही नहीं चलता बल्कि हम पर भी उन घटनाओं का असर होता है। पूर्वी अफ्रीका में भूखे बच्चों के बारे में सोचकर दुख होता है। वैसे ही खुशी का अहसास होता है कि जब बिछड़े हुए परिवार कई सालों बाद बर्लिन वॉल के टूटने से मिलते हैं। किसी दूसरे देश में जब कोई परमाणु दुर्घटना होती है तो वह केवल हमारी खेती और पशुधन को दूषित ही नहीं करती बल्कि हमारी सेहत और रोजी–रोटी को भी संकट में डाल देती है। जब किसी दूसरे महाद्वीप में विरोधी पार्टियां शांति की बात करती है तो हमारी सुरक्षा भी बढ़ जाती है।

युद्ध या शांति, प्रकृति का विनाश या संरक्षण, मानव अधिकार और लोकतांत्रिक आजादी का उल्लंघन या प्रोत्साहन, गरीबी या भौतिक संपन्नता, नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं का अभाव या उनकी मौजूदगी और विकास, मानवीय समझ की कमी या विकास, ये सब ऐसे मामले नहीं हैं जिन्हें एक दूसरे से अलग विश्लेषण कर सुलझाया जा सकता है। सच तो यह है कि वे हर स्तर पर एक दूसरे से जुड़ी हैं और इसी समझ के साथ उन्हें सुलझाने की जरूरत है।

लोग जहां भूख या सर्दी से मर रहे हों वहां युद्ध रहित शांति का खास महत्व नहीं है। इससे राजनीतिक कैदियों की पीड़ा खत्म नहीं होगी। इससे उन्हें भी राहत नहीं मिलती जिनके प्रियजन पड़ोसी देश में वनों की अंधाधुंध कटाई की वजह से आई बाढ़ में मर जाते हैं। जहां मानव अधिकारों का सम्मान हो, जहां लोगों का पेट भरा हो और जहां लोग और देश स्वतंत्र हों, वहीं पर शांति रह सकती है। दुनिया में शांति तभी रह सकती है जब मन का सुकून हो। ऊपर की गई घटनाओं की चर्चा भी एक दूसरे से जुड़ी है। युद्धकाल में, खासतौर से परमाणु युद्ध के दौरान साफ वातावरण, संपत्ति, लोकतांत्रिक व्यवस्था और आर्थिक विकास जैसी बातों का मानवता की खुशी के लिए कोई मतलब नहीं रह जाता।

मानव की प्रगति के लिए आर्थिक उन्नति जरूरी है। हमने तिब्बत में आर्थिक और तकनीकी प्रगति पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और आज हमें अपनी गलती का अहसास हो रहा है। साथ ही साथ, आध्यात्मिक विकास के बिना आर्थिक विकास की वजह से भारी परेशानियां हो सकती हैं। कुछ देशों में आंतरिक विकास पर ध्यान न देकर बाहरी दिखावे पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। मेरे ख्याल से दोनों जरूरी हैं और दोनों का साथ–साथ विकास होने से ही संतुलन बनेगा। विदेशी मेहमानों ने तिब्बतियों को हमेशा खुश मिजाज ही कहा है। हमारे राष्ट्रीय चरित्र का यह हिस्सा सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यता से बना है जिसमें मानसिक शांति को महत्व देते हुए, प्यार और करूणा को अमन पसंद जीवित प्राणी – मानव या पशु तक पहुंचाया जाता है। आंतरिक शांति ही मूल है। अगर आपके पास आंतरिक शांति है तो बाहरी मुश्किलें आपके गहरे शांति के भाव को भंग नहीं कर सकती। ऐसी मानसिक स्थिति में हालात से शांतिपूर्ण और समझदारी से जूझ सकते हैं और साथ ही साथ आंतरिक खुशी भी मिल सकती है। यह बहुत जरूरी है। चाहे आप भौतिक तौर पर कितने ही खुशहाल हों, लेकिन अगर आपके पास आंतरिक सुख नहीं है तो आप हालात की वजह से परेशान और दुखी रहेंगे।

यह जाहिर है कि यह सब बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए इन सबका और दूसरी घटनाओं का संबंध समझना जरूरी है। इन सभी मुश्किलों का हल ढूंढने के लिए सभी पहलुओं को सामने रखकर विचार करने की जरूरत है। जाहिर है कि यह आसान नहीं हैं। अगर एक परेशानी को सुलझाने में दूसरी समस्या खड़ी होती है तो उस परेशानी के हल का कोई खास महत्व नहीं रहता। हमारे पास दूसरा विकल्प नहीं है। मगर हमें दुनिया के दूसरे मसलों पर विकल्प सोचकर उनसे भिड़ना चाहिए।

किसी काम की जिम्मेदारी सिर्फ चुने हुए नेताओं पर ही नहीं बल्कि हम सब पर है। शांति की शुरूआत हमसे ही होनी चाहिए। अगर हमारे पास आंतरिक शांति है तो अपने आसपास के लोगों के साथ भी शांति के साथ रह सकते हैं। अगर हमारे समुदाय में शांति है तो पड़ोसी समुदाय के साथ भी शांति बांट सकते हैं। दूसरों के लिए प्यार और करुणा रखने का मतलब न केवल उन्हें प्यार का अहसास दिलाना है बल्कि खुद की आंतरिक शांति और खुशी के लिए भी जरूरी है। प्यार और करुणाा की भावना विकसित करने के कई तरीके हैं। कुछ लोगों के लिए धार्मिक आचरण ही सबसे अच्छा तरीका है और कुछ लोगों के लिए अधार्मिक तरीके हैं। सबसे जरूरी है कि हम एक दूसरे के लिए और प्राकृतिक वातावरण के लिए अपनी जिम्मेदारी को पूरा करें।

अपने आसपास होती उन्नति को देखकर मुझे बहुत बढ़ावा मिलता है। आर्थिक उन्नति के नाम पर जो वातावरण को नुकसान पहुंचाया गया है, उसको खत्म करने के लिए कई देशों की युवा पीढ़ी और खासतौर पर उत्तरी यूरोप में बीड़ा उठाया गया है। दुनिया भर के राजनीतिक नेताओं ने भी इस समस्या को संबोधित किया है। वर्ल्ड कमीशन ऑन एनवायरमेंट एंड डेवलपमेंट द्वारा युनाइटेड नेशंस को दी गई ब्रुंटलैंड रिपोर्ट में इसी मुद्दे के तहत कदम उठाया गया है। युद्ध से क्षतिग्रस्त क्षेत्रों में शांति और स्वाधीनता के लिए कुछ लोगों की कोशिशों की वजहसे ही रूसी फौज ने अफगानिस्तान छोड़ा और नामीबिया आजाद हुआ। अहिंसात्मक तरीकों की वजह से कुछ देशों में प्रभावशाली बदलाव आए हैं और कुछ देश जैसे फिलिपींस में मनीला, ईस्ट जर्मनी में बर्लिन लोकतांत्रिक व्यवस्था के करीब आए हैं। शीत युद्ध के युग खत्म होने पर लोगों में दुबारा आशा जगी है। ऐसे ही बदलाव लाने की चीनी लोगों की कोशिशों को पिछले जून, निर्दयता से दबा दिया गया था। मगर, उनकी कोशिशें आशा का स्रोत हैं। चीनी लोगों के आजादी और स्वाधीनता की उम्मीद को सैन्य बल नहीं बुझा सका। मैं खासतौर पर उस युवा पीढ़ी को सराहता हूं जिनको यह सिखाया गया है कि ''बंदूक की नोक से ही ताकत बढ़ती है'' पर इसके बावजूद उन्होंने अहिंसा जैसे हथियार को अपनाया है। इन सकारात्मक बदलावों से यह संदेश मिलता है कि तर्क, हिम्मत, संकल्प और आजादी की अनबुझ उम्मीद की ही जीत होगी। एक तरफ हिंसक और आक्रामक शक्तियां और दूसरी तरफ शांति, तर्क और स्वतंत्रता प्रेमी शक्तियों के बीच संघर्ष में पहले वाली बढ़त मिल रही है। यह अहसास हम तिब्बतियों को आशा से भर देता है कि एक दिन हम भी आजाद होंगे।

तिब्बत के एक सीधे साधे संत को नार्वे में मिले नोबल पुरस्कार से भी, तिब्बतियों को आशा मिली है। इसका मतलब है कि हिंसा को अपनाए बगैर ही हमारी हालत पर दुनिया की नजर गई है और हमें भुलाया नहीं गया है। इसका यह भी मतलब है कि जो संस्कार हमने अपनाए हैं, खासतौर पर हर तरह के जीवन के प्रति इज्जत, और सच्चाई के रास्ते को अपनाने को आज सब जगह मान्यता मिल रही है। यह मेरे प्रेरणास्रोत महात्मा गांधी को भी श्रद्धांजलि है, जिनके उदाहरण से बहुत लोगों को प्रेरणा मिलती है। इस साल के पुरस्कार से संकेत मिलता है कि सर्वसर्विक जिम्मेदारी बढ़ रही है। दुनिया के लोगों की इस दिलचस्पी में मेरा मन भर आता है। सिर्फ तिब्बतियों के लिए ही नहीं बल्कि सारे उत्पीड़ित लोगों के लिए आशा की किरण है।

जैसा कि आप जानते हैं कि पिछले चालीस साल से तिब्बत विदेशियों के हाथों में हैं। आज कई लाख चीनी फौज तिब्बत में तैनात है। कुछ सूत्रों के मुताबिक चीनी फौज दुगनी है। इसी दौरान, तिब्बतियों को बुनियादी मानवीय अधिकार जैसे धार्मिक अधिकार, बोलने का अधिकार, जिंदगी का अधिकार आदि नहीं मिले हैं। चीनी हमले और कब्जे की वजह से साठ लाख आबादी में से छठा हिस्सा लोग मारे जा चुके हैं। सांस्कृतिक क्रांति शुरू होने से पहले ही तिब्बत के मठ मंदिर, ऐतिहासिक इमारते नष्ट कर दी गई थीं और जो बाकी बची थीं वह सांस्कृतिक क्रांति के दौरान नष्ट हो गई। मैं इस विषय

पर ज्यादा नहीं बोलना चाहता जो पहले ही बखूबी लिखा जा चुका है। हालांकि 1979 के बाद थोड़ी सी आजादी मिली थी इन नष्ट की गई इमारतों को बनाने के लिए, लेकिन जरूरी बात यह है कि तिब्बतियों के मौलिक मानवीय अधिकारों का आज भी जानबूझकर उल्लंघन हो रहा है। पिछले कुछ महीनों में हालत और खराब हो गई है। हमारे निर्वासित समुदाय को अगर भारतीयों और भारत सरकार ने खुले दिल से शरण और सहारा न दिया होता और दुनियाभर के लोगों और संगठनों ने मदद न की होती तो हम आज बिलकुल टूट चुके होते। हमारी संस्कृति, धर्म और राष्ट्रीय पहचान अब तक खत्म हो चुकी होती। इसीलिए हमने निर्वासित होकर स्कूल और मठ मंदिर बनाए, लोगों की सेवा और सभ्यता को बचाने के लिए लोकतांत्रिक संस्थाएं बनाईं। इसी अनुभव से हम आने वाले आजाद तिब्बत में लोकतांत्रिक व्यवस्था लागू करना चाहते हैं। इसलिए निर्वासन में रहकर अपने समुदाय को आधुनिक तौर पर बढ़ाना, अपनी पहचान और संस्कृति को बचाकर रखना और अपने लाखों तिब्बतियों के लिए आशा जगाए रखने का काम कर रहे हैं।

बहुत बडे पैमाने पर चीनियों का तिब्बत में आना, सबसे बड़ी चिंता का मुद्दा है। हालांकि उनके कब्जे के पहले दशक में काफी चीनियों को पूर्वी तिब्बत के आम्दो और खम प्रांतों में भेजा गया। 1983 से चीनी सरकार ने ज्यादा तादाद में चीनियों को तिब्बत के हर हिस्से – पश्चिमी तिब्बत और मध्य तिब्बत (चीन जिसे 'तिब्बत ऑटोनामस रीजन' कहता है) भेजा। इस कारण तिब्बती अपने ही देश में अल्पसंख्यक हो गए हैं। इसके परिणामस्वरूप तिब्बत के वजूद, उसकी संस्कृति और आध्यात्मिक परपंरा को जो नुकसान पहुंचा है, उसको अभी भी रोका और बदला जा सकता है। इससे पहले कि देर हो जाए यह काम अभी होना चाहिए।

चीनियों के तिब्बत में जाने के परिणामस्वरूप विरोध और हिंसक विरोध का चक्र सितंबर 1987 में शुरू हुआ और तिब्बत की राजधानी ल्हासा में मार्शल लॉ लगा। तिब्बतियों के साथ अपनी शिकायत का इजहार करने के कारण जो सख्त सजा और क्रूर बरताव हुआ उसके बावजूद ल्हासा और तिब्बत के दूसरे हिस्सों में चल रहे विरोध प्रदर्शनों और दूसरे तरह के शांतिपूर्ण विरोधों का हमें निर्वासन में रहकर पता चल रहा है। मार्च के महीने में विरोधों के दौरान जो तिब्बती मरे और जिनको कारवास में मार दिया गया, उनकी तादाद का पता नहीं है लेकिन दो सौ से ऊपर का अनुमान है। हजारों को गिरतार करके बंदी बना लिया गया।

मैंने पांच सूत्री शांति का सुझाव इसलिए दिया था ताकि खराब होते हालात और खून खराबे से बच सकें और तिब्बत में शांति और मानवीय अधिकारों को बचा सकें। मैंने स्ट्रास्बर्ग में एक भाषण में इसी योजना पर विस्तार से बताया था। मेरे ख्याल में चीन से उचित और यथार्थ बात करने के लिए इसी योजना को आधार बनाया जा सकता है। हालांकि, अब तक चीनी नेताओं ने रचनात्मक बात करने के लिए हामी नहीं भरी है। जून में चीन के लोकतांत्रिक आंदोलन को जिस क्रूरता से दबाया गया था, उससे मुझे अंदाजा हो गया कि जब तक अंतर्राष्ट्रीय गारंटी नहीं मिलेगी तब तक तिब्बत का मामला नहीं सुलझ सकता।

मैंने पांच सूत्री प्लान में एक दूसरे मसले से जुड़ी बातों का जिक्र, इसी भाषण के पहले हिस्से में किया है। उन पांच सूत्री का संकेत हैः 1. पूरे तिब्बत को खास तौर पर आम्दो और खम के पूर्ण प्रांतों सहित, अहिंसा के क्षेत्र में बदल देना; 2. तिब्बत में चीनियों के बसने को रोकना; 3. तिब्बतियों के मानवीय अधिकार और लोकतांत्रिक आजादी को बचाना; 4. तिब्बत के प्राकृतिक वातावरण को बचाना और; 5. भविष्य में तिब्बत के दरजे और चीन के साथ आपसी दोस्त बनाकर रखने के लिए गंभीरतापूर्ण बातचीत। मैंने स्ट्रासबर्ग के भाषण में सुझाव दिया था कि तिब्बत को पूरी तरह आत्मशासित लोकतांत्रिक और राजनीतिक इकाई का दर्जा मिले।

मैं इस अवसर का लाभ उठाते हुए आपको यह बताना चाहता हूं कि तिब्बत को अहिंसा और शांति के क्षेत्र में बदलना मेरी पांच सूत्री शांति योजना का मूलभाव है। मैं यह अच्छी तरह से जानता हूं कि न सिर्फ तिब्बत में बल्कि पूरे एशिया को इससे शांति और स्थिरता मिलेगी।

मेरा एक सपना है कि पूरा तिब्बत, एक आजाद क्षेत्र बने जहां मानव जाति और प्रकृति शांति और सुव्यवस्थित तरीके से रह सकें। यह एक ऐसी जगह हो जहां दुनिया के दूसरे हिस्सों से लोग परेशानियों और दबावों को भूलकर सुकून की तलाश में आएं। तिब्बत यकीनन शांति के बढ़ावे के लिए एक रचनात्मक केंद्र बन सकता है।

प्रस्तावित अहिंसा के क्षेत्र के लिए जो मूल तत्व हैं वे इस प्रकार हैं :–

– पूरे तिब्बती पठार का विसैन्यीकरण करनाा।

– तिब्बत में तरह–तरह के नाभिकीय अस्त्रों के बनाने, परीक्षण और इकट्ठा करने पर

प्रतिबंध लगाना

–तिब्बत को दुनिया का सबसे बड़ा जैव पार्क या जीवमंडल बनाकर बचाना। प्राकृतिक संपत्ति को तरीके से इस्तेमाल करना ताकि पर्यावरण का नाश न हो और वहां ज्यादा संख्या में लोग रहते हैं वहां बिना विनाश वाले विकास की नीति अपनाना।

– नुकसान पहुंचाने वाली तकनीकों से बनने वाली चीजों के इस्तेमाल को रोकना।

– राष्ट्रीय संपत्ति और नीतियों को देश की शांति और प्रकृति को बचाने के लिए इस्तेमाल करना। जो संस्थाएं शांति और हर तरह के जीवन को बचाने में लगी हैं सिर्फ उन्हीं को तिब्बत में जगह मिल सकती है।

– मानवीय अधिकारों को बढ़ाने और बचाने के लिए जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं लगी हुई है सिर्फ उन्हीं को तिब्बत में बढ़ावा दिया जाएगा।

तिब्बत, जिसका क्षेत्र यूरोपियन समुदाय के बराबर है, अपनी विशेष सांस्कृतिक धरोहर के कारण एशिया के केंद्र में शांति का अभ्यारण्य बनने लायक है।

एशिया में बने तनाव को कम करने के लिए सोवियत यूनियन के राष्ट्रपति श्री गोर्बाचेव ने रूस चीन सीमा से सेना को हटाने का सुझाव दिया और उसको शांति क्षेत्र बनाने के लिए कहा था। पहले नेपाल की सरकार ने भी नेपाल को शांति का क्षेत्र बनाने का सुझाव दिया था। मगर उस सुझाव में सेना को हटाने की बात शामिल नहीं की गई थी।

एशिया में शांति और स्थिरता के लिए यहां की दो बड़ी ताकतों और विरोधियों को अलग रखने वाला शांति क्षेत्र बनाना जरूरी है। मंगोलिया से रूसी फौज को हटाने के राष्ट्रपति गोर्बाचेव के प्रस्ताव से, सोवियत यूनियन और चीन के बीच तनाव और लड़ाई होने के कारणों को खत्म करने का मौका मिल सकता है। दुनिया के दो बड़ी जनसंख्या वाले देश भारत और चीन को अलग रखने के लिए भी तिब्बत को शांति क्षेत्र बनाना बिल्कुल जरूरी है।

अगर अहिंसा का क्षेत्र बनेगा, तो तिब्बत से सेना और उनकी व्यवस्था को हटना पड़ेगा, और इसी वजह से तिब्बत से सटे हिमालय क्षेत्र से भी सेना और उनकी व्यवस्था को हटाना होगा। ऐसा अंतर्राष्ट्रीय समझौतों से ही हो सकता है। ऐसा करने से एशिया के सारे देश खासतौर से चीन और

भारत को फायदा होगा और उनकी सुरक्षा बढ़ेगी और साथ ही दूरदराज के इलाकों में सेना के रख–रखाव का खर्च भी कम होगा।

सेना के बिना तिब्बत ऐसा पहला देश न होगा। थोड़े समय के लिए सिनाई प्रायद्वीप का कुछ हिस्सा, इस्राइल और मिस्र को अलग करती मिस्र की भूमि भी सेना के बगैर ही थी। बेशक कोस्टारिका सबसे अच्छा उदाहरण है जहां सेना तैनात नहीं है।

तिब्बत पहला देश नहीं है जिसको जीवमंडल में बदला जाएगा। इस तरह के पार्क दुनिया में कई जगह हैं। कुछ सामरिक जगहों को शांति पार्क में बदला गया है। ऐसे दो उदाहरण हैं– कोस्टारिका–पनामा सीमा पर ला अमिसतद पार्क और कोस्टारिका निकारागुआ पर सी–ए– पाज पार्क।

जब मैं साल के शुरू में कोस्टारिका गया था, तब मैंने देखा कि कैसे एक देश बिना सेना के सफल रूप से विकसित हो सकता है और कैसे एक स्थिर लोकतंत्र शांति और प्राकृतिक वातावरण को बचाकर रख सकता है। तब मुझे यकीन हो गया कि भविष्य में तिब्बत का ये रूप एक सपना नहीं बल्कि सच्चाई बन सकती है।

मैं अपना भाषण यहीं खत्म करना चाहता हूं, उन सबको धन्यवाद देते हुए जो यहां मौजूद हैं और जो आज यहां नहीं है। तिब्बतियों की हालत के लिए आपने जो चिंता और सहारा दिया है, उस सहानुभूति ने हमें छू लिया है और हमें बढ़ावा मिला है कि हम लगातार आजादी और न्याय की लड़ाई हथियारों से नहीं बल्कि सच्चाई और हिम्मत से लड़ें।

मैं जानता हूं कि मैं तिब्बतियों की तरफ से बोल रहा हूं। अब मैं आपका शुक्रिया अदा करना चाहता हूं और यह भी कहना चाहता हूं कि तिब्बत के इस ऐतिहासिक मोड़ पर आप हमारा साथ दें। शांतिपूर्ण, दयालु और खूबसूरत दुनिया बनाने में हम अपना योगदान करना चाहते हैं। भविष्य का आजाद तिब्बत दुनिया के हर हिस्से में मदद करेगा, प्रकृति को बचाएगा और शांति स्थापित करने में भी मदद करेगा।

यही मेरी आशा और प्रार्थना है। आखिर में मैं आपको एक छोटी सी प्रार्थना में शामिल करना चाहता हूं जिससे मुझे काफी प्रेरणा और साहस मिलता है :–

जब तक आकाश है,
और जब तक प्राणीमात्र की हस्ती है,
तब तक मैं भी जुटा रहूं
दुनिया के दुख–दर्द खत्म करने के लिए।

धन्यवाद !

––

चीन और तिब्बत में सहयोग जरूरी
–दलाई लामा

9 सितंबर 1995 को परमपावन दलाई लामा द्वारा अमेरिका में

चीनी छात्रों और बुद्धिजीवियों के सामने दिया गया भाषण

आज मैं आप चीनी छात्रों व बुद्धिजीवियों से मिलकर बेहद खुश हूं। चीनी जनता के साथ मैं व्यक्तिगत तौर पर संपर्क स्थापित करने की हमेशा कोशिश करता हूं क्योंकि यह बहुत महत्वपूर्ण है। मैं जहां–कहीं भी जाता हूं, कोशिश करता हूं कि चीनी छात्रों, बुद्धिजीवियों, पत्रकारों, प्रजातांत्रिक कार्यकर्ताओं, चीनी बुद्धभक्तों व अन्य लोगों से मिलूं। कई चीनी नागरिक मुझे मिलने भारत भी आते हैं।

सदियों से चीन और तिब्बत पड़ोसी रहे हैं और भविष्य में साथ रहने के सिवाय दूसरा कोई विकल्प नहीं है। मैं हमेशा निर्वासित तिब्बतियों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करता हूं कि वे चीनी जनता से भाई–चारा बढ़ाएं व व्यक्तिगत रूप से उनसे संबंध बनाएं। मैं उन्हें यह भी समझाता हूं कि वे तिब्बती और चीनी जनता व चीनी सरकार में फर्क को समझें।

तिएन–अन–मन चौक त्रासदी के बाद बड़ी संख्या में चीनी छात्र और बुद्धिजीवी निर्वासित हुए हैं। यह एक मौका है चीनी–तिब्बती जनता को एक दूसरे को समझने का। हम लोग तिएन–अन–मन चौक आंदोलन के दौरान देख चुके हैं कि स्वतंत्रता, समानता, प्रजातंत्र व मानवाधिकार जैसे मामलों में चीनी जनता का उत्साह किसी और से कम नहीं है। मुझे इस बात ने बहुत प्रभाावित किया है कि इस आंदोलन को ऐसी युवा पीढ़ी के लोग अहिंसक तरीके से चला रहे थे जिन्हें यह पाठ पढ़ाया गया था कि ''सत्ता बंदूक की नली में से निकलती है।'' इस बात ने मेरे मन को छू लिया क्योंकि मैं भी अहिंसा में विश्वास रखता हूं।

यह सही है कि तिब्बतियों के लिए चीनी जनता से दोस्ती करना या उनके प्रति खुला दिमाग रखना आसान नहीं है। कुछ लोगों को मेरी बात पसंद भी नहीं आई। फिर भी मैं कोशिश करता हूं कि चीनी जनता के साथ संबंध बढ़ें। यह भी संभव है कि कई चीनी मित्रों को भी ऐसा ही लगे क्योंकि चीनी सरकार हमेशा हमें 'प्रतिक्रियावादी डाकू' 'गुलामों के मालिक' व 'अलगाववादी' कहती रही है। लेकिन फिर भी कई वर्षों से हम दोनों समुदायों के मध्य आपसी कोशिशों के चलते संबंधों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। बाहर के देशों जैसे–अमेरिका, कनाडा, यूरोप, आस्ट्रेलिया व जापान में रहने वाले चीनियों और तिब्बतियों के बीच परिचय बढ़ रहा है। चीन के मानवाधिकार कार्यकर्ता वाई जिंगशेंग और दूसरों ने चीनी सरकार से जोर देकर कहा है कि तिब्बत की जनता का आदर किया जाए और उनके बुनियादी मानवाधिकारों व स्वशासन की बहाली हो। विदेश में रहने वाले चीनी बुद्धिजीवियों द्वारा चीन संघीय राज्य के नए संविधान पर चर्चाएं हुई हैं जिसमें तिब्बती गणराज्य को सहयोगी संघ राज्य का दर्जा प्राप्त हो। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि आज हम यहां 'इंटरनेशनल कैंपेन फार टिबेट' और 'ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी चायना फाउंडेशन' के तत्वावधान में बातचीत कर रहे हैं और हमारे चीनी मित्र इसमें भाग लेने आए हैं।

मेरे विश्वास का बुनियादी आधार है कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए चीनी और तिब्बती जनता के बीच व्यक्तिगत संवाद आवश्यक है। मैं पिछले 15 वर्षों से प्रयत्नशील हूं कि चीनी सरकार के साथ कोई समझौता हो। हजारों साल से तिब्बत एक स्वतंत्र देश के रूप में रहा है और मुझे पूरा विश्वास है कि तिब्बती जनता स्वतंत्रता का ही चुनाव करेगी। जैसे भी हो यह तो एक राजनीतिक सत्य है कि तिब्बत चीनी शासन के अधीन है। मेरी कोशिश है कि इस समस्या का हल कोई बीच का रास्ता हो जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो। मेरी बातों का जवाब चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सर्वेसर्वा देंगसियाओ पिंग ने यह कह कर दिया कि स्वतंत्रता को छोड़कर हम किसी भी विषय पर बात करने को तैयार हैं। पिछले 15 सालों में मैंने छह सरकारी प्रतिनिधिमंडल चीन व तिब्बत भेजे। इसके अलावा मेरे व्यक्तिगत दूत दस बार चीन गए। इसके साथ ही कई प्रस्ताव मैंने चीनी सरकार के सामने रखे। ये तमाम प्रकार के हमारे प्रयत्न हमारी गंभीरता व सच्चाई को प्रकट करते हैं।

दुर्भाग्य से चीनी सरकार ने एक भी प्रस्ताव का जवाब नहीं दिया। चीनी सरकार की सबसे बड़ी कमजोरी है कि वह तिब्बती संस्कृति, धर्म व परंपराओं का आदर नहीं करती और तिब्बत की स्वतंत्रता से इनकार करती है। वह दुनिया में तिब्बत का एक ऐसा चित्र पेश करती है कि हम तिब्बती बहुत बेरहम वह पिछड़े हुए हैं। तथा लाखों तिब्बतियों के दमन में हम बाहरी लोगों का हाथ है। उसकी तमाम कार्रवाई तिब्बत की जनता को और भड़काती है। चीनी सरकार की नीति का उद्देश्य तिब्बत को तोड़ देना है। इसका एक उदाहरण है पंचेन लामा की पहचान की विवादास्पद घोषणा।

यह तो सच है कि चीनी हमले के बाद ही तिब्बती मामले का अंतर्राष्ट्रीयकरण हुआ। 1959में चीन द्वारा तिब्बत को कब्जे में लेने के बाद तो हजारों लोग तिब्बत से भाग कर शरणार्थी बन दुनिया के कोने–कोनेमें रह रहे हैं। 1978 से 1987 तक मैंने कोशिश की कि इस मामले पर बिना बाहरी हस्तक्षेप के कोई समझौता हो लेकिन दुर्भाग्य कि चीनी सरकार ने मेरी तमाम कोशिशों को नजरअंदाज कर दिया।

पिछले दो वर्षों में चीन ने समझौते के बारे में प्राथमिक शर्तें रखीं। पहली कि हम न केवल स्वतंत्र तिब्बत की मांग छोड़ें बल्कि यह भी मानें कि तिब्बत ऐतिहासिक रूप से चीन का अंग रहा है। जैसे भी हो, हमारा इतिहास देखें तो पता चलता है कि तिब्बत चीन का कभी अंग नहीं रहा। वह एक स्वतंत्र देश था। चीनी सरकार इस ऐतिहासिक सत्यता की अलग व्याख्या करती है और हम पर दबाव डालती है कि हम इस व्याख्या को मानें। मैं प्रस्ताव रखता हूं कि हमारी अलग ऐतिहासिक व्याख्या को सुरक्षित रखा जाए। खुद देंग सियाओ पिंग भी कहते हैं कि ''आगे की ओर देखो''। इतिहास कभी बदलता नहीं लेकिन भविष्य बदला जा सकता है।

हाल ही में अमेरिका और चीन के बीच तनाव पैदा हुआ। मेरा कोई इरादा इसका लाभ उठाने का नहीं है बल्कि मैं अमेरिका से कहना चाहूंगा कि वह चीन के साथ संबंधों को बढ़ाए। क्योंकि इन दोनों देशों में सुधरे संबंधों से न केवल उन्हें फायदा होगा बल्कि तिब्बत समस्या के हल में भी सहायता मिलेगी। मैं चीनी नेताओं से कहना चाहूंगा कि ताकत व दमन से चीन की छवि दुनिया में बढ़ने वाली नहीं है।

आज जब दुनिया 21 वीं सदी के मुहाने पर खड़ी है तो अन्य देशों की तरह चीन भी एक महत्वपूर्ण पड़ाव पर है। वह तेजी से एक आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक शक्ति बन रहा है। वहां के समाज में भीतरी बदलाव हो रहे हैं। वहां के नेताओं को ऐसी नई पीढ़ी का सामना करना पड़ रहा है जो स्वतंत्रता, प्रजातंत्र, समानता व मानवाधिकार की मांग कर रही है। तिब्बत समस्या का हल चीन में हो रहे परिवर्तन से संभव है। इससे न केवल समस्या का हल होगा बल्कि चीन में भी प्रजातंत्र की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।

यह तय है कि अब वहां वर्तमान एकदलीय शासन व्यवस्था के स्थान पर एक अधिक खुली और लोकतांत्रिक व्यवस्था आएगी। प्रश्न केवल इतना है कि यह बदलाव कैसे और कब होगा। यह भी देखना है कि यह बदलाव शांतिपूर्ण तरीके से होगा या कि सख्त तरीके से।

भविष्य में जब चीन की एक दलीय व्यवस्था में बदलाव आएंगे तो उसे अधिकाधिक खुलेपन, और तिब्बत समस्या का सामना करना पड़ेगा। यदि यह समस्या उचित ढंग से हल हो जाती है तो न केवल यह चीन में होने वाले बदलाव में सहायक होगा बल्कि यह तिब्बत के साथ–साथ चीन में लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भी सहायक सिद्ध होगा। यदि यह मामला उचित ढंग से नहीं सुलझता तो चीन में होने वाला बदलाव खतरे में पड़ सकता है।

अगर तिब्बत के शांतिपूर्ण आंदोलन को ताकत से कुचलने का फैसला किया जाता है तो यह लोकतंत्र विरोधी शक्तियों के हाथ में खेलना होगा। इससे केवल इन शक्तियों की स्थिति मजबूत होगी बल्कि चीन में एक सहज परिवर्तन की प्रक्रिया को भी नुकसान पहुंचेगा।

तिब्बत के प्रति जो कठोर नीति चीन ने लगातार अपनाई हुई है उससे समस्या सुलझने के बजाय और उलझ सकती है जिसे हल करना फिर और दुष्कर हो जाएगा। इससे तिब्बतियों की सहन शक्ति भी कम होगी और हिंसा का खतरा भी बढ़ेगा। यह दोनों देशों के हित में नहीं होगा।

हम कोशिश कर रहे हैं कि यह समस्या आपसी समझ व समझौते से हल हो जाए। समस्या के समाधान के लिए सहजता की जरूरत है न कि लड़ाई की। किन्हीं भी परिस्थितियों में तिब्बती आंदोलन को अहिंसक रखा जाना चाहिए। हम ऐसे संबंध की तालश में हैं जिसमें चीन और तिब्बत के बीच आपसी आदर मान हो और दोनों पक्षों के हितों को कायम रखा जा सके। हम चीन के साथ लंबे समय तक चलने वाले संबंध चाहते हैं। चीन के प्रति हम शत्रुता का भाव नहीं चाहते। यदि हम एक देश के रूप में रहने का चुनाव करते हैं तो हमें अच्छे भाई–बहन के रूप में एक साथ रहना होगा। और यदि हम अलग–अलग राष्ट्रों के रूप में रहने का चुनाव करते हें तो हमें अच्छे पड़ोसियों की तरह रहना होगा। चीन के साथ चिर स्थाई और अच्छे संबंध हमेशा तिब्बत का एक मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। तिब्बती समस्या का हल करते समय हम न केवल तिब्बत की मूलभूत आवश्यकताओं का ध्यान रखेंगे बल्कि हम चीन की सामरिक चिंताओं, आर्थिक हितों और चीनी नागरिकों की राष्ट्रीय भावनाओं का भी ध्यान रखेंगे।

जो चीनी नागरिक तिब्बत में रह रहे हैं काम कर रहे हैं उनकी संपत्ति व मानवाधिकारों की रक्षा होगी। मैंने 1988 में स्ट्रासबर्ग (फ्रांस) वाले प्रस्ताव में इन बातों को सिद्धांत रूप में रखा था। आज चीन की राजनीतिक आर्थिक व सामरिक शक्ति लगातार बढ़ रही है जो विश्व शांति व मानवीय सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देगी। लोग उसकी प्रशंसा करेंगे। ऐसी जो भी विश्व शक्ति छोटे राष्ट्रों का सम्मान उसे करेगी वह सचमुच एक शक्तिशाली देश गिना जाएगा।

तिब्बत समस्या के हल के लिए शांतिपूर्ण समझौता केवल तिब्बती जनता व तिब्बत को ही लाभ नहीं पहुंचाएगा बल्कि इससे आखिरकार चीन को ही फायदा देगा। मुझे पूरी आशा और विश्वास है कि भले ही तिब्बत एक बहुत छोटा राष्ट्र है लेकिन फिर भी आने वाले समय में वह चीन की समृद्धि में सहायक सिद्ध होगा। दशकों के कम्युनिस्ट शासन और अब पूंजीवाद के चलते चीन में अध्यात्म व नैतिक मूल्यों को नुकसान हुआ है। चीनी समाजमें अध्यात्म व नैतिकता की जबरदस्त कमी है। ऐसे में तिब्बती बौद्ध संस्कृति व दर्शन लाखों चीनी भाई–बहनों के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की आपूर्ति कर सकते हैं। आखिरकार पारंपरिक बौद्ध धर्म व दर्शन चीनी जनता के लिए नई चीज नहीं है।

चीनी कब्जे में तिब्बत का केवल विनाश हुआ
– दसवें पंचेन लामा

चीन के चहेते दसवें पंचेन लामा का माओ के नाम ऐतिहासिक बयान जिसने चीन को आइना दिखाया

एक दौर था जब चीन सरकार ने पिछले (दसवें पंचेन लामा; छ्युकी ग्याल्त्सेन) को वर्तमान दलाई लामा के खिलाफ और तिब्बत पर अपना कब्ज़ा मजबूत करने के लिए जमकर इस्तेमाल किया। यह वही पंचेन लामा थे जिसे चीन सरकार ने बचपन से अपने नियंत्रण में पढ़ा लिखा कर बीजिंग में बड़ा किया था। लेकिन 1961–62 के दौरान तिब्बत के दौरे ने उनकी आंखें खोल दीं। तिब्बती खुशहाली पर चीनी दावों की असलियत देखकर चीन के चहेते पंचेन लामा को ऐसा सदमा लगा कि उन्होंने नतीजों की परवाह किए बिना 70 हज़ार चीनी कैरेक्टर का एक बयान चेयरमैन माओ को लिख भेजा। जवाब में उन्हें 'प्रतिक्रियावादी सामंतों और दलाई लामा का दलाल' घोषित करके लाल रैड–गार्ड्स (चरमपंथी कम्युनिस्ट केडर संगठन) के हाथों जमकर अपमानित करवाया गया और 14 साल के लिए जेल में डाल दिया गया। लंदन में सक्रिय 'तिबेतन न्यूज़ नेटवर्क' द्वारा हासिल किए गए उसी ऐतिहासिक बयान के कुछ महत्वपूर्ण अंशों और बयान की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है। –– विजय क्रान्ति

आम तौर पर दसवें पंचेन लामा को चीन का पिट्ठू माना जाता रहा है क्योंकि दलाई लामा के तिब्बत छोड़ने के बाद चीन सरकार ने पंचेन लामा को ही तिब्बत के वैकल्पिक नेता के तौर पर पेश किया था। इसमें स्वयं पंचेन लामा ने भी उसे पूरा सहयोग दिया था। इस चाल के पीछे चीन का इरादा दुनिया को यह दिखाना था कि तिब्बत की जनता चीन के साथ है और समस्या की असली जड़ दलाई लामा और उसके साथी हैं जो तिब्बत में अपनी सामंतशाही बचाए रखना चाहते थे।

दलाई लामा के निर्वासन के बाद पंचेन लामा के नाम से ऐसे दर्जनों बयान जारी किए जाते रहे जिनमें चीन की कम्युनिस्ट सरकार की इस बात के लिए तारीफ की गई होती थी कि तिब्बत को चीन में मिलाकर उसने तिब्बत पर बहुत बड़ा उपकार किया है। यह भी कि चीनी व्यवस्था में तिब्बत की जनता सचमुच खुश है।

आज इस बात पर विवाद हो सकता है कि क्या ये बयान सचमुच पंचेन लामा ने ही जारी किए थे। यह भी माना जा सकता है कि बचपन से ही बीजिंग में चीनी नियंत्रण में पले बढ़े पंचेन लामा सचमुच चीनी कम्युनिस्ट व्यवस्था को अच्छा मानने लगे थे। लेकिन बाद के वर्षों का इतिहास सिद्ध करता है कि उनकी आंखों से चीनी परदा उठने में बहुत देरी नहीं लगी और आखिरकार उनमें एक देशभक्त तिब्बती की आत्मा जागृत हुई।

इस संबंध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उनका 70,000 शब्दों वाला वह बयान है जो उन्होंने चीनी शासन के सम्मुख 18 मई 1962 को रखा था और जिसे माओ ने ''प्रतिक्रियावादी सामंतों द्वारा (कम्युनिस्ट) पार्टी पर छोड़ा गया एक जहरीला तीर'' कहा था। कुछ वर्ष बाद लंदन का 'तिब्बत इन्फार्मेशन नैटवर्क' इस दस्तावेज़ को हासिल करने में कामयाब रहा।

तिबेतन न्यूज़ नेटवर्क टीआईएन को मिली रिपोर्ट के अनुसार 1960 और उसके बाद तिब्बत में व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियां की गईं और फांसियां दी गईं। यहां तक कि तिब्बत में व्यापक स्तर पर अकाल की स्थिति पैदा होने दी गईं ताकि तिब्बत से तिब्बती लोगों और उनके धर्म को मिटाया जा सके।

संभवतया यह दस्तावेज सरकार की साम्यवादी नीतियों की आलोचना करने वाला अब तक का सबसे व्यापक दस्तावेज था। बाद में यह साबित हो गया कि दल की आलोचना करने में यह दस्तावेज

जनरल पेंग दे–हुआई द्वारा तैयार चीनी भाषा के 10,000 कैरेक्टर वाले उस चर्चित पत्र से भी आगे निकल गया जो 1959 में उनके पतन का कारण बना था।

यह रिपोर्ट पंचेन लामा ने चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन–लाई के सम्मुख पेश की थी। लगभग तीन महीने तक चीन के संयुक्त मोर्चा विभाग के अध्यक्ष ली वाई–हान ने रिपोर्ट में दिए गए सुझावों के मुताबिक कुछ आरंभिक कदम उठाए। लेकिन उसी साल अक्तूबर में ली वाई–हान पर आरोप लगाया गया कि उनका संबंध पंचेन लामा से है। उसी महीने पंचेन लामा को भी अपनी ही आलोचना करने के आदेश दिए गए। एक साल बाद उन्हें ल्हासा में पचास दिन तक चले 'थामज़िंग' (सार्वजनिक अपमान सभा और 'जन अदालत') में मुकदमे का सामना करना पड़ा। फिर उन्हें बीजिंग भेज दिया गया जहां उन्होंने कुल 15 वर्षो में से 14 वर्ष लेबर कैंप, जेल और नजरबंदी में बिताए।

1988 में, मृत्यु से ठीक एक वर्ष पहले पंचेन लामा को मुक्त कर दिया गया था। लेकिन 70,000 कैरेक्टर वाले निवेदन के रूप में प्रसिद्ध उनकी रिपोर्ट को गुप्त रखा गया। इस रिपोर्ट को दल के भीतरी लोगों के अलावा किसी को नहीं दिखाया गया क्योंकि सबको इसकी जानकारी होने से इसके व्यापक प्रभाव पड़ते।

u;k] dBiryh ipu ykek : कई लोग पिछले पंचेन लामा को कम्युनिस्ट पार्टी का अनुयायी बताते हैं। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और सरकार आजकल इस कोशिश में लगे हुए हैं कि तिब्बती उस बालक ग्याल्त्सेन नोरबू को पंचेन लामा का असली अवतार मान लें जिसे पार्टी ने दिवंगत दसवें पंचेन लामा का 'अवतार' चुना है। लेकिन तिब्बती जनता ने, खासकर भिक्षु समाज ने दलाई लामा द्वारा चुने गए बालक पंचेन लामा गेदुन छ्योकी न्यीमा को ही असली पंचेन लामा मानने का फैसला किया है। चीन सरकार इस कोशिश में है कि भिक्षु और भिक्षुणियां दलाई लामा के बजाए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार को स्वीकार करें। इस कारण तिब्बती मठों पर सरकारी कहर कई वर्ष बाद आज भी जारी है। वहां भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा दलाई लामा या उनके मान्य पंचेन लामा के चित्र रखने पर कड़ी पाबंदी लगी हुई है।

चीनी नेताओं को डर था कि 1962 के इस बयान के प्रकाशन का असर तिब्बती धर्मनेताओं के अवतारों के चयन से संबंधित राजनीति पर भी पड़ सकता था। 1961 और 1962 में पंचेन लामा के तिब्बत दौरों से संबंधित 120 पन्नों वाले और आठ भागों में बंटे इस दस्तावेज से तिब्बती इलाकों की दशा की विस्तृत जानकारी मिलती है। दस्तावेज में सरकार द्वारा 1959 की जनक्रांति का बदला लेने के कारण दिए गए कड़े दंडों की विशेष रूप से आलोचना की गई है।

vR;kpkjk dh dgkuh : इसमें कहा गया है ''हमारे पास यह पता लगाने का कोई तरीका नहीं है कि कितने लोग गिरफ्तार किए गए हैं। हर क्षेत्र से 10,000 या इससे भी अधिक लोग गिरफ्तार किए गए हैं। संसार के किसी भी भाग में प्रचलित कानूनी व्यवस्था के खिलाफ सभी को गिरफ्तार किया गया, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, दोषी हो या निर्दोष। कुछ इलाकों में ज्यादातर पुरुषों को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया है। जिसका नतीजा यह हुआ कि ज्यादातर काम स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों को करना पड़ रहा है।''

पंचेन लामा ने यह रहस्योद्घाटन भी किया कि किस तरह अलग–अलग बहानों से आम जनता को प्रताड़ित किया जा रहा है। उन्होंने बताया गया है कि वहां सजा सामूहिक रूप में दी जाती थी। यानि उन तिब्बतियों को भी मार डाला गया जिनके रिश्तेदारों ने चीन विरोधी विद्रोह में भाग लिया था। इस अपील के अनुसार जानबूझकर राजनैतिक कैदियों को ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में रखा जाता

था कि वे मर जाएं।

पंचेन लामा की इस रिपोर्ट–आधारित अपील का एक मुख्य उद्‌देश्य बीजिंग सरकार पर ऐसे कदमों के लिए जोर डालना था कि तिब्बत में, विशेषकर पूर्वी तिब्बत में भूख और अकाल से और अधिक मौतें न हों क्योंकि वहां पहले ही कम्यूनों की स्थापना हो चुकी थी। प्रार्थना पत्र के अंतिम अनुच्छेद में पंचेन लामा इतने द्रवित थे कि चेयरमैन माओ और प्रधानमंत्री को संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा, ''आपको विशेष रूप से वायदा करना होगा कि लोग भूख से नहीं मरेंगे।''

Hk[k dk rkMo % पंचेन लामा ने लिखा है ''तिब्बत के कई भागों में लोग भूख से मर रहे हैं। कुछ स्थानों पर तो पूरे के पूरे परिवार ही खत्म हो गए हैं और मृत्यु दर बहुत तेज हो गई है। यह सब कुछ बहुत ही असामान्य, भयानक और गंभीर है। अतीत में तिब्बत अंधकारपूर्ण और क्रूर सामन्तशाही व्यवस्था में रह चुका है, लेकिन तब भी भोजन की इतनी कमी नहीं रही, खासकर बौद्ध धर्म के फैलने के बाद से तो बिल्कुल ही नहीं।'' उन्होंने आगे लिखा है ''तिब्बत में आम जनता इतनी अधिक गरीबी की हालत में रह रही है कि बूढ़े–जवान सभी भूखे मर रहे हैं या फिर इतने कमजोर हो चुके हैं कि उनमें बीमारियों से लड़ने की ताकत नहीं बची है। और इसलिए वे मर रहे हैं।''

उन्होंने बताया है कि लोगों को कम्यून रसोइयों में खाना खाने के लिए मजबूर करने का नतीजा यह है कि हर व्यक्ति को घास, पत्तियों और पेड़ की छाल के अलावा प्रतिदिन केवल 5 औंस (180 ग्राम) अनाज ही राशन के रूप में दिया जाता है। उन्होंने लिखा है, ''इतना कम राशन जिंदा रहने के लिए काफी नहीं। इसीलिए लोगों को भूख के भयंकर थपेड़े सहने पड़े। यही नहीं, लोगों से, खासकर राजनैतिक कैदियों से कड़ी मेहनत करवायी जाती है।'' उन्होंने आगे लिखा, ''तिब्बत के इतिहास में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। लोगों ने ऐसे भयंकर अकाल की कल्पना सपने में भी नहीं की थी। कुछ इलाकों में यदि एक व्यक्ति ठंड लगने से बीमार हो जाता है तो वही बीमारी और सैकड़ों लोगों में फैल जाती है और कई लोग अकारण ही मौत का शिकार हो जाते हैं।''

एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद में पंचेन लामा ने स्पष्ट किया है कि ये मौतें सरकारी नीतियों का परिणाम थीं, किसी प्राकृतिक विनाश का नहीं, जैसा कि माओ ने विदेशी यात्रियों के सामने दावा किया है और जिसे पश्चिम से आए और चीनी भाषा जानने वाले कुछ लोगों ने स्वीकार भी किया है। उन्होंने कहा, ''तिब्बत में 1959 से 1961 के दौरान दो वर्ष तक पशु–पालन और खेती लगभग बंद रही। बंजारे तिब्बतियों के पास खाने के लिए अनाज नहीं था और किसानों के पास मांस, मक्खन और नमक कुछ भी नहीं था। लोगों के आने–जाने और किसी भी खाद्य सामग्री और सामान के लेन–देन पर रोक लगा दी गई थी। उनके सांपा (सत्तू) के निजी बोरे भी जब्त कर लिए गए थे और अनेक लोगों से सार्वजनिक रूप से जोर–जबर्दस्ती भी की गई। लोगों ने उन्हें बताया कि ''यदि उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया जाता, तो इतनी मौतें न होतीं और फसल भी बेहतर हो सकती थी।''

1959&1961 e phu e vdky : पंचेन लामा ने जिस अकाल का उल्लेख अपनी रिपोर्ट में किया है, वह पूरे चीन में फैल गया था। यह अकाल 1958 की 'ग्रेट लीप' (लंबी छलांग) का परिणाम था जब अपने काल्पनिक साम्यवाद की स्थापना के लिए उठाए गए एक कड़े कदम के रूप में माओ–त्से–तुंग ने निर्देश दिए थे।

अगस्त 1959 में एक दलीय सम्मेलन की लुशान सभा के माध्यम से ल्यू शाओ–ची तथा देंग सियाओ पिंग जैसे साहसी नेताओं के नेतृत्व में माओ के कार्यक्रम में फेर–बदल आरंभ कर दिए गए थे, लेकिन चीन में अकाल की स्थिति दो और वर्षो तक बनी रही। पंचेन लामा के इस पत्र से भी पता

चलता है कि चिंघाई प्रांत (तिब्बती नाम 'आम्दो') में अकाल 1962 तक चलता रहा और कुछ प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पूर्वी तिब्बत के प्रांत खम में यह स्थिति 1965 तक बनी रही।

हालांकि 1981 के 'रेजोल्यूशन ऑन पार्टी हिस्ट्री' में 'ग्रेट लीप' को एक 'गंभीर गलती' माना गया है, लेकिन इसमें अकाल का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। केवल इतना ही कहा गया कि 'देश और लोगों का भारी नुकसान हुआ'। सार्वजनिक दस्तावेजों और सरकारी पुस्तकों में भी इस मामले की उपेक्षा की गई है और ऊपरी तौर पर केवल 'तीन कठिन वर्षों' का ही उल्लेख किया गया है।

चाइनीज़ ऐकेडेमी ऑफ सोशल साइंसेज की आंतरिक रिपोर्ट के एक अनुमान के अनुसार अकाल से लगभग डेढ़ करोड़ मौतें हुईं, जबकि पश्चिमी विशेषज्ञों, जैसे जनसंख्या अध्ययन विशेषज्ञ ज्यूडिथ बैनिस्टर के अन्दाजे के मुताबिक अकाल से मरने वालों की संख्या लगभग 3 करोड़ होगी। बीजिंग स्थित 'इकनामिक सिस्टम रिसर्च इंस्टीटयूट' द्वारा 1980 और उसके बाद के वर्षों में तैयार की गई एक रिपोर्ट के अनुसार पंचेन लामा के अपने प्रान्त चिंघाई (तिब्बत के आम्दो वाला चीनी प्रांत) में अकाल से 90,000 लोगों की मौत हुई, जो कि वहां की कुल आबादी का 45 प्रतिशत है। और अकाल के विषय पर अनुसंधान कर रहे पत्रकार जैस्पर बैकर के अनुसार सिचुआन (खम के हिस्सों वाला नया चीनी प्रांत) प्रांत में 90 लाख लोग मारे गए। बैकर के अनुसार मध्य तिब्बत में अकाल की स्थिति अगले 20 वर्षों तक बनी रही। उन्होंने आगे कहा है, ''चीन में अकाल की स्थिति के कारण तिब्बतियों ने जितना सहा है, उतना और किसी को नहीं सहना पड़ा।''

बैकर तथा अन्यों ने तर्क दिया है कि चीन के लिए अनाज का आयात इसीलिए संभव हो सका क्योंकि चीनी सत्ता ने अत्यधिक गोपनीयता से काम लिया। और वह विदेशी विद्वानों, पत्रकारों तथा फ्रांसवा मितेरां जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों को यह यकीन दिला सकी कि यह अकाल प्राकृतिक आपदाओं का परिणाम है या सोवियत रूस द्वारा दी जा रही मदद बंद किए जाने का परिणाम है। 1960 में चीन का दौरा करने के बाद एक महत्वपूर्ण ब्रिटिश पत्रकार फैलिक्स ग्रीन ने लिखा, चीन में भूख से होने वाले मौतें बंद हो चुकी हैं। अनाज की कमी की समस्या अभी भी गंभीर बनी हुई है, लेकिन अकाल की स्थिति समाप्त हो गई है।''

पंचेन लामा के प्रार्थना पत्र से बैकर और अन्य लोगों द्वारा की गई इस खोज की पुष्टि हो जाती है कि चीन ने 'ग्रेट लीप' के बाद के वर्षों में जान बूझ कर पैदा की गई अकाल की स्थिति को छिपाने की कोशिश की। प्रार्थना पत्र में उन आरोपों की भी पुष्टि हो जाती है जो कभी तिब्बती शरणार्थियों ने लगाए थे और पश्चिम में अब तक जिन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा था। यह 1960 में इंटरनेशनल कमीशन ऑफ ज्यूरिस्ट्स द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में दिए गए उन तथ्यों की भी पुष्टि करती है जिसमें कहा गया है कि तिब्बत में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि वहां जान–बूझ कर एक संपूर्ण जाति को नष्ट करने की कोशिश की गई।

/ke vkj jk"Vh;rk dk [krjk : चीन और अन्य कई लोगों ने 'ज्यूरिस्ट्स' की इस रिपोर्ट को ठीक नहीं माना। लेकिन पंचेन लामा ने अपनी रिपोर्ट में चिंता व्यक्त की कि चीनी नीतियां तिब्बती राष्ट्रीयता के अस्तित्व के लिए एक खतरा हैं। उन्होंने लिखा, ''तिब्बत की आबादी बहुत कम हो गई है। इससे न केवल तिब्बती जाति की संपन्नता नष्ट हुई है, बल्कि इसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। संभव है कि इससे तिब्बती जाति ही खत्म हो जाएगी।'' इस अनुच्छेद को चाऊ एन–लाई ने ठीक नहीं माना।

यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि पंचेन लामा उस समय केवल 24 वर्ष के थे। ऐसे में अपनी

लिखित रिपोर्ट पेश करके उन्होंने बहुत बड़ा खतरा मोल लिया। खासकर तब जबकि पिछले वर्ष का उदारवादी वातवरण कुछ कम हो गया था और उनके द्वारा माओ से की गई शिकायतों को कम करने के कुछ कदम भी उठाए जा चुके थे। प्रार्थना पत्र में चीन की राष्ट्रीयता तथा धर्म संबंधी नीतियों की कटु आलोचना की गई और यहां तक कहा गया कि इन नीतियों के कारण तिब्बती समुदाय पूर्ण रूप से समाप्त हो सकता है। उन्होंने कहा, ''यदि किसी राष्ट्रीयता से उसकी भाषा, वेश–भूषा और परंपराएं छीन ली जाएं, तो वह राष्ट्रीयता अवश्य ही नष्ट हो जाएगी। हमारे पास क्या गांरटी है कि तिब्बती जाति किसी अन्य जाति में विलीन नहीं हो जाएगी?

धार्मिक नीति की आलोचना वाले इस हिस्से को सबसे खतरनाक माना गया। पंचेन लामा ने मठों में सुधार के लिए किए जा रहे प्रयासों का पूरा पूरा समर्थन किया और सभी बुराइयों के लिए उन स्थानीय वामपंथी अधिकारियों को जिम्मेदार माना जो बीजिंग सरकार के निर्देशों की अवहेलना कर रहे थे। पंचेन लामा का आरोप था कि कम्युनिस्ट पार्टी धर्म को पूरी तरह नष्ट करना चाहती है। उन्होंने जोर दे कर कहा कि धर्म का अधिकार एक मूल अधिकार है। इसको छीने जाने की किसी भी कोशिश का नतीजा यदि विद्रोह न भी हो, तो भी गंभीर हो सकता है।

उन्होंने लिखा '' जिसे अब तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र कहा जाता है वहां कभी 2500 मठ थे। अब वहां केवल 90 मठ ही बचे हैं। और 93 प्रतिशत भिक्षुओं और भिक्षुणियों को मठों से निकला जा चुका है। ..... तिब्बत में धर्म के नाश के लिए कुछ लोगों को इस्तेमाल किया जा रहा है। लेकिन गलती से इसे तिब्बत की आम जनता का विचार बताकर पेश किया जा रहा है। देखते ही देखते तिब्बत में फैला संपन्न और सुसंस्कृत बौद्ध धर्म नाश के कगार पर जा पहुंचा है। मैं और 90 प्रतिशत तिब्बती यह कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे।''

उन परिस्थितियों में यह प्रार्थना पत्र महत्वपूर्ण था। बाद में 1980 में पंचेन लामा ने चीनी सुधारों के अगुआ हू याओ–बांग को उनके द्वारा तिब्बत में शुरू किए गए सुधारों के लिए बधाई दी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि 70,000 चरित्रों वाले प्रार्थना–पत्र में दिए गए सुझावों को उसी समय लागू कर दिया गया होता जब उन्हें पेश किया गया था, तो तिब्बत में उत्पन्न समस्याएं सुलझ गई होतीं।'' पंचेन लामा के बयान में इस बात पर बल दिया गया था कि कोई भी नीति बनाते समय तिब्बत के विशिष्ट चरित्र को ध्यान में रखा जाए। 1980 के बाद के वर्षो में देंग सियाओ पिंग ने अपनी नीतियों में इस तथ्य को ध्यान में रखा और पंचेन लामा को तिब्बत में कई उदारवादी नीतियां अपनाने के मौके दिए।

लेकिन बाद में कम्युनिस्ट पार्टी ने हू द्वारा शुरू किए गए सुधारों के कारण उनकी आलोचना की। ये सुधार 1987 में उनके पतन और फिर चीन में उसी साल तथा बाद में 1989 में हुए जनांदोलन के कारण बने। 1992 के आरंभ में दल ने इस सब को रोक दिया और पंचेन लामा द्वारा मांगी गई और हू द्वारा दी गई धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता वापस ले ली गई। पूजा करने की स्वतंत्रता सीमित कर दी गई। मठ समितियों में राजनैतिक अधिकारी नियुक्त कर दिए गए और तिब्बती भाषा के अध्ययन पर रोक लगा दी गई।

1988 में अपनी पहली तिब्बत यात्रा के दौरान पंचेन लामा ने अपने मठ ताशी लुंपो में आयोजित एक सार्वजनिक समारोह में तिब्बत की हालत के लिए चीन सरकार की कड़ी आलोचना की। इसे चीन की सरकार ने पसंद नहीं किया। उनके इस बयान के चार दिन बाद अचानक ही उनकी मौत की घोषणा कर दी गई। सरकारी घोषणा के अनुसार उनकी मृत्यु दिल के दौरे से हुई। पंचेन लामा की मौत का रहस्य आज भी कायम है। लेकिन उनके आखिरी बयान ने तिब्बती जनता के मन में यह सिद्ध कर दिया कि पंचेन लामा एक तिब्बती देशभक्त थे।

भारत के प्रति चीन के असली इरादों को समझो

–सरदार पटेल, *7 नवंबर 1950*

सरदार पटेल उन भारतीय नेताओं में से थे जिन्होंने तिब्बत की घटनाओं के दूरगामी महत्व को समझा। यहां पंडित नेहरू को लिखे उनके एक ऐतिहासिक पत्र को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है – संपादक

प्रिय जवाहर,

जिस दिन मैं अहमदाबाद से लौटा उसी दिन मुझे केवल पंद्रह मिनट के नोटिस पर मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेना पड़ा। इसी कारण से उस दिन मैं अपने सभी दस्तावेज़ नहीं पढ़ सका, जिसके लिए मुझे बहुत खेद है। मैं तिब्बत की समस्या पर बहुत गंभीरता से सोचता रहा हूं। मैं चाहता हूं कि इस संबंध में मैं अपने विचारों की जानकारी आपको भी दूं।

मैंने पीकिंग स्थित भारतीय राजदूत के माध्यम से अपने देश के विदेश मंत्री और चीनी सरकार के बीच हुए पत्र व्यवहार की पूरी–पूरी जान कारी प्राप्त की है। मैंने बहुत ध्यानपूर्वक बिना किसी पक्षपात के इस पत्र–व्यवहार को पढ़ा और बहुत दुख के साथ मुझे यह कहना पड़ रहा है कि इस अध्ययन के दौरान कोई भी पक्ष मुझे ठीक प्रतीत नहीं हुआ। चीनी सरकार ने अपने शांतिपूर्ण प्रयासोंके नाम पर लगातार हमें धोखा दिया है। मेरा अपना विचार यह है कि ऐसे संकट के समय में चीनी सरकार तिब्बत के मामले को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की अपनी तथाकथित इच्छा के प्रति हमारे राजदूत के मन में विश्वास की एक झूठी भावना उत्पन्न करने में सफल हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस समय चीनी सरकार उपरोक्त पत्र–व्यवहार में लगी हुई थी ठीक उसी समय वह तिब्बत पर अधिकार करने की योजनाएं भी बना रही थी। मेरे विचार से चीनियों की सभी कार्यवाहियां एक प्रकार से भारत के प्रति चीनी सरकार द्वारा रचा गया एक षडयंत्र है। इस पर भी दुख की बात यह है कि तिब्बती हम पर विश्वास रखते है। उन्होंने अपने मार्गदर्शन के लिए हमें ही चुना है और हम उन्हें चीनी कूटनीति के शिकंजे से मुक्त कराने में असफल रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हम दलाई लामा को स्वतंत्र कराने में सफल नहीं हो सकेंगे। हमारे राजदूत चीनी नीतियों और कार्यवाहियों की पुष्टि बड़ी कठिनाइयों के बाद कर सके हैं। जैसा कि विदेश मंत्रालय ने अपने एक तार में कहा है कि उन्होंने हमारी ओर से चीनी सरकार के सम्मुख जो प्रतिनिधित्व किया है, उसमें दृढ़ता का अभाव तथा अनावश्यक क्षमा–याचना की भावना निहित रही है।

कोई बुद्धिमान व्यक्ति तिब्बत में ब्रिटिश–अमरीकी षडयंत्र से चीन को तथाकथित खतरा होने पर विश्वास करे, इस बात की कल्पना भी असंभव है। और क्योंकि चीनी लोग इसमें विश्वास रखते हैं इसीलिए उन्होंने यह मान लिया कि ब्रिटिश अमरीकी कूटनीतिक व्यूह रचना में हमारा भी हाथ रहा है। उनकी इस भावना से पता चलता है कि यद्यपि हमने चीन को सदा अपना मित्र माना है, किंतु फिर भी चीनी हमें अपना मित्र नहीं समझ सके।

साम्यवादियों की इस मानसिकता कि जो उनके साथ नहीं वह उनका विरोधी है–हमें ध्यान देना चाहिए। पिछले अनेक महीनों से रूसी खेमे से बाहर भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिए जाने का बार–बार समर्थन किया है। हमने चीन को संतुष्ट करने के लिए हर संभव प्रयास किया है। हमने ब्रिटेन और अमरीका से पत्र–व्यवहार करते समय और संयुक्त

राष्ट्र संघ में वाद–विवाद में भाग लेते समय सदा चीन की न्यायपूर्ण मांगों और उचित विचारों का समर्थन किया है। फिर भी चीन को हमारी निःस्वार्स्थता पर यकीन नहीं होसका है। वह अब भी हमें संदेह की दृष्टि से देखता है। इसी कारण से भारत चीन के बीच संबंधों के लिए संदेहों और शत्रुता का मिला–जुला वातावरण तैयार हो गया है। मेरे विचार से चीन को अपनी सद्भावना और मैत्री की इच्छा का विश्वास दिलाने के लिए इससे अधिक हम कुछ नहीं कर सकते। आजकल पीकिंग में जो भारतीय राजदूत हैं वे मैत्रीपूर्ण संबंधों के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में पूर्णतः समर्थ हैं। किंतु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह भी चीनियों की मनोदशा बदलने में सफल नहीं हो पा रहे। चीन से प्राप्त अंतिम तार भी चीन की अमैत्रीपूर्ण भावनाओं का सूचक है जिसके द्वारा चीन ने न केवल तिब्बत में चीनी सेना के प्रवेश पर भारत द्वारा किए गए लगातार विरोध से मुक्ति पा ली है, बल्कि साथ ही यह भी संकेत दिया है कि हमारे विचार और व्यवहार बाह्य शक्तियों के दबाव से ही निर्धारित होते हैं। चीन के इन विचारों से ऐसा नहीं लगता कि ये भारत के किसी मित्र–देश के विचार हैं। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है ये विचार एक संभावित शत्रु देश के ही हैं।

ऐसी पृष्ठभूमि में हमें ध्यान देना होगा कि तिब्बत के लुप्त हो जाने और इसके साथ ही चीन द्वारा हमारी सीमाओं तक विस्तार कर लिए जाने के परिणामस्वरूप हमें किस नई स्थिति का सामना करना है। अब तक के इतिहास में हमने शायद ही कभी अपनी उत्तरी–पूर्वी सीमा के विषय में चिंता की होगी। उत्तर दिशा से आनेवाले किसी भी खतरे के लिए हिमालय पर्वत एक अभेद्य दीवार के रूप में खड़ा रहा है। अब तक हमारे पड़ोस में तिब्बत के रूप में एक ऐसा मित्र देश था जिसने कभी–भी हमारे लिए कोई परेशानी पैदा नहीं की। चीनी पहले विभाजित थे और उनकी अपनी निजी समस्याएं थीं और उन्होंने कभी भी हमें हमारी सीमाओं पर परेशान नहीं किया था। 1914 में हमने तिब्बत से एक समझौता किया था जिसका चीन ने कभी भी समर्थन नहीं किया। हम यही चाहते थे कि इस द्विपक्षीय समझौते पर चीन भी अपने हस्ताक्षर कर दे। तिब्बत में चीनी सेनाएं प्रविष्ट हो जाने के साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी सरकार शीघ्र ही उन सभी प्रतिज्ञाओं को भंग कर देगी जो तिब्बत ने हमारे साथ की है। इसके साथ ही भारत और तिब्बत के बीच हुए वे सभी वाणिज्यिक और सीमा संबंधी समझौते भी खटाई में पड़ जाएंगे जिनके आधार पर हम पिछली आधी–शताब्दी से व्यहार करते आ रहे हैं। चीन अब विभाजित नहीं है। अब वह एक संगठित और शक्तिशाली देश है। हिमालय के साथ–साथ हमारी सीमा के उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी भाग में ऐसी आबादी बसी हुई है जो सांस्कृतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से तिब्बतियों और मंगोलियनों से भिन्न नहीं है। सीमांत प्रदेशों की अनिश्चित स्थिति और हमारी आबादी के एक भाग का तिब्बत या चीन से साम्य, दो ऐसी विशेषताएं हैं, जिनमें वे सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं जो चीन और हमारे बीच संबंध बिगाड़ने के लिए पर्याप्त हैं। हाल ही के कुछ कटु अनुभवों ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि साम्यवाद साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक ढाल के रूप में प्रयोग नहीं हो सकता है और एक साम्यवादी एक साम्राज्यवादी के समान ही अच्छा या बुरा सिद्ध हो सकता है। साम्यवादी चीन का उद्देश्य न केवल हमारी ओर के हिमालय की ढलानों पर अधिकार करना है, बल्कि उसका लक्ष्य असम राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करना भी है। बर्मा के संबंध में भी उसकी ठीक इसी प्रकार की महत्वाकांक्षाएं हैं। बर्मा के साथ एक कठिनाई यह है कि इसके पास कोई मैक मोहन रेखा नहीं है, जिसके आधार पर किसी समझौते जैसी कोई बात उठाई जा सके। चीनी साम्राज्यवादी साम्यवाद पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवाद या विस्तारवाद से भिन्न है। साम्यवाद ने विचारधारा का आवरण भी ओढ़ रखा है जो इसे दस गुना खतरनाक बना देता है। इस विचारधारा संबंधी विस्तारवाद के आवरण में अनेक जातीय, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक दावे निहित हैं। इसीलिए उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी दिशा की ओर से होने वाले खतरे साम्यवादी तथा साम्राज्यवादी दोनों ही हैं। एक ओर पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम में होने वाले खतरे ज्यों के त्यों हैं तो दूसरी ओर उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम में हमारे लिए नए खतरे

पैदा हो रहे हैं। इस प्रकार कई शताब्दियों बाद पहली बार भारतीय रक्षा विभाग को एक ही समय में दो–दो मोर्चे की रक्षा करनी पड़ी है। अभी तक हमारे रक्षा प्रयास पाकिस्तान के संबंध में ही होते थे, लेकिन अब हमें उत्तर और उत्तर–पूर्व में साम्यवादी चीन पर भी ध्यान देना होगा–उस साम्यवादी चीन पर जिसके कुछ निश्चित लक्ष्य तथा महत्कांक्षाएं हैं और जो किसी भी हालत में भारत के प्रति मैत्रीपूर्ण रवैया अपनाने को तैयार नहीं है।

अब इन संभावित संकटों से ग्रस्त सीमांत प्रदेश के विषय में राजनीतिक दृष्टि से भी विचार कर लिया जाए। हमारे उत्तर और उत्तर–पूर्व में नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग तथा असम राज्य हैं। बाकी देश से संपर्क की दृष्टि से इन क्षेत्रों की दशा अच्छी नहीं है। यहां लगातार सुरक्षा व्यवस्था का भी अभाव है। यहां पुलिस प्रबंध भी सीमित है।

इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों की गौण पुलिस सीमा चौकियों पर सिपाहियों की संख्या भी पर्याप्त नहीं है। इस ओर ऐसे साधनों का सर्वथा अभाव है जिनके द्वारा हम इन क्षेत्रों से जुड़े रह सकें। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में भारत के प्रति भक्ति या निष्ठा बहुत कम देखने को मिलती है। यहां तक कि दार्जिलिंग और कलिंपोंग क्षेत्र भी मंगोलियाई समर्थक विचारों से मुक्त नहीं है। गत तीन वर्षो। में हम नागाओं और असम की पर्वतीय जातियों के संबंध में कोई भी उचित कदम नहीं उठा सके हैं। किंतु उनके प्रयास भारत या भारतीयों के प्रति किसी भी तरह से मैत्रीपूर्ण नहीं थे। कुछ समय पूर्व सिक्किम में राजनीतिक उथल–पुथल मची हुई थी। इसीलिए यह स्वाभाविक ही है कि वहां धीरे–धीरे असंतोष व्याप्त होता जा रहा है। भूटान यद्यपि शांत ही है, लेकिन तिब्बतियों से इसका निकट संबंध ा ही इस क्षेत्र के लिए एक बड़ी मुसीबत सिद्ध होगा। नेपाल में दुर्बल अल्पतंत्रीय शासन स्थापित है जो लगभग पूरी तरह से शक्ति पर ही आधारित है। इस समय इस व्यवस्था को जनता के एक विक्षुब्ध ा वर्ग और साथ ही आधुनिक युग के जागृत विचारों से संघर्ष करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में हमारी जनता को नए संकट के प्रति सावधान करना और उसे रक्षात्मक दृष्टि से सक्षम बनाना बहुत कठिन काम है और इसकठिनाई पर केवल विवेकपूर्ण स्थिरता विश्वास तथा स्पष्ट नीतियों द्वारा भी नियंत्रण किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि चीन और उसका मार्ग–दर्शक रूप दोनों ही अपनी विचारध ाारा तथा अपनी महत्वकांक्षाओं की खातिर इन दुर्बल क्षेत्रों का शोषण कर सकने का कोई भी अवसर नहीं खोएंगे। मेरे विचार में ऐसी स्थिति में हमे पूर्णतः निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए। हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि हमारे उद्देश्य क्या हैं और हमें उन्हें कैसे प्राप्त करना है। अपने उद्देश्यों के निर्धारण में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट तथा अनिश्चिसता हमें कमजोर बना सकती है और हमारे उन खतरों को बढ़ सकती है, जो प्रमाणिक हैं।

इन बाहरी संकटों के साथ–साथ हमें कई गंभीर आंतरिक संकटों का सामना भी करना है। मैं इंगर से पहले ही कह चुका हूं कि वे विदेश मंत्री को इन मामलों के विषय में खुफिया विभाग की रिपोर्ट की एक प्रति भेज दें। भारत के साम्यवादी दल को विदेशों के साम्यवादियों से संपर्क बनाए रखने तथा उनसे अस्त्र–शस्त्र, साहित्य आदि प्राप्त करने में कठिनाई होती रही है। उन्हें पूर्व में बर्मी तथा पाकिस्तान के सीमांतों पर भी निर्भर रहना पड़ता था। लेकिन अब उनकी पहुंच सरलता से चीनी साम्यवादियों और उनके द्वारा अन्य विदेशी साम्यवादियों तक हो सकेगी। जासूसों, गद्दारों तथा साम्यवादियों की घुसपैठ भी अब सरल हो जाएगी। केवल तेलंगाना, वारांगल के साम्यवादियों की समस्या से निबटने की अपेक्षा हमें अपने उत्तरी और उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में व्याप्त साम्यवादी खतरों पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि इन क्षेत्रों के साम्यवादी आसानी से चीनी साम्यवादियों के शस्त्र–भंडार से प्राप्त अस्त्र–शस्त्र और युद्ध सामग्री पर निर्भर रह सकते हैं। इस प्रकार से सभी परिस्थितियां मिलकर कई गंभीर समस्याओं को जन्म देती हैं, जिनके संबंध में हमें जल्दी से जल्दी कोई निर्णय ले लेना होगा, ताकि जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं, हम अपनी नीति के संबंध में उद्देश्य और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की विधियां और साधन निर्धारित कर सकें। ऐसा करके ही हम ऐसे कदम उठा सकेंगे जो न केवल हमारे लिए

रक्षात्मक दृष्टि से उचित होंगे, बल्कि हमारी आंतरिक सुरक्षा के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। हमको इन दुर्बल क्षेत्रों में अनेक उन प्रशासनिक तथा राजनीतिक समस्याओं का सामना करना है जिनका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं।

6. मेरे लिए इन समस्याओं का विवरण देना असंभव है फिर भी मैं नीचे उन समस्याओं के विषय में बता रहा हूं जिनको मेरे विचार से जल्दी से जल्दी सुलझा लेना चाहिए और जिनके आधार पर हमें अपनी प्रशासनिक तथा सैनिक नीतियां निर्धारित तथा लागू करनी है :–

, *– भारत की आंतरिक सुरक्षा तथा सीमांत प्रदेशों में संभावित चीनी खतरे का भारत के सैन्य–विभाग तथा खुफिया विभाग द्वारा मूल्यांकन।*

ch *– हमारी सैनिक स्थिति का मूल्यांकन और फिर सेना का उस सीमा तक पुनर्प्रबंध और जहां तक आवश्यक हो, विशेषतः उन भागों और क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए कदम उठाए जाएं जो विवाद का केंद्र बन सकते हैं।*

Ih *– अपनी सैनिक शक्ति का मूल्यांकन और फिर यदि आवश्यक हो तो इन नए खतरों को देखते हुए अपनी सैनिक मोर्चाबंदी का पुर्नप्रबंध।*

Mh *– अपनी सुरक्षात्मक– आवश्यकताओं पर दीर्घकालीन विचार। मेरा अपना विचार यह है कि यदि हम अपने अस्त्र–शस्त्र और अन्य युद्ध सामग्री के विषय में विश्वस्त नहीं होंगे तो हमारी रक्षा व्यवस्था लगातार दुर्बल होती चली जाएगी और हम अपनी पश्चिमी सीमा और उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी सीमा पर उत्पन्न दोहरे खतरों और समस्याओं को नहीं सुलझा पाएंगे।*

b *– संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश का प्रश्न। चीन ने हमारे साथ जो विश्वासघात किया और जिस प्रकार से वह तिब्बत का मामला सुलझाने का प्रयास कर रहा है, उसे देखते हुए मुझे संदेह है कि हम भविष्य में भी चीन के दावों का समर्थन करते रह पाएंगे। चीन द्वारा कोरिया–युद्ध में सक्रिय भाग लिए जाने के कारण ही वास्तव में चीन के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ में न्याय न हो पाने की संभावना है। हमें इस प्रश्न पर भी अपना रवैया निश्चित करना है।*

,Q *– अपने उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी सीमांतों को सशक्त बनाने के लिए उठाए जा सकने वाले राजनैतिक तथा प्रशासनिक प्रयास। इस क्षेत्र के अंतर्गत वह सारा सीमा क्षेत्र आता है जो नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग तथा असम के जातीय क्षेत्र से संबंधित है।*

th *– सीमा क्षेत्रों और सीमाओं के निकट स्थित राज्यों, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और असम आदि में आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन।*

,p *– इन क्षेत्रों में और यहां स्थितचौकियों में संचार साधनों, सड़कों, रेल, वायुयान और वायरलेस संबंधी सुविधाओं में सुधार।*

vkb *– सीमांत चौकियों पर पुलिस तथा खुफिया प्रबंध।*

t *– ल्हासा में स्थापित हमारे कार्यालय तथा ग्यान्त्से और यालुंग में स्थित हमारी व्यापारिक चौकियों व तिब्बत में व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के लिए स्थापित हमारी सेनाओं का भविष्य।*

d *– मैकमोहन रेखा के संबंध में नीति–निर्धारण।*

7. ये कुछ प्रश्न हैं, जो मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं। यह संभव है कि इन मामलों पर विचार–विमर्श द्वारा चीन, रूस, अमरीका, ब्रिटेन और बर्मा से संबंधों के विषय में अधिक बड़े प्रश्न पैदा हो जाएं। इनमें से कुछ प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं, जैसे हमें चीन के साथ सौदेबाजी में बर्मा की स्थिति मजबूत करने के लिए बर्मा के निकट आना चाहिए या नहीं।

मैं इस संभावना से इनकार नहीं करता कि हम पर दबाव डालने से पूर्व चीन बर्मा पर दबाव डाल सकता है। बर्मा का सीमांत अनिश्चित है जबकि चीन के सीमा संबंधी दावे अधिक पुष्ट तथा ठोस हैं। ऐसी स्थिति में बर्मा चीन के लिए एक सरल समस्या होने के कारण चीन के ध्यान का केंद्र बन सकता है।

मैं सुझाव देता हूं कि हम जल्द ही मिलें। इन समस्याओं पर सामान्य रूप से विचार–विमर्श करें। ऐसे कदम, जो हम जल्दी से जल्दी उठाना आवश्यक समझते हैं, उनका निर्धारण करें तथा अन्य समस्याओं तथा उनके समाधान के मूल्यांकन की भी उचित व्यवस्था करें।

——

गूंगी बहरी दुनिया और असहाय तिब्बत

—*लोकनायक* जयप्रकाश नारायण

तिब्बत का सवाल मेरे लिए शुरू से ही एक सीधा सादा सवाल रहा है। यह ठीक है कि यह सवाल अक्सर तरह—तरह के ऐतिहासिक और कानूनी विवादों की खींचतान में उलझा रहा है लेकिन मुझे यह सब काफी हद तक बेमानी लगता रहा है।

मैं तो इस सवाल को सीधे सादे दो हिस्सों में बंटा हुआ देखता हूं—राजनैतिक और मानवीय। खासतौर से दूसरे पहलू से दुनिया भर में सहानुभूति और रोष पैदा हुआ है। आपको याद होगा कि तिब्बती सवाल का यह वही पहलू था जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ का ध्यान अपनी ओर खींचा था। लेकिन दूसरा यानी राजनैतिक पहलू इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मानवीय पहलू इससे न केवल सीधा जुड़ा हुआ है बल्कि इस पर आधारित भी है। जब तक इस समस्या का राजनैतिक हल नहीं निकाल लिया जाता तब तक मानवीय समस्या लगातार एक त्रासदी से दूसरी त्रासदी का रूप लेती रहेगी।

पहले मैं समस्या के मानवीय पहलू पर विचार व्यक्त करना चाहूंगा। इस बात पर दूसरी राय नहीं रखी जा सकती कि चीनी कम्युनिस्ट सरकार ने तिब्बत के राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए वहशी और अमानवीय हथकंडों का इस्तेमाल किया है और इस बात पर तुली हुई है कि तिब्बती विरोध को खत्म करने के लिए किसी भी तरीके का इस्तेमाल किया जाए—भले ही वह तरीका कितना ही क्रूर और घटिया दर्जे का क्यों न हो। यह देखने के बाद कि तिब्बत को पूरी तरह गुलाम बनाने के रास्ते में बौद्ध धर्म, लामा और मठ—मंदिर बहुत बड़ी बाधा हैं चीनी शासन एक नियोजित तरीके से बौ(सामाजिक व्यवस्था और बौद्ध संस्थाओं को महत्वहीन करने और नष्ट करने का काम कर रहा है। इस काम के लिए बड़े पैमाने पर सामूहिक हत्याएं और वर्णन करने की क्षमता से भी बाहर अत्याचार किए गए हैं। तिब्बत को एक चीनी उपनिवेश बनाने के लिए तिब्बत के मूल तिब्बती चरित्र को चीनी रंग में रंगा जा सके। और यह सब हो रहा है एक ऐसे परदे के पीछे जो झूठ की बुनियाद पर खड़ा है लेकिन जिसे लांघा नहीं जा सकता।

vrjk"Vh; tkp vk;kx : कुछ समय पहले न्यायशास्त्रियों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग इंटरनेशनल कमीशन ऑफ जूरिस्ट्स ने एक विशिष्ट भारतीय न्यायशास्त्री श्री पुरुषोत्तम त्रीकमदास की अध्यक्षता में एक जांच आयोग बिठाया था जिसका काम था चीनी अत्याचारों की जांच करना। लेकिन इस जांच आयोग को तिब्बत में चीनियों द्वारा नहीं जाने दिया गया—ठीक वैसे ही जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ के कमीशन को हंगरी में नहीं जाने दिया गया था।

दुर्भाग्य की बात है कि विवाद और अंतर्राष्ट्रीय कूटनीतिक जोड़—तोड़ के कारण तिब्बत की समस्या के राजनैतिक पहलू को दबा दिया गया है। लेकिन फिर भी ऐसे कई तथ्य हैं जिनको कोई भी नकार नहीं सकता। इसमें किसी भी तरह के शक की गुंजाइश नहीं है कि तिब्बत हमेशा और लगातार एक स्वतंत्र देश रहा है तथा तिब्बती समाज अपने विशेष इतिहास, संस्कृति और राज्य व्यवस्था वाला एक

अलग देश रहा है। इस तथ्य को इस बात से कतई भी चुनौती नहीं दी जा सकती कि मंगोलियाई और मांचू काल के गैर चीनी साम्राज्यवादी विस्तारवाद के दिनों में तिब्बत पर चीन की एक तरह की अधिराज्यता थी। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि 1912 में तेरहवें दलाई लामा ने औपचारिक रूप से (दो वर्ष पुराने) चीनी नियंत्रण से तिब्बती आजादी की घोषणा की थी और 1950 तक तिब्बत एक आजाद देश के रूप में बना रहा। इस दौरान तिब्बती सरकार के अपने ही पासपोर्ट, अधिकारिक रूप से इस्तेमाल किए जाते रहे। उसकी अपनी डाक–तार व्यवस्था और मुद्रा तिब्बत में चलती रही। चीन–जापान युद्ध के दौरान तिब्बत ने किसी भी तरह इस युद्ध में हिस्सा नहीं लिया और वह इसमें तटस्थ बना रहा। ये सब बातें तिब्बत के एक सार्वभौमिक और आजाद देश के चरित्र को सिद्ध करती हैं।

frCcr ,d Lor= n'k Fkk % न्यायशास्त्रियों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में इन विषय पर संक्षिप्त में इस प्रकार कहा गया है–1912 से 1950 तक तिब्बत असल में एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा। इस दौरान तिब्बत पर चीन का किसी भी तरह का नियंत्रण नहीं था। वहां न तो चीनी कानून लागू होता था और न ही कोई चीनी जज या चीनी पुलिस थी। गलियों में न तो कोई चीनी अखबार था और न ही कोई चीनी सिपाही या चीनी सरकार का प्रतिनिधि। इस बात पर भी शंका नहीं की जा सकती कि 1951 के तथाकथित चीन–तिब्बत समझौते पर दलाई लामा को दबाव में डाल कर उनकी जबदस्ती हामी ली गई थी।

और अंत में अब तक की सभी घटनाओं को देखते हुए इस बात में शक की रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं रहती कि तिब्बत पर जबरदस्ती लादे गए चीनी शासन के खिलाफ तिब्बती जनता ने हर संभव तरीके से विरोध किया तथा दलाई लामा ने जब यह देखा कि समझौता करके चीन से निबटने की हर आशा नष्ट हो चुकी है तो उन्होंने भाग कर भारत में शरण ली।

लेकिन अभी इसके काफी प्रमाण मौजूद हैं कि तिब्बती जनता का यह विरोध अभी भी जिंदा है। इन सभी तथ्यों के आधार पर जिन दो नतीजों पर पहुंचा जा सकता है उनको कोई नकार नहीं सकता। ये हैं :–

1. तिब्बत एक स्वतंत्र देश था और इस पर चीन ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया।

2. तिब्बत को आजादी और आत्मनिर्णय का उतना ही हक है जितना दुनिया के किसी भी दूसरे देश को।

phuh nyhyk dk nkxykiu % चीन के तरफदार यह मानने को तैयार नहीं हैं कि तिब्बत को चीन ने हड़प लिया है। वे तो यह कहते हैं कि तिब्बत को 'मुक्त' कराया गया है। यहां फिर से वही सवाल उठता है जो प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने पूछा था–''किससे मुक्ति ?'' और इस सवाल का आज तक जवाब नहीं दे पाए वे लोग। वे इस बात से भी इनकार करते हैं कि तिब्बत को आत्म निर्णय का किसी भी तरह कोई हक है ; और इसकी ''मुक्ति'' को जायज ठहराने के लिए बार–बार तिब्बत के पिछड़ेपन की बात करते हैं। इस दोगले पन और मक्कारी के मुंह तोड़ जवाब में मैं सोवियत रूस की कोमिसारों के अध्यक्ष ब्लादिमीर लेनिन की उस घोषणा को दोहराऊंगा जो उन्होंने बोलशेविकों द्वारा सत्ता संभालने के दिन की थी। शायद चीनी तरफदारों की बात का इससे ज्यादा सटीक जवाब और कुछ नहीं हो सकता। इस घोषणा में कहा गया था:–

लेनिन की घोषणा : हमारी सरकार की राय यह है कि किसी बड़े और ताकतवर देश द्वारा किसी छोटे और कमजोर प्रदेश को अपने में मिलाया जाना जबरन कब्जा और हथियाने

की कार्रवाई है, भले ही वह छोटा देश, जिस पर जबरन हमला किया गया या उसे बड़े देश में शामिल किया गया, कितना ही विकसित या पिछड़ा हुआ क्यों न हों...

'किसी भी ऐसे देश को उसकी व्यक्त इच्छा के विरूद्ध यदि किसी दूसरे बड़े देश द्वारा जबरन अपने इलाके में शामिल कर लिया जाए ;भले ही यह इच्छा समाचार पत्रों के माध्यम से व्यक्त की गई हो या राष्ट्रीय असेम्बली, पार्टी के फैसले में या फिर इस गुलामी के विरुद्ध किए जाने वाले मुक्ति आंदोलन में, और उस देश की जनता को बिना किसी बंधन और कब्जा करने वाली या ज्यादा ताकतवर देश की सेनाओं की गैरमौजूदगी में स्वतंत्र मताधिकार के माध्यम से यह निश्चित करने की छूट न दी गई हो कि उन्हें किस तरह की सरकार चाहिए तो उस हालत में उस देश को बड़े व ताकतवर देश द्वारा अपने देश में शामिल किया जाना उस देश का हथियाया जाना और ताकत व हिंसा के बल पर कब्जा किया जाना जाएगा।''

आत्मनिर्णय के अधिकार के सिलसिले में कम्युनिज्म की दो बड़ी हस्तियों द्वारा की गई घोषणाओं को यहां फिर से याद दिलाना भी काफी रोचक और महत्वपूर्ण होगा।

ylfuu vkSj ekvks लेनिन की घोषणा है – *''यदि फिनलैंड, पोलैंड, यूक्राइन अपने आप को रूस से अलग कर लेते हैं तो इसमें कोई बुरी बात नहीं हैं। यदि कोई कहता है कि यह गलत है तो वह एक उग्रवादी है...।*

''कोई भी ऐसा देश आजाद नहीं रह सकता जो दूसरे देशों का दमन करता हो।'' और यह दूसरी घोषणा चीन के कियांग्सी सोवियत रिपब्लिक के संविधान में से है जिसे किसी दूसरे आदमी ने नहीं बल्कि स्वयं चेयरमैन माओ–त्से–तुंग ने 1931 में तैयार किया था।

न्यायशास्त्रियों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में इस विषय पर संक्षिप्त में इस प्रकार कहा गया है– 1912 से 1950 तक तिब्बत असल में एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा। इस दौरान तिब्बत पर चीन का किसी भी तरह का नियंत्रण नहीं था। वहां न तो चीनी कानून लागू होता था और न ही कोई चीनी जज या चीनी पुलिस थी ; गलियों में न तो कोई चीनी अखबार था और न ही कोई चीनी सिपाही या चीनी सरकार का प्रतिनिधि। इस बात पर भी शंका नहीं की जा सकती कि 1951 के तथाकथित चीन–तिब्बत समझौते पर दलाई लामा को दबाव में डाल कर उनकी जबरदस्ती हामी ली गई थी।

चीन की सोवियत सरकार इस तथ्य को मानती है कि चीन की अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को आत्मनिर्णय का अधिकार है, उन्हें यह भी अधिकार है कि वे चीन से अलग होकर अपने आप को अलग–अलग स्वतंत्र देशों के रूप में स्थापित कर सकें। सभी मंगोलों, तिब्बतियों, मियाओं, कोरियाइयों और चीनी क्षेत्र में रहने वाले दूसरे लोगों को आत्मनिर्णय का पूरा अधिकार रहेगा, अर्थात उन्हें यह छूट होगी कि वे चाहें तो चीनी सोवियतों के संघ में शामिल हों या फिर अलग से एक स्वतंत्र देश के रूप में रहें।''

सत्ता की कम्युनिस्ट राजनीति की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि चीन और रूस दोनों में ही इन आदर्श नियमों को ताक पर रख दिया गया है। सीधा सपाट सच तो यह है कि कम्युनिज्म अब एक क्रांतिकारी व्यवस्था नहीं रह गई है। और चीनी कम्युनिस्टों की हालत तो यह है कि वे मार्क्सवादी–लेनिनवादी होने के बजाए चीनी उग्र–राष्ट्रवादी और साम्राज्यवादी बनकर रह गए हैं।

, d FkkFkh nyhy : इन तथ्यों और देशों के आत्मनिर्णय के असंदिग्ध अधिकार के संदर्भ में यह देखकर बहुत दुख होता है कि चीनी तरफदारों के अलावा कुछ ऐसे लोग भी हैं जो चीनी अधिराज्यता

की दलील देकर तिब्बत से उसका जन्मसिद्ध अधिकार छीनना चाहते हैं। और इससे भी ज्यादा दुख की बात तो यह है कि ऐसे वे देश जिन्होंने अभी हाल ही तक अपनी आजादी के लिए संघर्ष किया और आजाद हुए, अब तिब्बत के सवाल पर साम्राज्यवाद के इस गले सड़े फार्मूले की आड़ लेकर तिब्बत से वह हक छीनना चाहते हें जिसे पाने के लिए वे खुद संघर्ष करते रहे हैं। समुद्र पार के साम्राज्यों को पहचानना तो बहुत आसान है लेकिन एक ही जमीन पर फैले उन साम्राज्यों की असलियत को पहचानना क्यों इतना कठिन हो रहा है जिनके विशाल साम्राज्य आसपास के पड़ोसी देशों के साथ मिलकर एक ही देश होने का छलावा पैदा करते हैं?

Hkkjr&fcVu&frCcr : एक हिंदुस्तानी होने के नाते मैं और कुछ तो नहीं लेकिन इस बात पर बस दुख ही प्रकट कर सकता हूं कि तिब्बत पर तथाकथित चीनी अधिराज्य के विचार को बढ़ावा देने में भारत ने विशेष सहयोग दिया। कहा जाता है कि हमने तो केवल इस इलाके में ब्रिटिश नीति का ही पालन किया है। लेकिन ब्रिटिश नीति तो साम्राज्यवादी दिमाग की पैदावार थी और उसे तय करने के पीछे असली कारण था रूसी प्रभाव के विस्तार का डर न कि चीन का कोई तर्कसंगत दावा। फिर भी यहां यह याद रखना जरूरी है कि तिब्बत पर चीनी अधिराज्यता के ब्रिटिश फार्मूले के अनुसार यदि चीन तिब्बत की स्वायत्ता का आदर करने से इनकार कर देता है तो चीन को तिब्बत में किसी भी तरह के निश्चित अधिकार नहीं। ऐसे संकेत मिले हैं कि ब्रिटिश सरकार इस मामले पर नए सिरे से विचार कर रही है। शायद अमेरिका और कुछ दूसरे देशों में भी ऐसा ही हो रहा है। शायद नई दिल्ली में भी इस मुद्दे पर दोबारा विचार किए जाने की संभावना बन रही है। 2 फरवरी, 1960 को भारत सरकार ने 1914 के शिमला समझौते का हवाला देते हुए चीन को लिखा हैः–

''यह पहला मौका नहीं था जब तिब्बत ने दूसरे देशों के साथ एक स्वतंत्र देश की हैसियत से बातचीत की और समझौते किए। 1914 से पहले भी कई अवसरों पर तिब्बत ने दूसरे देशों के साथ बातचीत की और समझौते किए। उदाहरण के लिए 1856 में तिब्बत ने नेपाल के साथ और 1904 में ग्रेट ब्रिटेन के साथ समझौते किए। इन समझौतों पर कभी भी चीन ने आपत्ति नहीं की और इन पर पूरी तरह अमल भी होता रहा। शिमला समझौते में (1914) तिब्बती और चीनी अधिकारी बराबरी के दर्जे पर मिले और इस स्थिति को चीनी सरकार ने पूरी तरह बिना किसी विरोध के स्वीकार किया। 13 अक्तूबर, 1914 को सम्मेलन में तीनों प्रतिनिधियों ने अपने–अपने परिचय पत्रों का आदान–प्रदान किया था। दलाई लामा द्वारा तिब्बती प्रतिनिधि को जारी किए गए परिचय पत्र से यह स्पष्ट होता है कि सम्मेलन में तिब्बत बराबरी के स्तर पर शामिल हुआ था और उसके प्रतिनिधि को ऐसे विषयों पर फैसला करने का अधिकार था जो तिब्बत के हित में हो। सम्मेलन में चीनी प्रतिनिधि ने तिब्बती प्रतिनिधि के परिचय पत्र को सही पाया था और उसे स्वीकार भी किया था। तत्कालीन ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि के दस्तावेजों, जिन्हें चीनी प्रतिनिधि भी अपनी स्वीकृति दी थी, में भी यह सिद्ध किया गया था कि सम्मेलन में भाग लेने वाले तीनों प्रतिनिधिमंडलों का बराबर का दरजा था और वे लोग ''विभिन्न सरकारों के आपसी संबंधों को सुनिश्चित करने के लिए उस सम्मेलन में शामिल हो रहे थे।''

इन सभी तथ्यों से एक ही बात सिद्ध होती है और वह यह है कि तिब्बत चीन का एक 'क्षेत्र' नहीं था बल्कि एक अलग देश था जिसकी अपनी एक सरकार थी जो चीन सरकार की बराबरी के स्तर पर काम करती थी और ये तथ्य कम महत्व वाले नहीं हैं। इनका मतलब देर सबेर स्वीकार करना ही होगा।

u, flj ls fopkj : खैर कुछ भी हो, इस सबसे यह मतलब नहीं निकाला जा सकता कि क्योंकि भारत और ब्रिटेन तिब्बत के सवाल से सबसे अधिक जुड़े हुए हैं इसलिए दूसरे देशों को भी इस सवाल पर वही करना चाहिए जो ये दोनों देश कर रहे हैं। इस संदर्भ में यह पूरे जोर से कहा

जा सकता है कि क्योंकि इस सवाल पर इन दोनों देशों की अपनी पुरानी प्रतिबद्धताओं के कारण अपनी सीमाएं हैं इसलिए दूसरे देशों को केवल गुण दोष के आधार पर अपना फैसला लेना चाहिए। आखिरकार तटस्थता और स्वतंत्र निर्णय लेने की नीति का भी यही तो तकाजा है। किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि किसी दूसरे के लिए परेशानियां पैदा करे। लेकिन यदि ऐसा होता है और हम इस दिशा में बढ़ने लगते हैं तो यह निश्चित है कि हम शीत युद्ध में उलझ कर ही रहेंगे। इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि एकदम नए सिरे से और बिना किसी दबाव के इस सवाल पर कोई रवैया अपनाया जाए। और शायद ऐसा करने से भारत और ब्रिटेन दोनों ही अपने आप को उस दुविधा और कठिनाई से छुटकारा दिला सकेंगे जिसमें वे आज फंसे हुए हैं।

इन दिनों जबकि आने वाली शिखर वार्ता के बारे में लोग आशाएं लगाए बैठे हैं लोग इस बात के लिए उत्सुक हैं कि कोई ऐसी बात न होने पाए जिससे वातावरण खराब हो। यह उत्सुकता स्वाभाविक है लेकिन इसके साथ यह समझ लिया जाना भी जरूरी है कि यदि अंतर्राष्ट्रीय गलतियों को रफा दफा करने की नीति अपनाई जाती है तो इससे उन लक्ष्यों की हानि होगी जिनके लिए बड़े नेता मिल रहे हैं।

निरस्त्रीकरण के बारे में भी आजकल खूब बात हो रही है। इसका स्वागत किया जाना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही यह भी समझना जरूरी है कि वास्तविक निरस्त्रीकरण का परिणाम यह होना चाहिए कि उपनिवेशवाद किसी भी रूप में जीवित न रह पाए। निरस्त्रीकरण और देशों को अपने बारे में आपने आप फैसला करने की नीतियां साथ–साथ चलनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शांति और अंतर्राष्ट्रीय न्याय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

अब वह दुनिया नहीं रही जिसमें कभी जंगल का कानून चलता था। भले धीरे–धीरे ही सही लेकिन निश्चित रूप से एक ऐसी विश्व व्यवस्था बन रही है जो डंडे से नहीं बल्कि सचाई पर आधारित होगी। हालांकि यह सपना अभी बहुत दूर है लेकिन उसका स्वरूप अंधेरे को चीरकर धीर धीरे उजागर होने लगा है।

—

चीन की चुनौती हमें स्वीकार है

–जवाहर लाल नेहरू

भारत पर चीनी हमले के बाद लोकसभा में 8 नवंबर, 1962 का वक्तव्य

पांच वर्षों से हम अपनी उत्तरी सीमा पर चीनी हमले के शिकार हो रहे हैं। पहले यह हमला चोरी–छिपे था। कभी–कभार की उन घटनाओं और मुठभेड़ों को सीमा के मामूली झगड़े कहा जा सकता था। लेकिन आज बड़ी भारी सेना हमारे क्षेत्र पर लगातार हमला कर रही है।

जो चीन अपने को साम्राज्यवाद का विरोधी कहता था और अब भी कहता है, वह आज ऐसा रास्ता अपना रहा है जिसकी मिसाल 18 वीं और 19 वीं शताब्दी में ही मिल सकती है। उन दिनों यूरोप के शक्तिशाली देशों ने साम्राज्यवादी आक्रमण द्वारा, औद्योगिक क्रांति से प्राप्त शक्ति और शस्त्रास्त्रों के बल पर, एशिया और अफ्रीका के अधिकांश भाग जबर्दस्ती हथिया लिए थे। वह साम्राज्यवाद अब मद्धम पड़ गया है और यूरोपीय देशों के अनेक उपनिवेश स्वतंत्र हो चुके हैं। परंतु आश्चर्य है कि साम्राज्यवाद–विरोधी होने का दम भरने वाली चीन की जनवादी सरकार अब उसी आक्रामक और साम्राज्यवादी विस्तार का रवैया अपना रही है।

यह सोच कर दुख होता है कि हमने तो दुनियाभर में शांति–स्थापना के लिए कोशिश की और चीन से मित्रता की तथा उसके साथ शिष्टता एवं सद्भाव का बर्ताव किया और दुनिया की परिषदों में उसकी पैरवी की, पर आज हम एक ऐसे देश के नए साम्राज्यवाद और विस्तारवाद का शिकार हो रहे हैं, जो अपने को साम्राज्यवाद–विरोधी कहता है। इतिहास के इस अजीब मोड़ ने हमारा सामना एक ऐसी बात से करा दिया है, जिसका अनुभव हमें पिछले 100 वर्षों से भी अधिक समय से नहीं हुआ था। हमने यह मान लिया था कि हाल के वर्षों में घटी कुछ घटनाओं के बावजूद – जैसे, स्वेज का मामला – इस प्रकार का हमला विगत काल की वस्तु है। यहां तक कि पिछले पांच वर्षों से हमारी सीमा पर जो हमला हो रहा था, वह यद्यपि बुरा था, विस्तारवादी प्रवृत्ति का सूचक था, उससे हमें बहुत तकलीफ पहुंच रही थी, फिर भी हमने नहीं सोचा कि चीन भारत पर इस तरह बड़े पैमाने पर आक्रमण करेगा। अब हमने यह हमला देख लिया है और इसका अनुभव प्राप्त कर लिया है। इससे हमें धक्का पहुंचा है और इसी प्रकार अनेक देशों को पहुंचा है।

bfrgkl dk u;k ekM : एशिया के और संभवतः पूरी दुनिया के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया है, और हमें अपनी स्वतंत्रता और अखंडता पर हुए इस हमले का पूरी ताकत से मुकाबला करना होगा। इससे न केवल हमारे लिए खतरा पैदा हुआ है, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सद्व्यवहार पर भी इससे चोट पहुंची है, और सारी दुनिया पर इसका असर पड़ा है। कोई भी स्वाभिमानी देश, जो अपनी स्वतंत्रता और अखंडता से प्रेम करता है, इस चुनौती के आगे घुटने नहीं टेक सकता। निस्संदेह, हमारायह प्यारा देश भारत भी अपना सिर कभी नहीं झुकाएगा, चाहे कुछ भी हो। हम इस चुनौती को इसके सारे नतीजों के साथ स्वीकार करते हैं।

संभव है, यह चुनौती हमारे लिए एक अच्छा मौका साबित हो। वास्तव में, भारत के करोड़ों लोगों ने दिखा दिया है कि वे इस चुनौती को स्वीकार करते हैं; उन्होंने ऐसी एकता और उत्साह दिखाया

है, जो बहुत कम देखने में आता है। एक संकट सामने आया है, हम उसका मुकाबला करने को खड़े हुए हैं। हमें उसका मुकाबला करना है।

e|degku&j|[kk % nh?kdky l| ekU;rk ikIr rF; % हमने पहले ही अनेक प्रमाण दिए हैं कि हमारी सीमा वह है जिसे मैकमहोन–रेखा कहा जाता है। परंतु यह रेखा श्री मैकमहोन ने नहीं बनाई थी। इस रेखा के द्वारा तो दीर्घकाल से स्वीकृत उस सीमा को मान्यता दी गई थी जो हिमालय की ऊंची चोटियों से बने जल–विभाजक द्वारा दोनों देशों को अलग–अलग करती है। कुछ हद तक, अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, चीनियों ने यह सीमा रेखा स्वीकार की। उसने निश्चय ही बर्मा के साथ इस रेखा को माना। और यदि वैधानिक या कानूनी पक्ष को अलग रख दें, तो भी यह बात निर्विवाद और सच है कि चीनी कभी उस रेखा के इस ओर नहीं आए–सिवाय सीमा के एक छोटे से गांव लांगजू के। इस बात को सदन जानता है।

चीनियों ने जिस मैकमहोन–रेखा को अवैधानिक कहा है, वह 48 वर्ष पहले, 1914 में निर्धारित की गई थी। यह भाग काफी लंबे अर्से से भारत का अंग है। विगत इतिहास भी इसे भारत का भाग बताता है। इस प्रकार, पिछले 50 वर्षों से यह रेखा हमारी उत्तरी सीमा मानी गई है। मैं केवल बहस के लिए ही वर्षों की संख्या कम करके 50 कह रहा हूं। वास्तव में, यह तो उससे भी पहले से चली आ रही थी। यदि चीनियों ने इसे स्वीकार न किया हो, तो भी मैं यह कहना चाहता हूं कि 1914 में इस संधि के बारे में उन्होंने जो आपत्ति उठाई भी थी, वह मैकमहोन–रेखा के बारे में नहीं थी; वह आपत्ति संधि के दूसरे खंड के बारे में थी, जिसके अंतर्गत आंतरिक तिब्बत और बाहरी तिब्बत को विभाजित किया गया था। उसमें मैकमहोन–रेखा नहीं थी। यह सत्य होने पर भी कि चीन ने अन्य आपत्तियों के कारण पूरी संधि पर आपित्त उठाई थी, यह रेखा पिछले पचास वर्षों से हमारे नक्शों में मौजूद है, हम इसे व्यवहार में लाते रहे हैं। यह हमारे संविधान में मानी गई है और हमारे प्रशासन, आदि सभी कार्मों में मानी जाती है।

मैं स्पष्ट कहूं कि तथ्यों को तोड़ने–मरोड़ने और झूठ को सच दिखाने के चीनियों के प्रयास से मुझे हैरानी हुई है, क्येंकि वे जो कुछ कह रहे हैं, उसका कोई आधार नहीं है। इन सब वर्षों में हम मैकमहोन–रेखा तक रहे हैं, उससे एक इंच भी आगे नहीं बढ़े हैं, और न ही हमने किसी दूसरे की भूमि की ओर लुब्ध दृष्टि से देखा है। एक क्षण के लिए उनकी ही बात मान लें कि मैकमहोन–रेखा वस्तुतः कहां है, इस बारे में संदेह की गुंजाइश है। लेकिन वास्तविकता यह है कि उन्होंने एक ऐसे क्षेत्र पर हमला किया है, जो किसी भी समय, इतिहास के पिछले दस हजार वर्षों में, कभी उनके हाथ में नहीं रहा। चीन की वर्तमान सरकार आज से लगभग 12 वर्ष पहले बनी। अतः इस क्षेत्र पर जो भी दावा किया गया है, वह केवल 12 वर्षों में ही बना हो सकता है और उससे पहले तिब्बत के माध्यम से। इसलिए प्रश्न यह है कि वे तिब्बत के जरिए या तिब्बत पर आधिपत्य के जरिए क्या दावा पेश कर सकते हैं? यह सही है कि पहले काफी समय तक, ब्रिटिश राज के समय भी, तिब्बत और भारत के बीच सीमा के बारे में कुछ विवाद था। लेकिन यह विवाद बहुत थोड़े–से बिखरे हुए छोटे–मोटे टुकड़ों के लिए या छोटे–मोटे सीमांत क्षेत्रों के लिए ही था। पहले कभी किसी ने, तिब्बत की किसी भी सरकार ने, इतने बड़े क्षेत्र पर दावा नहीं किया, जैसा कि अब उत्तर–पूर्व सीमांत एजेंसी के दो–तिहाई हिस्से पर और लद्दाख के भी एक बड़े हिस्से पर किया जा रहा है।

अतः हम एक ही नतीजे पर पहुंचते हैं, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वह यह कि चीन ने एक बड़ी भारी फौज इस क्षेत्र में भेजी है– उस क्षेत्र में, जो बहुत दीर्घ काल से भारत में रहा है और जिस पर भारत का ही शासन रहा है। अगर उनका कुछ दावा था, तो वे इस बारे में हमसे बातचीत

कर सकते थे, या कोई और शांतिपूर्ण तरीका अपना सकते थे, किसी को मध्यस्थ बना सकते थे, या हेग की अदालत में जा सकते थे।

यह कहना कि हमने चीन पर हमला किया है, एक दुरंगी चाल है, जिसे मेरे जैसे सीधे–सादे आदमी के लिए समझ सकना मुश्किल है। क्या यह संभव है कि हम अपने ऊपर ही, अपने देश की जमीन पर ही, हमला करें और वे हमारे क्षेत्र के पहाड़ों पर से उतर कर उसकी रक्षा करें? अजीब बात है, लोग अपनी करतूतों को न्यायसंगत बताने के लिए किस हद तक जा सकते हैं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि चीन की वर्तमान सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। माननीय सदस्यों को आश्चर्य होता है जब हम संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सरकार को प्रतिनिधित्व दिलाने की वकालत करते है। वर्तमान हमले के बावजूद हमने इस बात की वकालत की है, क्योंकि हम समझते हैं कि यह हमारी पसंद–नापसंद का सवाल नहीं है; सवाल यह है कि किस तरह दुर्व्यवहार का अंत होगा तथा निरस्त्रीकरण संभव हो सकेगा। यह बात गलत है कि आप सारी दुनिया में तो निरस्त्रीकरण कर दें और चीन जैसे बड़े देश को हथियारों से लैस रहने दें। अतः चीन के हमले से गुस्सा और खीझ होने के बावजूद हमने उसकी वकालत की है और अब भी करते हैं। मुझे खुशी है कि हमने सारा काम एक पृष्ठभूमि सामने रख कर किया और कर रहे हैं। एक दिक्कत यह है कि आप चीन को दुनिया की किसी भी अदालत में नहीं बुला सकते। चीन एक बिलकुल गैर–जिम्मेदार देश है और वह किसी भी झगड़े को निबटाने के लिए लड़ाई में विश्वास करता है। शांति से उसे कोई लगाव नहीं है। मैं कुछ लोगों की तरह कम्युनिज्म के समर्थन या कम्युनिज्म के विरोध ा के प्रश्न में नहीं पड़ता। मेरे विचार में यह इस अथवा अन्य किसी भी मामले में कोई बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यह है कि एक विस्तारवादी और साम्राज्यवादी देश जान–बूझ कर हमारे देश पर हमला कर रहा है।

तो, वर्तमान संकट हमारी किसी कार्रवाई के कारण या हमाारे चाहने से पैदा नहीं हुआ है। यह तो चीन ही है,जिसने क्षेत्र संबंधी अपने दावों को सैनिक बल से पाने की कोशिश की है। वास्तव में चीनी फौजें उस रेखा से आगे बढ़ आई हैं, जहां तक चीन ने अपना प्रदेश होने का दावा किया था। जैसा कि मैं कह चुका हूं, चीन की सीमा उसकी फौजों के साथ आगे बढ़ती रहती हैं। जितना प्रदेश में दबा लेते हैं, वहां तक उनकी सीमा बन जाती है।

——

frCcr] phu vkj fgnLrku

–डॉ. राममनोहर लोहिया

2 जनवरी, 1963 को दिल्ली में दिए गए भाषण से

तिब्बत की बात तो कई बार मैं दोहरा चुका हूं। उसे तो खाली गिना देता हूं। एक, भाषा, दूसरे, लिपि, तीसरे रहन–सहन, चौथे, धर्म, पांचवें, जमीन का ढलाव, छठे, इतिहास, सातवें, लोक इच्छा। इन सातों कसौटियों पर तिब्बत चीन का हिस्सा हरगिज नहीं है। चीन से ज्यादा हिंदुस्तान के नजदीक है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि तिब्बत हिंदुस्तान का अंग है। लेकिन तिब्बत का और हिंदुस्तान का बिलकुल नजदीकी संबंध है। अगर मोटी, बाजारू भाषा में मुझे कहना पड़े तो तिब्बत, तिब्बत है, स्वतंत्र है, उसका अपना ढंग है, उसके लोगों की स्वतंत्र रहने की इच्छा है। वही सबसे बड़ा सत्य है।

तिब्बत के लोग स्वतंत्र रहना चाहते हैं। उनका इलाका कोई पांच लाख वर्ग मील का है। उनकी आबादी कोई 40–50 लाख की है। वह कोई छोटा–मोटा इलाका तो है नहीं। स्वतंत्र रहना चाहते हैं; उनको स्वतंत्र रहना चाहिए। लेकिन उसके बाद दूसरे नंबर का सवाल उठता है कि तिब्बती किसके ज्यादा नजदीक हैं। अस्सी सैकड़ा वे हिंदुस्तानियों के नजदीक हैं तो मुश्किल से पंद्रह–बीस सैकड़ा वे चीनियों के नजदीक होंगे। इसके ज्यादा उनका चीन से कोई ताल्लुक है नहीं।

जब तक इतिहास पर एक लंबी दृष्टि से सोच–विचार नहीं करेंगे, बड़ी चीज को पकड़ नहीं पाएंगे। पिछले हजार बरसों में हिंदुस्तान गिरा हुआ रहा, पिटा हुआ रहा है। गुलाम रहा है, कमजोर रहा है।....क्या इनके सबब रहे उसे छोड़ दीजिए। हम यह मान कर चलें कि पिछले हजार बरस में हिदुस्तानी नपुंसक रहा है और परदेशी अपनी ताकत से इस मुल्क को गुलाम बनाता रहा है। बाबर आता है परदेशी शक्ल में तो फतह करता है मुल्क को, और तैमूर लंग का तो कहना ही क्या! और जब बाबर की औलाद बहादुरशाह की शकल में देशी बन जाती है तो शायरी करने के सिवाय उसके पास और कुछ रह ही नहीं जाता। देशी और परदेशी की यह लड़ाई रही और इस हजार बरस में जो कुछ भी हिमालय के बारे में हुआ है –संधियां, लड़ाई या हिमालय के ऊपर राजकीय अधिकार, उसका उदाहरण बनाकर यह कहना कि यह हिमालय की शक्ल है, निहायत गंदी बात होगी। पिछले हजार बरस को ही क्यों देखा जाए? क्यों न पिछले दो–तीन हजार बरस को देखा जाए, चार हजार बरस को देखा जाए? आखिर पिछले हजार बरस में चंगेज खां भी तो हुए हैं। उसका अलावा चीनी राजाओं की कभी ताकत रही वे आगे बढ़े, हमारे हिमालय की तरफ भी किसी–किसी जमाने में आए। और हम हिंदुस्तानी पिछले हजार बरस में कभी भी अपने मुल्क के बाहर की बात सोचने के लायक थे ही नहीं। मुल्क के अंदर की बातों में ही इतना फंसे रहते थे कि हमेशा हमको गुलामी से बचने के लिए तैयार रहना पड़ता था, लड़ाई करनी पड़ती थी। यह रही हिंदुस्तान की हालत। मैं अर्ज करूंगा कि पिछले हजार बरस के इतिहास और सुलहनामों को कोई भी हिंदुस्तानी कभी उदाहरण के रूप में न ले। यह बड़ी भारी गलती होगी, अगर वह लेगा।

तिब्बत और चीन के मामलों में जितने भी सुलहनामे हैं, उनसे एक बात तो यह साबित होती है कि चाहे 10–15–20 बरस के लिए ही सही क्यों न हो, तिब्बत ने चीन के ऊपर राज किया। अगर सुलहनामों को ही आप आधार बनाना चाहते हों तो क्यों न चीन को तिब्बत के मातहत बना दिया जाए? दूसरे, यह बात साबित होगी कि जो कोई सुलहनामे मिलते भी हैं तिब्बत और चीन के संबंध बताने वाले,

तो वे सिर्फ इतना बताते हैं कि तिब्बत का राज चीन को किसी प्रकार की भेंट दिया करता था। उसे सत्ता नहीं, एक तरह का दूर का आधिपत्य कहा जा सकता है। अंदरूनी मामलों में कोई मतलब रहता नहीं था तिब्बत के राज से, उस वक्त भी जब चीन की ताकत ज्यादा होती थी। अंदरूनी मामलों में बिलकुल नहीं, विदेशी मामलों में भी नहीं क्योंकि तिब्बत न जाने कितनी संधियां की हैं दूसरे देशों से – बिना चीन के रहते हुए, या चीन जिसमें दखल नहीं देता था।

vxzth fons'kh uhfr % इसी सिलसिले में एक बात और ध्यान देने लायक है। हिंदुस्तान में अंग्रेजों ने तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता, इसलिए मानी कि चीन का राजा कमजोर, नपुंसक था। इसलिए उसकी सत्ता मान ली और उस सत्ता का इस्तेमाल उन्होंने खुद किया। तिब्बत के ऊपर इनका सिक्का चलता था। अंग्रेजों का तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता मान लेना कोई भी मतलब नहीं रखता । यह तो 19वीं सदी की होड़ का नतीजा रहा है। उनके अपने अंतर्राष्ट्रीय रिश्तों को चलाने के तरीकों का नतीजा रहा है।

और जब चीन वाले कहते हैं कि यह मैकमोहन रेखा अंग्रेजों की बनाई हुई है, साम्राज्यशाही रेखा है तो मैं खुद भी कहता हूं कि यह साम्राज्यशाही रेखा है, मैकमोहन रेखा उसकी असली रेखा नहीं, असली रेखा बनानी है तो कहीं और बनेगी।....

dSyk'k & ekuljkoj % इस मैकमोहन रेखा के मामले में कैलाश–मानसरोवर वगैरह का भी प्रश्न है। कौन कौम हैं जो अपने बड़े देवी–देवताओं को परदेश में बसाया करती है? छोटे–मोटे को बसा भी दे लेकिन बड़ो को, शिव और पार्वती को परदेश में बसाएं? यह कभी हुआ है? शिव –पार्वती के किस्से कब गढ़े गए? मैं तो बिलकुल एक आधुनिक आदमी की तरह बोल रहा हूं। हो सकता है कि कुछ आधुनिक लोग कहें कि अंतर्राष्ट्रीय बहस में, कूटनीति की बहस में शिव–पार्वती को क्यों लाते हो? मैं मानकर चलता हूं कि ये किस्से कभी भी गढ़े गए, कभी भी ये किस्से बनाए गए – हिंदुस्तानियों ने बनाए। कब बनाए इसके ऊपर तहकीकात करो। मान लो 400–500 बरस पहले बनाए या 4–5 हजार बरस पहले। जब भी ये किस्से बनाए गए तब कैलाश और मानसरोवर भारत का हिस्सा जरूर रहा होगा। तभी तो कैलाश और मानसरोवर में इन बड़े देवी देवताओं को बसाया, नहीं तो और कहीं बसाते। खाली पिछले 2–3 बरस की टूटी–फूटी, सड़ी किसी संधि को, दस्तावेज को लेकर साबित कर देना कि तिब्बत चीन के साथ जुड़ा हुआ है, यह कोई मतलब नहीं रखता है। आखिर जमीन के ढलाव जैसे सबब जो होते हैं उनके ऊपर हिंदुस्तानी और चीनी अफसरों ने बड़ी लंबी–चौड़ी बातें की हैं। वह इलाका ले लो जहां की नदियां चीन की तरफ बहती हैं, वह तो बिलकुल साफ कैलाश और मानसरोर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र का इलाका है।

एक –चीज से आप जरूर बचकर रहना हि हिमालय के बारे में एक गलतफहमी चीनियों ने बड़ी अच्छी तरह फैलाई। असल में ष्शुरुआत उन्होंने नहीं की, शुरुआत तो की है दूसरो ने। जो यह क्रिस्तान पादरी हुआ करते थे – बड़े लायक हुआ करते थे। कोई–कोई इतिहास भी पढ़ा करते थे, किताबें भी लिखते थे। उन्होंने खोज–खोज कर एक बात को निकाला कि हिमालय के इलाके में मंगोल लोग बसते हैं। हम भी इसी इतिहास को पढ़ते हैं। हमारे बच्चों को करीब–करीब हर स्कूल, कॉलेज में क्या सिखया जाता है? बताया जाता है कि आर्य, मंगोल, द्रविड़ ये सब जातियां थीं जो अलग–अलग इलाकों में बसी हुई हैं – और इधर–उधर फैलती हैं और हिमालय के इलाके में जो लोग बसे हुए हैं – नेपाली या तिब्बती या मोनपा या अभेर या डाफला – इन सबको मंगोल नाम दिया जाता है और हम 45 करोड़ हिंदुस्तानी भी इस गलतफहमी के शिकार बन जाते हैं। प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखते हैं कि चीनी का पीला रंग, चपटी नाक और तिरछी आंखें। हिमालय के उन लोगों को छोड़ दीजिए जो भारतीय हिमालय

के, कश्मीर के या कुछ हिमालय प्रदेश और पंजाब के इलाके में पड़ते हैं, लेकिन ज्यादातर ये तिरछी आंख और चपटी नाक और पीले रंग ने इतना सितम ढाया है हिंदुस्तानी दिमाग के ऊपर कि यह सोच बैठा है कि हिमालय तो ऐसे लोगों से बसा हुआ है जो कि चीनियों के साथ ज्यादा नजदीक है।...

वास्तव में देखा जाए तो हिमायल के इलाके में जो लोग बसते हैं उनका चीनियों के साथ शारीरिक संबंध भी करीब–करीब नहीं है। दिमागी तो है ही नहीं। लिखावट, भाषा का है ही नहीं, लेकिन शारीरिक संबंध तक भी नहीं है।

हिमालय के बारे में कालिदास ने कुमार संभव में जो दो सबसे पहले श्लोक लिखे हैं, वे श्लोक हैं हिमालय की तपस्या के बारे में। देवालय तो नहीं लेकिन सारी दुनिया के लिए हिमालय की कितनी जबर्दस्त जगह रहती है उसके बारे में। उसका अर्थ मैं पहले बता देता हूं, फिर श्लोक दूंगा। उत्तर दिशा में एक पर्वराज है। जिसका नाम है हिमालय, जो पूर्व और पश्चिम के समुद्र में इस तरह गोता लगाए हुए बैठा है जैसे दुनिया को नाप रहा हो, जिसके हजारों अनंत किस्म के धर्म हैं, रत्न है, फिर भी एक दोष जो उसकी तकदीर को खराब करता है, नहीं जाता वह है बर्फ, हिम, जिससे उसका नाम पड़ा हिमालय। लेकिन अगर गुणों का समूह इकट्ठा हो जाए – सब गुण ही गुण हों – तो एक दोष के होने से कुछ बिगड़ता नहीं, जैसे चंद्रमा की किरणें आती हैं तो उसके एक दोष को, धब्बे को, वे छिपा लिया करती हैं।

मैंने कई बार अध्यापकों से कहा कि आप कोशिश करो, पता लगाओ, चीनी साहित्य में, वांड. मय में, चीनी कथाओं–किवंदंतियों में भी, कि हिमालय के लिए कुछ है क्या? कोई कविता इस ढंग की है, इस पैमाने की है या इस तरह के किस्से कहानियां हैं? अभी तक किसी ने वह मुझको ढूंढ़ कर नहीं दिया। शायद है भी नहीं। इस पैमाने का तो खैर है ही नहीं, लेकिन कोई छोटे पैमाने का भी नहीं है। अगर कोई हिंदुस्तानी विद्यार्थी या प्रोफेसर इस काम को करे तो बड़ा अच्छा होगा। एक तरफ तो पिछले 3–4 हजार बरस का हिमालय का हिंदुस्तानी दिमाग के लिए स्थान, और दूसरी तरफ चीनी दिमाग के लिए हिमालय का स्थान, इसका पता चलेगा। मेरा जो ख्याल है वह बिलकुल साबित हो जाएगा कि चीन का हिमालय के साथ संबंध बहुत कमजोर है और वह चंगेज खां और कुबलाई खां जैसों तक ही सीमित है। वे श्लोक हैं :अस्त्युत्तरस्या दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदंडः।
अनंत रत्न प्रमवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्।
एकौ हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्यतींदोः किरणोष्विवांक्।

अब इस हिमालय की रक्षा करने की बारी आ गई।...अभी जो पिछले ढाई–तीन महीनों में चपत खाई है, उसके और सबब न बताकर खाली इतना कहूं कि हिंदुस्तानी दिमाग में सरकार ने खासतौर से और जनता ने भी, इस हिमालय की अवहेलना की है जो हिमालय हमारे साहित्य, हमारी किंवदंती, हमारी कथाओं, हमारे देवालयों के साथ जुड़ा हुआ है।

और लद्दाख के इलाके पर जब दूसरी बार चीन ने कब्जा किया, और सिंक्यांग और तिब्बत में सड़क बनाने के लिए लद्दाख का इस्तेमाल किया, तब दिल्ली सरकार के अफसरों ने क्या कहा था? वह जुमला भी अपने मुंह से निकालना बहुत ही गंदी चीज है। मैं समझा नहीं सकता कि किसी हिंदुस्तानी के मुंह से वह जुमला कैसे निकल सकता है, सो भी प्रधानमंत्री के मुंह से। वह था कि लद्दाख का कुछ इलाका जो चीनियों के कब्जे में चला गया है, वह पथरीला है, ऊसर है, और उस पर घास की एक दूब तक उगती नहीं। इसमें कई दोष हैं। एक दोष हो और कई गुण हों तो वह छिप जाता है।

इसमें तो दोष ही दोष हैं। मातृभूमि का कोई भी टुकड़ा परदेशियों के हाथ में चला जाए तब उसके बारे में निरादर के शब्द कहना सपूत का नहीं, कपूत का काम है। जब यह परदेशियों के कब्जे में न रहे, अपना हो, स्वतंत्र हो, खुदमुख्तारी वहां पर हो, तब उसको सुधारने के लिए जो भी आप बोलो, लेकिन जब वह परदेशियों के कब्जे में चला जाए उस वक्त उसका निरादर करना क्या मतलब रखता है.?

हिमालय की रक्षा करना ताकत का सवाल है। यह ताकत किस तरह की होगी, कब आएगी यह बात अलग है लेकिन कम से कम हम अपना दिमाग तो बनाए कि हिमालय हमारा कौन लगता है? अगर हमारे दिमाग में वह फितूर बना रह गया – तिब्बत वाला, अंग्रेजी साम्राज्यशाही के दस्तावेजों वाला, मंगोल वाला या यह कि एक उधर वाली ताकत के साथ दोस्ती रखने के लिए इन सब सच्चे मामलों के ऊपर पर्दा डाल देना हो, तब हिमालय पर कुछ भी सोच–समझ नहीं पाएंगे।

——

दो आखिरी खत

इसे संयोग कहा जाए या कुछ और। भारत के दो ऐसे वरिष्ठ और प्रबुद्ध नेताओं के जीवन के अंतिम व्यक्तिगत पत्रों का विषय तिब्बत ही था। पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू को तिब्बत अपने शरणार्थियों के पुनर्वास और संस्कृति के नवनिर्माण में विशेष योगदान के लिए याद रखेगा और लोकनायक जयप्रकाश नारायण को विश्वमंच पर तिब्बत की आजादी की अलख जगाने के लिए। – संपादक

पं. जवाहर लाल नेहरू

भारत के पहले प्रधानमंत्री

'नेशनल–इंटिग्रेशन' के संपादक व तत्कालीन संसद सदस्य डा. गोपाल सिंह के नाम उक्त पत्रिका के तिब्बत–विशेषांक 'स्वाधीनता अंक 1964' के लिए भेजा गया यह संदेश स्व. श्री नेहरू के जीवन का अंतिम पत्र था।

देहरादून, 24 मई, 1964

प्रिय डा. गोपाल सिंह जी,

संदर्भ : आपका पत्र दिनांक 20 मई,

वर्तमान परिस्थितियों में मुझे यह स्पष्ट नहीं है कि हम लोग तिब्बत के बारे में क्या कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में तिब्बत पर प्रस्ताव लाना कुछ खास लाभकारी नहीं होगा क्योंकि चीन का वहां प्रतिनिधित्व नहीं है। **frCcr e tk dN gvk g mld ifr ge ykx mnklhu ugh gA yfdu bl ckj e dN iHkko'kkyh dj iku dh fLFkfr e Hkh ugh gA**

आपका शुभ चिंतक
(हस्ताक्षर)
जवाहर लाल नेहरू

Edited

लोकनायक जयप्रकाश नारायण

गंभीर बीमारी की हालत में मौत से जूझते हुए भी लोकनायक जयप्रकाश नारायण के दिल में तिब्बत की आजादी और तिब्बत की जनता के लिए ठीक उतनी ही तड़प थी जितनी बीस साल पहले उन दिनों थी जब तिब्बत पर जबरन चीनी फौजी कब्जे के खिलाफ उन्होंने दुनिया के गूंगे और बहरे राजनेताओं को झिंझोड़ा था। इसी तड़प और आशा का एक प्रमाण है उनका यह संदेश जो उन्होंने बीमारी की हालत में इंडो–तिबेतन फ्रेंडशिप सोसाइटी को भेजा था। – संपादक

पटना,

29 फरवरी, 1979

इंडो–तिबेतन फ्रेंडशिप सोसाइटी द्वारा 17 मार्च 1979 को नई दिल्ली में आचार्य जे.बी. कृपलानी के संरक्षण में होने वाली कांफ्रेंस के लिए अपनी शुभकामनाएं भेजते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

आपकी सोसाइटी भारत व तिब्बत के बीच चिरकालीन संबंधों को मजबूत बनाने और दक्षिण–पूर्व एशिया के क्षेत्र, विशेष रूप से भारतीय उपमहाद्वीप में शांति व स्वतंत्रता की रक्षा का लक्ष्य रखती है। **gkykfd vkt frCcr viu l ,d cMh 'kfDr d pxy e d"V Hkkx jgk g] fQj Hkh e> fo'okl g fd frCcr dk Hkfo"; dk :i ,d Lor= jk"V dk gkxk c'kr fd vktknh d fy, ftl yyd u frCcrh turk dk vc rd mRlkg inku fd;k g mlh thfor j[kk tk ldA ,d u ,d fnu frCcr dh vkRek vo'; gh iuthfor gkxhA**

मैं कांफ्रेंस की सफलता की कामना करता हूं।

हस्ताक्षर

जयप्रकाश नारायण

भारत को चीन के बजाए तिब्बत सरकार को मान्यता देनी चाहिए थी

डॉ. भीमराव आंबेडकर

''हमारे प्रधानमंत्री पंचशील पर भरोसा कर रहे हैं जिसे कॉमरेड माओ ने अपनाया है और पंचशील के अनुच्छेदों में एक तिब्बत पर आक्रमण न करने का समझौता है। मैं वाकई चकित हूं कि हमारे प्रधानमंत्री इस 'पंचशील' को गंभीरतापूर्वक ले रहे हैं। सदन के माननीय सदस्यो, आपको जरूर मालूम होगा कि पंचशील बुद्ध धर्म के महत्वपूर्ण हिस्सों में है। अगर श्री माओ को पंचशील में तनिक भी विश्वास होता तो वे अपने देश के बौद्धों के साथ अलग तरह से व्यवहार करते। राजनीति में पंचशील को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। पंचशील में एक तथ्य है कि नैतिकता हमेशा बदलती रहती है। नैतिकता नाम की कोई चीज ही नहीं है। आप आज की नैतिकता के मुताबिक अपना वादा निभा सकते हैं और उसी पर चलते हुए आप वादाखिलाफी भी कर सकते हैं क्योंकि कल की नैतिकता के पैमाने अलग होंगे...***ej fopkj l gekj i/kkue=h dk ejh ckrk dh lPpkbl dk vglkl rc gkxk tc fLFkfr vkj fcxM tk,xhA e>okdbl ugh ekye fd D;k gku okyk gA i/kkue=h u phu dk frCcr dh jkt/kkuh Ygklk ij fu;=.k dju dh NV ndj ,d rjg l phfu;k dk viuh luk Hkkjrh; lhekvk ij yku e enn dh gA*** कोई भी विजेता जो कश्मीर को अधिग्रहित करेगा वह सीधे पठानकोट पहुंच सकता है, और मुझे पक्का यकीन है कि वह प्रधानमंत्री निवास तक भी पहुंच सकता है। —— लोकसभा में 1959 में दिया गया एक बयान

तिब्बत में चीन शिशु–हत्या कर रहा है

–– डा. राम मनोहर लोहिया

अक्तूबर 1950

चीन ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी है। इसे सिर्फ यही कहा जा सकता है कि कोई दैत्य किसी बच्चे की जान के पीछे पड़ा है। *तिब्बत का वर्तमान शासक प्रतिक्रियावादी और आततायी हो या न हो लेकिन विदेशी नियंत्रण से उसे मुक्ति मिलनी ही चाहिए। किसी देश की आंतरिक स्थितियों को जो किसी दूसरे देश की स्थिरता को सीधे प्रभावित नहीं करती हो, हमले का कारण नहीं बनाया जाना चाहिए।* आज चीन तिब्बत में घुस आया है, कल को यही तर्क देकर अमेरिका रूस पर धावा बोल सकता है और रूस भारत पर। इस तरह इसका अंत कहां होगा, कोई नहीं जानता।

मैंने उत्तर और दक्षिण कोरिया के युद्ध में किसी का पक्ष लेने से इनकार कर दिया है। इसकी एकमात्र वजह यही है कि यह तो सीधे–सीधे अटलांटिक और रूसी खेमे के बीच युद्ध है। लेकिन तिब्बत तो किसी खेमे में नहीं है। तिब्बत पर हमले को 30 लाख तिब्बत वासियों की मुक्ति का अभियान कहना भाषा को निरर्थक बनाना और इस तरह की मानवीय संवेदना तथा समझ को कुंद करना है। अगर यह मान लिया जाए तो स्वतंत्रता और दासता, साहस और कायरता, वफादारी और विश्वासघात, सच और झूठ जैसे शब्दों का भेद मिट जाएगा।

चीन के लोगों के प्रति हमारी मित्रता और भावना कभी मंद नहीं पड़ेगी। लेकिन हमें अपनी बात जरूर कहनी चाहिए कि ***phu dh orZeku ljdkj geyk vkSj f'k'kq&gR;k ds iki ls dHkh eqDr ugha gks ldrhA***

कोरिया में मुंह की खाकर सोवियत खेमा शायद तिब्बत विजय से अपनी शान बचाने की कोशिश कर रहा हो और शायद चीन के लिए सोवियत खेमे की विदेश नीति से मुक्त होने के खातिर भी जरूरी है।

चीन का यह दावा पूरी तरह गलत है कि तिब्बत में आकर वह अपनी पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करना चाहता है। इस तरह तो हर देश दुनियाभर में अपनी सीमा की रक्षा करना चाहेगा। इसके अलावा तिब्बत के संबंध चीन की तुलना में भारत से ज्यादा मजबूत रहे हैं। भाषा, व्यापार और संस्कृति के मजबूत संबंधों के अलावा भारत और तिब्बत, खासकर पश्चिमी तिब्बत से सामरिक संबंध भी प्रगाढ़ रहे हैं। इसलिए चीन की सरकार ने तिब्बत पर हमला बोलकर भारत के हितों पर भी चोट की है।

अगर चीन की सरकार तकनीकी और संदिग्ध दावों के आधार पर निष्क्रिय संप्रभुता के मुद्दे पर कोई रुख अख्तियार करती है तो जनमत संग्रह के जरिए तिब्बत में लोगों की राय ली जा सकती है।

बेहतर होगा कि भारत सरकार चीन की सेना की वापसी की सलाह दे और दोनों देशों के बीच सच्ची मित्रता के मद्देनजर जनमत संग्रह की व्यवस्था करने में अपने सहयोग की पेशकश करे।

––

तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता मानना भारत की भूल थी

–अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय लोकसभा में)

जब से चीन में कम्युनिस्ट शासन आया, च्यांग–काई–शेक के साथ बड़े मैत्रीपूर्ण संबंध होते हुए भी भारत ने नए चीन का स्वागत किया और संसार के राष्ट्रों में उसे सम्मान का स्थान मिले इसके लिए हमने उनसे बढ़कर प्रयत्न किया। हमारे प्रयत्नों को देखकर कभी–कभी ऐसा लगा कि मुद्दई सुस्त है और गवाह चुस्त है। हमने चीन की वकालत की क्योंकि हम समझते थे कि कम्युनिज्म से हमारा मतभेद होते हुए भी यदि चीन की जनता उस मार्ग का अवलंबन करती है तो यह उसकी चिंता का विषय है, और भिन्न–भिन्न जीवन पद्धतियों के होते हुए भी भारत और चीन मित्रता से रह सकते हैं।

लेकिन इस मित्रता को पहला आघात उस दिन लगा जब तिब्बत को चीन की सेनाओं ने 'मुक्त' किया। हमारे प्रधानमंत्री ने उस समय पूछा था कि तिब्बत को किससे मुक्त किया जा रहा है। तिब्बत किसी देश का गुलाम नहीं था। भारत तिब्बत का निकटतम पड़ोसी है। अतीत के इतिहास में अगर हम चाहते तो तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर सकते थे, लेकिन आज जो चीन के नेता भारत पर विस्तारवादी होने का आरोप लगाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि हमने कभी भी तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। तिब्बत छोटा है। लेकिन हमने उसके पृथक अस्तित्व का समादर किया। हमने तिब्बत की स्वतंत्रता का सम्मान किया, और हम आशा करते थे कि चीन भी ऐसा ही करेगा लेकिन कम्युनिस्टों के तरीके अलग होते हैं। उनके शब्दों की परिभाषाएं अलग होती है। जब वह गुलाम बनाना चाहते हैं तो कहते हैं कि हम मुक्त करने जा रहे हैं, आज जब वह दमन कर रहे हैं तो कहते हैं कि सुधार करने जा रहे हैं। अगर कहीं सुधार करना है तो जिन्हें सुधारना है उनमें सुधार की प्रवृत्ति पैदा की होनी चाहिए। सुधार ऊपर से नहीं लादा जा सकता।

लेकिन तिब्बत में जो कुछ हो रहा है वह सुधार नहीं है। 1950 के समझौते के अंतर्गत तिब्बत की स्वायत्तता का चीन द्वारा समादर किया जाना चाहिए था, लेकिन चीन ने तिब्बत के अंदरूनी मामलों में दखल दिया, चीन से लाखों की संख्या में चीनी तिब्बत में ला कर बसाए गए जिससे तिब्बतवासी अपने ही देश में अल्पसंख्यक हो जाएं और आगे जाकर तिब्बत चीन का अभिन्न अंग बन जाए। तिब्बत से हजारों नौजवानों को चीन में भेजा गया, नए राजनीतिक मजहब की शिक्षा प्राप्त करने के लिए, लेकिन जब वह लौटकर आए और चीनी नेताओं ने देखा कि उन पर असर नहीं हो रहा है, और उनका तिब्बती रंग नहीं मिटाया जा सकता, उनकी पृथकता कायम रहती है और अपनी जीवन–पद्धति की रक्षा करने का उनका उत्साह अमिट रहता है, तो उनके कान खड़े हुए और उन्होंने तिब्बत की जीवन पद्धति को मिटाने का प्रयत्न किया। वर्तमान संघर्ष एक बड़े राष्ट्र द्वारा एक छोटे राष्ट्र को निगलने की इच्छा के कारण उत्पन्न हुआ है।

मेरा निवेदन है कि हमने जब तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की तो हमने बड़ी गलती की। वह दिन बड़े दुर्भाग्य का दिन था। लेकिन गलती हो गई और हम शायद यह समझते थे कि यह मामला हल हो जाएगा, नया संघर्ष पैदा नहीं होगा,और हम दूसरों को मौका नहीं देना चाहते थे कि वे हमारे और चीन के मतभेदों का लाभ उठाएं। लेकिन परिणाम क्या हुआ? चीन ने केवल तिब्बत के ही साथ हुए समझौते को नहीं तोड़ा, बल्कि उस समझौते की पृष्ठभूमि में भारत के साथ जो समझौता हुआ था, उसका भी उल्लंघन किया। पंचशील की घोषणा कहां गई? जो पंचशील के दावे करते हैं उनका कहना है कि पंचशील के अंतर्गत लोकतंत्र और अधिनायकवाद साथ–साथ जीवित रह सकते हैं। अगर कम्युनिस्ट साम्राज्य के अंतर्गत तिब्बत के धर्मप्रिय और शांतिप्रिय लोग अपनी विशिष्ट जीवन–पद्धति की

रक्षा नहीं कर सकते, तो यह कहना कि इतने बड़े संसार में कम्युनिज्म और डेमोक्रेसी साथ–साथ रह सकते हैं इसका कोई अर्थ नहीं होता। हम चीन के अंदरूनी मामलों में दखल नहीं देना चाहते मगर तिब्बत चीन का अंदरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्ता का समादार करने के लिए, तिब्बत के अंदरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और मैं समझता हूं कि अब भारत को भी, भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं, दोनों तरफ से पालन होते हैं। अगर चीन ने समझौता तोड़ दिया, तो हमें अधिकार है कि हम अपनी परिस्थिति पर फिर से विचार करें। क्या कारण है कि तिब्बत की जनता को उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है?

तिब्बत क्यों स्वतंत्र नहीं रह सकता? कहते हैं कि पहले स्वतंत्र नहीं था, तो क्या जो देश पहले स्वतंत्र नहीं था, उसको स्वतंत्र होने का अधिकार नहीं हो सकता? क्या जहां पहले गुलामी थी, वहां अब भी गुलामी रहनी चहिए? अगर अल्जीरिया की स्वतंत्रता की आवाज का हम समर्थन कर सकते हैं, और वह समर्थन करना फ्रांस के अंदरूनी मामलों में दखल देना नहीं है, तो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन चीन के अंदरूनी मामलों में दखल कैसे हो सकता है? अभी मेरे मित्र श्री खडिलकर ने कहा कि देश में कोई भी ऐसी पार्टी नहीं है, जो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन करती है। मैं उनसे अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूं। मैं एक छोटी–सी पार्टी का प्रतिनिधि हूं, लेकिन हमारी पार्टी तिब्बत की हिमायत करती है। तिब्बत की आजादी की आवाज कितने लोग उठाते हैं, इससे यह आवाज सही है या गलत, इसका निर्णय नहीं हो सकता। चीनी साम्राज्यवादी अपने पशुबल के द्वारा तिब्बत की स्वतंत्रता की आवाज को आज दबा सकते हैं, मगर स्वतंत्रता की पिपासा को मिटाया नहीं जा सकता। दमन उस आंदोलन में आग में घी का काम करेगा और आज नहीं तो कल तिब्बत की जनता अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करके रहेगी।

मगर प्रश्न यह है कि हम उसके लिए क्या कर सकते हैं? मैंने निवेदन किया कि हमने 1950 में गलती की। अब हमें उसका दंड भुगतना पड़ रहा है। लेकिन समय है प्रायश्चित करने का, गलती को पहचानने का। मैं प्रधानमंत्री जी से इस बात की आशा करता हूं कि वह इस अवसर पर देश की करोड़ों जनता का सही प्रतिनिधित्व करेंगे। मुट्ठी भर हमारे मित्रों को छोड़ कर सारा भारत इस प्रश्न पर एकमत है कि तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह नहीं होना चाहिए। लेकिन क्या यह संभव है कि तिब्बत चीनी राज्य के अंतर्गत अपनी स्वायत्ता का उपभोग कर सके? मुझे तो लगता है कि कम्युनिस्ट पद्धति और स्वायत्ता दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। कम्युनिस्ट राज्य में स्वायत्ता नहीं हो सकती। माओत्से तुंग ने 1930 में कहा था कि हमने ऐसा संविधान बनाया है कि अगर कोई हमसे बाहर जाना चाहेगा, तो बाहर जा सकेगा। तिब्बती तो बाहर जाने की बात नहीं करते थे। वे तो अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखना चाहते थे, मगर उन्हें इसकी भी इजाजत नहीं दी गई।

उन्होंने यह भी कहा कि हम ऐसे फूल को खिलता हुआ देखना चाहते हैं, जिसमें हजारों पंखुड़ियां होंगी। हजारों की तो बात अलग रही, तिब्बत की कोमल कली को भी कुचला जा रहा है। हमने जहां चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की वकालत की थी, वहीं हम तिब्बत को भी स्थान देने की वकालत कर सकते थे। यूक्रेन सोवियत संघ का अंग है, मगर वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अलग स्थान पर बैठा है। तो क्या तिब्बत चीन के साथ होते हुए भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अलग स्थान नहीं भर सकता था? मगर हमने चीन की मित्रता के लिए ऐसा नहीं किया। हमें उस मित्रता का क्या प्रतिदान मिला?

हम मित्रता आज भी चाहते हैं, मगर उस मित्रता का महल तिब्बत की आजादी की लाश पर नहीं खड़ा किया जा सकता। अन्याय को देखकर हम आंखें बंद नहीं कर सकते। यह भारत की परंपरा रही है और इसी परंपरा में हमारे प्रधानमंत्री ने देश की विदेश नीति का संचालन किया है कि जहां कहीं अन्याय होगा, मानवता का हनन होगा, अत्याचार होगा, हम अपनी आवाज उठाएंगे, हम सत्य की भाषा को बोलेंगे और निर्भीक होकर हम पददलित होने वाले के अधिकारों का संरक्षण करेंगे। आज

तिब्बत कसौटी है नेहरू जी की नीतिमत्ता की, तिब्बत कसौटी है भारत सरकार की दृढ़ता की, तिब्बत की कसौटी है चीन की पंचशील–प्रियता की। पंचशील की घोषणाएं करने से, पंचशील की जो भावना है, उसका आदर नहीं होगा। पंचशील की कसौटी आचरण है। हमारे प्रधानमंत्री कितना भी संयम से काम लें, लेकिन अगर उससे तिब्बत की समस्या हल नहीं होती, तो हमें मानना पड़ेगा कि उस नीति में थोड़ी–सी दृढ़ता, थोड़ी–सी सक्रियता लाने की आवश्यकता है।

दलाई लामा तिब्बत में रहें या जाएं, यह कोई बड़ा सवाल नहीं है। यह तो तिब्बती आपस में तय करेंगे। लेकिन तिब्बत एक कसौटी है बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्र को निगलने की। अगर छोटे देश इस तरह से निगले जाएंगे, तो संसार की शांति कायम नहीं रह सकती है। दक्षिण–पूर्वी एशिया में अनेक देश ऐसे हैं जिनमें चीनी बहुसंख्या में निवास करते हैं। तिब्बत के कारण उन सब देशों में एक आशंका की लहर उत्पन्न हो गई है। जहां तक भारत का सवाल है, हम पर तो चीन की शनि–दृष्टि दिखाई देती है। चीन के नक्शों में हमारा प्रदेश उनका बताया गया है। चीन के कम्युनिस्टों ने च्यांग–काई–शेक को तो निकाल दिया, मगर उनके नक्शों को रख लिया। अगर वे चाहते तो नक्शों को भी निकाल सकते थे। और हमारे कम्युनिस्ट दोस्तों ने तो वह नक्शे देखें ही नहीं हैं। मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यह चीन का अप्रत्यक्ष आक्रमण है भारत के लिए। उत्तर प्रदेश के दो स्थानों पर चीनी कब्जा जमा कर बैठे हैं। ये घटनाएं आने वाले संकट की ओर संकेत करती हैं। हमें आतंकित होने की आवश्यकता नहीं है, मगर हमें दृढ़ नीति अपनानी चाहिए।

दलाई लामा भारत में आए हैं। वे स्वतंत्रता के लड़ाकू हैं, अपने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिसके कारण उनको अपना देश छोड़कर भारत में आना पड़ा है। मैं चाहता हूं कि उन्हें अपने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत में चलाने का अधिकार होना चाहिए। उनके ऊपर जो बंधन लगाए गए हैं, वे यद्यपि सुरक्षा के लिए हैं, लेकिन उन बंधनों को ढीला करने की आवश्यकता है। अगर हमारे देशभक्त अंग्रेजी राज्य के दिनों में दूसरे देशों में जाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर सकते थे और हमारी आंखों में सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि दलाई लामा को भी इस बात की छूट न दी जाए।

दलाई लामा अगर चीन के साथ समझौता करने में सफल हों, और हमारे प्रधानमंत्री इस संबंध में कोई मध्यस्थता कर सकें तो इससे बढ़कर देश की जनता को कोई और आनंद नहीं होगा। लेकिन अगर चीन के नेताओं को सीधी राह पर नहीं लाया जा सकता, राजनीतिक या कूटनीतिक दबाव से उन्हें नहीं समझाया जा सकता और बर्मा, लंका और इंडोनेशिया के जनमत को जागृत करके, संगठित करके, प्रभावी रूप से उसका प्रकटीकरण करके, अगर चीन पर असर नहीं डाला जा सकता, तो भारत के सामने इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रहेगा कि हम दलाई लामा को छूट दे दें कि वह अपने देश की आजादी के लिए प्रयत्न करें।

भारत के नौजवान तिब्बत की स्वतंत्रता को अमूल्य समझते हैं–इसलिए नहीं कि तिब्बत के साथ उनके घनिष्ठ संबंध हैं, अपितु इसलिए कि हम गुलामी में रह चुके हैं, हम गुलामी का दुख और दर्द जानते हैं, हम आजादी की कीमत जानते है – उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता दी जाए। तिब्बत की जनता अगर आजादी के लिए संघर्ष करती है तो भारत की जनता उसके साथ होगी। हम अपनी सहानुभूति उनको देंगे और हम चीन से भी आशा करें कि वह साम्राज्यवाद की बातें न करे। साम्राज्यवाद के दिन लद गए। किंतु यह नया साम्राज्यवाद है। इसका खतरा यह है कि यह एक क्रांति के आवरण में आता है, यह इंकलाब की पोशाक पहन कर आता है, यह नई व्यवस्था का नारा लगाता हुआ आता है, मगर है यह उपनिवेशवाद, है यह साम्राज्यवाद। अतीत में हम गोरों के साम्राज्यवाद से लड़ते रहे लेकिन अब यह पीलों का साम्राज्यवाद भी प्रकट हो रहा है विश्व की छत पर। हमें दृढ़ता के साथ उसका भी मुकाबला करना होगा।

—

चीन पर भरोसा मत कीजिए
–आचार्य जे बी कृपलानी

तिब्बत पर चीन के कब्जे के बाद लोकसभा में हुई बहस के दौरान 8 मई 1959 के दिन दिया गया भाषण

यह विषय महत्वपूर्ण है, समय बहुत कम दिया गया है इसलिए मैं हर संभव तरीके से अपनी बात संक्षिप्त रखने की कोशिश करूंगा। देशों के लिए एक दूसरे की आंतरिक और विदेश नीति की आलोचना करना कोई असामान्य बात नहीं है। कोई भी इस आलोचना को देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं मानता। अगर ऐसा होता तो खुद चीन द्वारा यूगोस्लाविया की कड़ी आलेचना को उस देश के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप माना जाता। लेकिन साम्यवादी दुनिया में न्याय के दो पैमाने हैं – एक अपने लिए और दूसरा उनके लिए जिन्हें वे अपना विरोधी मानते हैं।

,d jk"V dk cykRdkj % हाल ही में, चीन किसी भी तरह की आलोचना के प्रति बेहद संवेदनशील हो गया है। अब कोई व्यक्ति अति संवेदन शील हो जाता है तो, मुझे लगता है, उसका इरादा नेक नहीं होता। यहां तक कि कांग्रेस अध्यक्ष के मामूली बयानों को काट दिया गया। क्यों? क्योंकि उन्होंने कहा कि तिब्बत एक देश है। मैं अपने खिलाफ गुस्से को समझ सकता हूं क्योंकि मैंने कभी भी चीनियों के इरादों, उनके पेशे और वादों पर भरोसा नहीं किया। इस सदन में मैं अकेला ऐसा शख्स हूं जिसने एक राष्ट्र के बलात्कार के विरूद्ध आवाज उठाई है। 1950 में ही मैंने इस सदन में कह दिया था कि चीन की साम्यवादी सरकार की उस देश पर हुकूमत है। लिहाजा भारत सरकार ने यह उचित समझा कि उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और हमने चीन के मामले की वकालत की। लेकिन अगर हमने थोड़ा इंतजार कर लिया होता तो हम और भी सतर्क हो जाते। शीघ्र ही इस राष्ट्र ने, जो हाल ही में आजाद हुआ है, अपने एक ऐसे पड़ोसी राष्ट्र की आजादी को उलझा दिया जिसकी आजादी को लेकर हमें चिंता है। हमारी सरकार का यह रवैया केवल इस धारणा पर समझ में आता है कि तिब्बत दूर–दराज देश है और उससे हमारा कोई सरोकार नहीं है। लेकिन मान लीजिए कि जो तिब्बत में हुआ वही नेपाल में हो तो मुझे पक्का यकीन है कि हम चीन के खिलाफ जंग छेड़ देंगे, भले ही हम इसके लिए तैयार हों या न हों। तब संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के लिए चीन की हमारी वकालत का क्या होगा?

फिर, महोदय, 1954 में एक बार फिर मैंने इस सदन में कहा था कि "हाल ही में हमने चीन के साथ एक समझौता किया है। मेरा मानना है कि चीन ने साम्यवादी बनने के बाद तिब्बत के खिलाफ आक्रमण किया। कहा जाता है कि चीन को हुकूमत का पुराना अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार पुराना, अर्थहीन और प्रचलन से बाहर है। सच तो यह है कि इसे कभी प्रयोग नहीं किया गया। समय के साथ वह खत्म हो गया था। अगर वह खत्म नहीं भी हुआ था तो भी आज लोकतंत्र के, जिसकी हमारे साम्यवादी दोस्त कसमें खाते हैं, जिसकी चीनी कसमें खाते हैं, के युग में उस पुरानी हुकूमत की बात करना और ऐसे देश में एक नए रूप में उसका इस्तेमाल करना उचित नहीं है जिसका चीन से कोई सरोकार नहीं था और न है। तिब्बत सांस्कृतिक रूप से चीन के मुकाबले भारत से ज्यादा मिलता जुलता है। मैं इसे मानता हूं जिस तरह कोई पश्चिमी राष्ट्र करता है। अगर कोई देश दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण

करता है तो हमेशा हमें चिंता नहीं होती। लेकिन इस मामले में हमें बहुत चिंता है क्योंकि चीन ने एक अमनपसंद देश को तबाह कर दिया है।। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में जब कोई शक्तिशाली राष्ट्र किसी अमनपसंद देश को तबाह करता है तो उसे उसके पड़ोसियों के विरूद्ध आक्रमण माना जाता है।

इंग्लैंड ने जर्मनी के विरूद्ध इसलिए जंग नहीं छेड़ा कि जर्मनी ने इंग्लैंड पर धावा बोला था बल्कि इसलिए कि उसने पोलैंड और बेल्जियम पर आक्रमण किया था।

महोदय, फिर, मैंने इस सदन में कहा था कि, ''यह भी अच्छी तरह मालूम है कि चीन के नए नक्शे में नेपाल, सिक्किम आदि जैसे सीमातर्वी इलाके भी शामिल हैं। इससे हमें चीन के आक्रामक इरादे के बारे में पता चलता है। देखिए कि चीनियों ने खुद कोरियाई युद्ध में क्या किया। मैं यह नहीं कहता कि चूंकि चीन ने तिब्बत पर कब्जा कर लिया सो हमें उसके विरूद्ध जंग करना चाहिए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हमें चीन के तिब्बत पर दावे को स्वीकृति दे देनी चाहिए। हमें मालूम होना चाहिए कि यह एक विदेश राष्ट्र के खिलाफ आक्रमण है।

फिर महोदय, मैंने उसी वर्ष कहा था कि, ''हमारी सीमाओं पर एक छोटे अमनपसंद देश को उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया। जब हमने हल्का विरोध किया तो हमसे कहा गया कि हम पाश्चात्य शक्तियों के दलाल हैं। अगर मुझे सही–सही याद है तो हमें ''साम्राज्यवाद के भागते कुत्ते'' करार दिया गया था।

फिर महोदय, 1958 में मैने पंचशील पर बात करते हुए कहा था कि, ''इस महान सिद्धांत का जन्म ही पाप में हुआ क्योंकि इसकी घोषणा एक प्राचीन राष्ट्र पर हमारी स्वीकृति की मुहर लगाने के लिए की गई, वह देश हमसे आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से जुड़ा हुआ था।''

महोदय, उस समय कुछ माननीय सदस्यों ने हस्तक्षेप करके पूछा थाः ''क्या वह राष्ट्र पीड़ित हैं'' मेरा जवाब था, सवाल यह नहीं है कि ''वह पीड़ित है या नहीं। वह ऐसा राष्ट्र था जो अपनी जिंदगी खुद जीना चाहता था और उसने अपनी जिंदगी खुद जीने की आज्ञा मांगी थी। अच्छी सरकार स्वराज का विकल्प नहीं है।''

phu vkj l;Dr jk"V % महोदय, राज्यसभा में हमारे कुछ दोस्तों ने कहा है कि हमें चीन की संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के मामले को समर्थन जारी रखनी चाहिए। मैं उनके विचार का सम्मान करता हूं। उनका मानना है कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य के रूप में चीन कुछ सार्वजनिक राय को मानने के लिए बाध्य होगा। यह सच नहीं है। दक्षिण अफ्रीका, फ्रांस, रूस और कई दूसरे आक्रामक राष्ट्र हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य होने की वजह से ही उन्होंने अपनी आक्रामकता नहीं छोड़ी है।

हमें एक बार फिर बताया गया कि भले ही चीन ने पंचशील (सिद्धांत) तोड़ दिया हो लेकिन हमें उस पर बरकरार रहना चाहिए। महोदय, मैं नही मानता कि पंचशील नैतिक जिम्मेदारी है। यहां तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में नैतिक जरूरियात पर भी एकतरफा बरकरार नहीं कहा जा सकता। पंचशील एक दूसरे की सत्यनिष्ठा और संप्रभुता का परस्पर सम्मान करने को कहता है। जब तक साझीदारी नहीं होगी तब तक इन चीजों के लिए सम्मान कैसे होगा?

पंचशील शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का भी द्योतक है। जब तक यह विचार एक राष्ट्र की बजाय सभी राष्ट्रों पर लागू नहीं होगा तब तक शांतिपूर्ण सहअस्तित्व कैसे हो सकता है? आप अकेले शांतिपूर्ण सहअस्तित्व नहीं रख सकते। यह असंभव है। सो, पंचशील साझीदारी का संकेत करता है और अगर दूसरे इसका उल्लंघन करते हैं तो आप इस पर अमल नहीं कर सकते। और हमने देखा है कि पंचशील की कसम खाने वाले राष्ट्र एक–एक करके इसका उल्लंघन कर रहे हैं।

phu Hkkjr dk fe= ugh% % मौजूदा मामले में चीन कोई बेहतर नहीं है। उसने न केवल उसका उल्लंघन किया है बल्कि हम पर उसके उल्लंघन का आरोप लगाया है। महोदय, मेरा मानना है कि हम चीन के साथ अपनी दोस्ती पर भले ही जोर देते रहें और चीन–हिंदी भाई–भाई कहते रहें, मैं आपसे कहता हूं कि यह राष्ट्र कभी हमारे प्रति दोस्ताना रवैया नहीं रखेगा। क्यों? क्योंकि कोई मित्र देश भरे बाजार में दूसरे देश पर चिल्लाता नहीं है। अगर उन्हें यह कहना है कि कलिमपोंग–वे इसे क्या कहते हैं– कमान केंद्र था, तो वे इसे राजनयिक माध्यमों से कह सकते थे। और उन्होंने ऐसा छह महीने पहले किया था; इस मामले की जांच की गई तो आरोप निराधार साबित हुए और उन्हें एक रिपोर्ट भेजी गई। उनके पास अब कहने के लिए कुछ नहीं था। इस अवसर पर यह राजनयिक तरीका क्यों नहीं अपनाया गया? भरे बाजार में मेरे मित्र राष्ट्र पर यह गुर्राहट क्यों? मैं बिल्कुल नहीं समझ सकता ऐसी मानसिकता वाले राष्ट्र के साथ दोस्ती कैसे संभव है।

फिर भी इससे बचने के हमारे प्रयासों का यह नतीजा निकलेगा। वे हमारी नेकनियती के लिए हमें श्रेय नहीं देंगे। वे हमें कायरता का श्रेय देंगे। दबंग को कभी नहीं लगेगा कि आप अपनी अच्छाई की वजह से काम कर रहे हैं। उसे तो सिर्फ यही लगेगा कि आप डर रहे हैं।

——

भारत की अखंडता और स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी

पंडित दीन दयाल उपाध्याय

तत्कालीन 'जनसंघ' (अब 'भारतीय जनता पार्टी') के वरिष्ठ नेता

तिब्बत की स्वायत्तता हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अगर हम यह नहीं दिला सके तो न केवल हमारी अखंडता और स्वतंत्रता खतरेमें पड़ जाएगी बल्कि हमारे लिए गुटनिरपेक्षता की नीति भी जारी रखना असम्भव हो जाएगा। जहां तक चीन की मंशा का सवाल है तो वह जगजाहिर हो गई है। उसने पहले ही ऐसी हरकत की है जिसे "कार्टोग्राफिक आक्रमण" कहा जाता है। बताया जाता है कि अब चाउ एन–लाई ने ऐसा सुझाव पेश किया है कि चीन और दूसरे एशियाई देशों के बीच अनिश्चित सीमाओं को शांतिपूर्ण बातचीत के जरिए सुलझाया जाना चाहिए। जाहिर है वह मैकमोहन रेखा को नहीं मानता जो भारत और तिब्बत के बीच सीमा है। दोनों देशों के बीच विवाद के बीज बो दिए गए हैं। और किसी भी समय चीन की साम्यवादी सरकार भारतीय गांवों को लूटने का अपने 'मुक्ति' गिरोहों को आदेश दे सकती है। ... भारत के अलावा, चीन ने नेपाल, भूटान और सिक्किम पर अपनी लालची नजरें टिका रखी है। तिब्बत में साम्यवादी चीन की गतिविधियों से नेपाल की भावी रक्षा को लेकर उसके शासकों के सामने गंभीर प्रश्न उठ खड़ा हुआ है।

... तिब्बती स्वायत्त शासन के मुद्दे पर कठोर और निश्चित रवैए से ही चीन सही हो सकता है। दोनों देशों के बीच मित्रता बनाए रखनेके लिए इस तरह का रवैया जरूरी है। *मित्रता विश्वास और सम्मान, समानता और परस्पर लाभ पर आधारित होनी चाहिए न कि भय और गलतफहमी पर। ... लिहाजा दलाई लामा को अपने लोगों को आजादी की लड़ाई लड़ने का निर्देश देने के लिए हर तरह की सुविधाएं मिलनी चाहिएं। भारत के हितों के लिए यह जरूरी है।* अगर नेहरू इस नीति को अपनाने में विफल रहे तो वे खुद को इस बाबत राष्ट्रीय सोच से अलग कर लेंगे। यह माना गया है कि इस नीति में कुछ विशेष जोखिम होंगे। लेकिन हमें उन्हें उठाना होगा। भविष्य में और भी ज्यादा जोखिम उठाना होगा जिससे हमें नीतियों में मौलिक परिवर्तन करना होगा।

27 अप्रैल 1959 के दिन दिए गए वक्तव्य का एक अंश

तिब्बत पर चीनी कब्जा – विश्व की असभ्यता का प्रतीक है

–आचार्य रजनीश

दुर्भाग्यवश, तिब्बत अंधकार के गर्त में पड़ गया है। इसके मठ बंद कर दिए गए हैं, इसके सत्य के खोजियों साधकों को श्रम–शिविरों में काम करने के लिए विवश कर दिया गया है। संसार में एकमात्र देश तिब्बत, जो अपनी समस्त प्रतिभा और मेधा को एकाग्र कर अपनी निजी आंतरिकता और उसके खजानों की तलाश में काम करता रहा है, उसे साम्यवादी हमले ने रोक दिया है।

यह इतनी कुरूप दुनिया है कि किसी ने इसका प्रतिवाद तक नहीं किया बल्कि उलटे, क्योंकि चीन बड़ा और शक्तिशाली है, ऐसे देशों तक ने जो इतने अधिक शक्तिशाली हैं जितने चीन कभी नहीं हो सकता – जैसे कि अमरीका उन्होंने भी स्वीकार कर लिया है कि तिब्बत चीन का है। यह बिलकुल बकवास है। मात्र इसलिए कि चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र है और सभी देश चीन को अपनी ओर रखना चाहते हैं, न तो सोवियत संघ ने चीन को दावे को अस्वीकार किया, न ही अमरीका ने। चीन और सोवियत संघ को छोड़ो, भारत तक ने प्रतिवाद नहीं किया है।

इतना सुंदर प्रयोग था यह। तिब्बत के पास लड़ने के लिए कोई हथियार नहीं थे, और लड़ने के लिए कोई सेना नहीं थी। और उन्होंने इसके बाबत कभी सोचा ही नहीं था। उनका सारा प्रयास अंतमुर्खी तीर्थयात्रा का था।

मनुष्य की अंतरात्मा के उद्‌घाटन का ऐसा सकेंद्रित प्रयास कहीं भी नहीं हुआ है। तिब्बत में हर परिवार अपने बड़े पुत्र को किसी मठ को दे दिया करता था, जहां उसे ध्यान करना था और जागरण के समीपतर आते जाना था। यह हर परिवार के लिए आहलादकारी था कि कम से कम उनमें से एक संपूर्ण हृदय से, चौबीस घंटे अंतरात्मा पर काम कर रहा था। वे भी काम करते थे, पर वे सारा समय नहीं लगा सकते थे। उन्हें भोजन, कपड़ा और मकान की भी व्यवस्था करनी होती थी – और तिब्बत में यह एक कठिन बात है। जलवायु बहुतसहायक नहीं है; तिब्बत में रहना एक विशाल संघर्ष है लेकिन फिर भी हर परिवार अपने पहले बच्चे को मठ में दे दिया करता था।

वहां सैकड़ों मठ थे। और इन मठों की तुलना किसी भी कैथलिक मठ से नहीं की जानी चाहिए। इन मठों की पूरी दुनिया में ाकेई तुलना नहीं है। इन मठों का सरोकार सिर्फ एक बात से था : तुम्हें स्वयं के प्रति जगाना। शताब्दियों में हजारों विधियां निर्मित की जाती रही हैं कि तुम्हारा कमल खिल सके और तुम अपने परम खजाने – उस मणि को पा सको। ये केवल प्रतीकात्मक शब्द हैं।

तिब्बत का विनाश इतिहास में पहचाना जाएगा, खासतौर से जब आदमी थोड़ा और जागरूक तथा मानवता कुछ और मानवीय होगी। यह बीसवीं सदी की सबसे बड़ी विपदा है कि तिब्बत भौतिकवादियों के हाथों में पड़ गया है, जो यह नहीं मानते कि तुम्हारे अंतर में कुछ है। वे मानते हैं कि तुम केवल पदार्थ हो और तुम्हारी चेतना पदार्थ का उपजात मात्र है। और यह सब बगैर आंतरिक का कोई अनुभव किए – मात्र तार्किक, बौद्धिक चिंतन।

संसार में एक भी कम्युनिस्ट ने ध्यान नहीं किया है, लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि वे सभी आंतरिक को इनकार करते हैं। कोई नहीं सोचता कि 'वाह्य' कैसे हो सकता है यदि कोई 'आंतरिक' न हो? उनका अस्तित्व एक साथ है। वे अविच्छेद्य है। और 'वाह्य' केवल 'आंतरिक' की सुरक्षा के लिए है, क्योंकि 'आंतरिक' अत्यंत सुकुमार और सुकोमल है। परंतु 'वाह्य' को स्वीकार किया गया है और 'आंतरिक' को इनकार। और यहां तक कि यदि कभी इसे स्वीकार भी किया गया, तो संसार इतने गंदे राजनीतिकों से प्रभावित है कि वे आंतरिक अनुभवों का भी कुरूप लक्ष्यों के लिए उपयोग करते हैं।

मुझे पता चला कि अमरीका अब अपने सैनिकों को ध्यान का प्रशिक्षण दे रहा है ताकि वे बिना घबड़ाए, बिना पागल हुए, बिना कोई भय महसूस किए लड़ सकें, ताकि अपने खंदकों में चुपचाप, शांत और स्थिर और प्रकृतिस्थ पड़े रह सकें। किसी ध्यानी ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि ध्यान का उपयोग युद्ध लड़ने के लिए भी किया जा सकता है। लेकिन राजनीतिकों के हाथों में सब कुछ कुरूप हो जाता है – ध्यान तक।

अब अमरीका की सैनिक छावनियां ध्यान की शिक्षा दे रही है ताकि उनके सैनिक लोगों की हत्या करते समय शांत और स्थिर रह सकें। लेकिन मैं अमरीका को चेतावनी देना चाहता हूं कि तुम आग के साथ खेल रहे हो। तुम ठीक–ठीक नहीं समझ रहे हो कि ध्यान क्या करोगा। तुम्हारे सैनिक इतने शांत और स्थिर हो जाएंगे कि वे अपने शस्त्रों को फेंक देंगे और हत्या करने से सीधे इनकार कर देंगे।

एक ध्यानी हत्या नहीं कर सकता। एक ध्यानी विध्वंसक नहीं हो सकता। तो एक दिन वे आश्चर्यचकित होने वाले हैं कि उनके सैनिक अब लड़ाई में उत्सुक नहीं रहे। युद्ध, हिंसा, लाखों लोगों का संहार– यह सब संभव नहीं है यदि कोई थोड़ा भी ध्यान को जानता हो। तब न वह केवल स्वयं को जानता है, वह दूसरे को भी जातना है जिसकी वह हत्या कर रहा है। वह उसका ही भाई है, वे सभी एक ही निस्सीम अस्तित्व के अंग हैं

सोवियत संघ में भी वे ध्यान में उत्सुक हैं, लेकिन उद्देश्य वही है – तुम्हारा आत्मसाक्षात्कार नहीं, बल्कि तुम्हें मजबूत बनाना ताकि तुम हत्या कर सको, बम फेंक सको और परमाणविक हथियारों और प्रक्षेपास्त्रों का उपयोग कर सको, समूचे राष्ट्रों को ध्वस्त करने के लिए।

अगर मानवता थोड़ी सचेत होती तो तिब्बत को आजाद कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह एकमात्र देश है जिसने लगभग दो हजार वर्ष किसी अन्य कार्य में नहीं, बल्कि केवल ध्यान की गहराई में जाने को ही समर्पित किए हैं। और यह संपूर्ण विश्व को कुछ ऐसा सिखा सकता है जिसकी महती आवश्यकता है।

लेकिन साम्यवादी चीन उस सब कुछ को नष्ट कर देने का प्रयास कर रहा है जिसे दो हजार वर्षों में निर्मित किया गया है। उनकी सारी युक्तियां, ध्यान की उनकी सारी विधियां – उनके समस्त आध्यात्मिक वातावरण को प्रदूषित किया जा रहा है, विषाक्त किया जा रहा है। लेकिन वे सीधे–सादे लोग हैं; वे अपना बचाव नहीं कर सकते। उनके पास अपनी सुरक्षा के कोई साधन नहीं हैं – टैंक नहीं, बम नहीं, विमान नहीं, सेना नहीं। एक निर्दोष जाति जिसने दो हजार वर्ष तक बिना किसी युद्ध के जीया है। वह किसी को बाधा नहीं पहुंचाती। वह सबों से इतनादूर हैं कि वहां पहुंचना भी कठिन काम है – वे संसार की छत पर रह रहे हैं। सर्वोच्च पहाड़ शाश्वत बर्फ उनका घर है। उन्हें अकेला छोड़ दो। चीन का कुछ जाएगा नहीं, लेकिन पूरा संसार उनके अनुभव से लाभन्वित होगा।

और संसार को उनके अनुभव की जरूरत पड़ेगी। संसार धन, शक्ति, प्रतिष्ठा और जो भी वैज्ञानिक तकनीकी ने पैदा किया है उस सबसे ऊब रहा है। ये सब निमूल्य हो गए हैं।

मनुष्य की आंतरिक खोज की प्रयोगशाला के रूप में तिब्बत को छोड़ दिया जाना चाहिए। लेकिन संसार के एक देश ने भी तिब्बत पर इस घृणित आक्रमण के विरूद्ध आवाज नहीं उठाई है। और चीन ने न केवल इस पर आक्रमण किया, बल्कि उसका विलय कर लिया है अपने नक्शे में। अब चीन के नए नक्शे में तिब्बत उनका भू–भाग है।

और हम सोचते हैं कि यह दुनिया सभ्य है, जहां निर्दोष लोग, जो किसी की हानि नहीं कर रहे हैं सहज की नष्ट किए जाते हैं। और उनके साथ ही संपूर्ण मनुष्यता का कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण भी नष्ट हो जाता है।

यदि मनुष्य में कुछ भी सभ्य होता तो हर राष्ट्र चीन द्वारा तिब्बत पर किए गए आक्रमण के विरूद्ध खड़ा हो जाता। यह चेतना पर पदार्थ का आक्रमण है। यह अध्यात्म की ऊंचाइयों पर भौतिकवाद का आक्रमण है।

तिब्बती मंत्र 'ऊं' मणि पद्‌मे हुम्' संपूर्ण आंतरिक तीर्थयात्रा का सारभूत रूप है। यह बताता है कि प्रारंभ कैसे करना, फूल जब खिलेगा तो क्या होगा, अपने आंतरिक खजाने का तुम्हारा चरम अनुभव क्या होगा।

साभार : 'ऊं' मणि पद्‌मे हुम्'' से संपादित

तिब्बत में न्याय, समाज और संस्कृति का दमन

अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट (जिनेवा, 1960)

'द लीगल इंक्वायारी कमेटी ऑन तिब्बत' को तिब्बत की घटनाओं के जिन पहलुओं की जांच सौंपी गई थी, उन पर अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग को अपनी रिपोर्ट सौंपते हुए हर्ष है। समिति निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंची है।

tkfr&lgkj :

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा जनवरी, 1948 में मान्य जाति–संहार निवारक और दंड संबंधी समझौते (कन्वेंशन फॉर द प्रिवेंशन एंड पनिशमेंट ऑफ जीनोसाइड) के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत जिन मानव समूहों को जाति–संहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है वे राष्ट्रीय, जातीय, नस्लीय या 'धार्मिक समूह' हो सकते हैं। समिति ने पाया कि तिब्बतियों को धार्मिक समूह के रूप में समाप्त करने के प्रयास में, उन पर जाति–संहार के कृत्य हुए हैं और ऐसे कृत्य बगैर किसी समझौते की बाध यता के स्वतंत्र रूप से भी, जाति–संहार के कृत्य हैं। अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उन विधियों के समुचित प्रमाण समिति को नहीं मिले जिनसे तिब्बतियों को जाति, राष्ट्र या नस्ल के रूप में नष्ट करना प्रमाणित होता हो और उसे जाति–संहार स्थापित किया जा सके। उपलब्ध प्रमाणों से उपर्युक्त जाति–संहार के संबंध में चार मुख्य तथ्यों की स्थापना होती है –

(क) चीन तिब्बत में बौद्ध धर्म को किसी भी प्रकार की अनुमति नहीं देगा;

(ख) तिब्बत से इस धार्मिक आस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए चीन योजनाबद्ध रूप से कटिबद्ध है;

(ग) इस योजना के क्रियान्वयन के अंतर्गत उन्होंने धार्मिक हस्तियों की हत्याएं की क्योंकि उनकी धार्मिक आस्था एवं धर्ममय व्यवहार से लोगों में धार्मिक भावना को प्रोत्साहन मिलता है;

(घ) उन्होंने काफी संख्या में तिब्बती बच्चों को चीन के भौतिकवादी वातावरण में जोर–जबर्दस्ती स्थानांतरित कर दिया है, ताकि उनका पालन–पोषण धार्मिक वातावरण से परे हो।

इसलिए समिति का यह निष्कर्ष है कि इस 'धार्मिक समूह' के विरूद्ध ऐसी विधियों से जाति–संहार किया गया है।

ekuokf/kdkj

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा ज्ञापित विश्वव्यापी मानवाधिकार घोषणा की रूपरेखा में मानवाधिकारों के संबंध में समिति ने प्रमाणों की जांच की।

समिति ने मानवाधिकार के प्रश्न पर विचार के दौरान यह माना कि आर्थिक और सामाजिक अधिकार भी नागरिक स्वतंत्रताओं की भांति मानवाधिकारों के अंग हैं। उसने पाया कि तिब्बत में चीन के कम्युनिस्ट अधिकारियों ने दोनों प्रकार के मानवाधिकारों का उल्लंघन किया है।

समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि तिब्बत में चीनी अधिकारियों ने निम्नलिखित मानवाधिकारों का उल्लंघन किया है। ये वे मानवाधिकार हैं जिन्हें समिति सभ्य राष्ट्रों की मान्यता के अनुसार मानवीय

व्यवहार का सर्वसामान्य मापदंड मानती है।

/kkjk 3 ½ व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, और सुरक्षा के अधिकारों की हत्या, बलात्कार और मनमानी कैद के कृत्यों से उल्लंघन किया गया।

/kkjk 5 ½ तिब्बतियों के साथ व्यापक स्तर पर और बड़े पैमाने पर यातनापूर्ण और क्रूर, अमानवीय और निकृष्ट रूप से अपमानजनक व्यवहार किया गया।

/kkjk 9 ½ लोगों को मनमाने ढंग से गिरफ्तार करने का तथा नजरबंद करने का दौर चलाया गया।

/kkjk 12 ½ घरेलू और पारिवारिक जीवन की गोपनीयता के अधिकार का लगातार उल्लंघन किया गया, परिवार के सदस्यों का जबर्दस्ती स्थानांतरण किया गया तथा बच्चों को अपने माता–पिता के विरूद्ध भड़काया गया। माता–पिताओं की इच्छा के विरूद्ध उनके बच्चों को शैशव काल से ही छीन लिया गया।

/kkjk 13 ½ तिब्बत में घूमन–फिरने, तिब्बत से बाहर जाने और तिब्बत में आने पर रोक लगाने हेतु बड़े पैमाने पर लोगों को निष्कासित किया गया।

/kkjk 16 ½ विवाह करना–न करना स्वेच्छा का नियम है –

भिक्षुओं और लामाओं का जबर्दस्ती विवाह करा कर उनकी तथा विवाह संस्था की मर्यादा पर आघात किया गया ओर अंकुश लगाया गया।

/kkjk 17 ½ निजी संपत्ति से मानमाने रूप में वंचित न होने के अधिकार का उल्लंघन किया गया। निजी संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण या बिना तिब्बती लोगों की इच्छा के, नाममात्र का मुआवजा देकर उस पर अधिकार किया गया।

/kkjk 18 ½ तिब्बत में बौद्धों के विरूद्ध जाति–संहार तथा तिब्बत की धार्मिक आस्था के उन्मूलन के लिए किए गए अन्य व्यवस्थित उपायों द्वारा तिब्बतियों की अपनी अंतर की आवाज को दबाया गया तथा उनकी वैचारिक, धार्मिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता खत्म की गई।

/kkjk 19 ½ धर्म ग्रंथों को नष्ट करके, मिमांग वर्ग के सदस्यों को कारावास में डाल कर तथा सत्ता के आलोचकों को क्रूरतापूर्ण दंड देकर अभिव्यक्ति और विचार की स्वतंत्रता खत्म की गई।

/kkjk 20 ½ एकत्र होने और संघ बनाने के अधिकार का मिमांग आंदोलन के दमन और चीनियों के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा सभाओं के आयोजन पर प्रतिबंध लगा कर हनन किया गया।

/kkjk 21 ½ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अधीनता वाले बाहरी शासन को थोप कर जनतांत्रिक शासन के अधिकार का हनन किया गया।

/kkjk 22 ½ व्यक्ति की गरिमा और उसके व्यक्तित्व के मुक्त विकास के लिए अपरिहार्य ऐसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का हनन किया गया। तिब्बत के आर्थिक संसाधनों का उपयोग चीन के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया। सामाजिक परिवर्तन अधिकांश तिब्बत जनों के हितों के विरूद्ध थे। प्राचीन तिब्बती संस्कृति और उसके धर्म को समूल नष्ट करने के लिए उस पर आक्रमण के प्रयास हुए।

/kkjk 24 ½ काम करने की सामान्य मानवीय व्यवस्था के अधिकार का हनन किया गया तथा अत्यंत कष्टदायक और बहुत कम पारिश्रमिक पर श्रम कराया गया।

/kkjk 25 ½ तिब्बतियों को सामान्य जीवन स्तर से वंचित रखा गया तथा तिब्बत की अर्थव्यवस्था का उपयोग तिब्बत में नए बसने वाले चीनियों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया।

/kkjk 26 ½ तिब्बत से बाहर ले जाकर बच्चों के दिमाग में जबर्दस्ती साम्यवादी विचार भरे गए। उनका इंडोक्ट्रीनेशन किया गया तथा इस प्रकार मां–बाप को अपने बच्चों की शिक्षा का अधिकार खत्म किया गया।

/kkjk 27 % तिब्बतवासियों को उनके अपने समाज के सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी से रोका गया। इस संस्कृति को चीन नष्ट करने पर तुला हुआ है।

चीन का यह आरोप कि तिब्बत में चीन के प्रवेश से पूर्व तिब्बतियों को किसी प्रकार के मानवाधिकार उपलब्ध नहीं थे, तिब्बती जीवन के विषय में असत्य और भ्रामक विवरण पर आधारित पाया गया है। तिब्बती 'विद्रोहियों' के विरूद्ध बलात्कार, लूटमार और यंत्रणा के अभियोग जानबूझ कर गढ़े हुए हैं तथा अन्य मामलों में भी अत्यंत अविश्वसनीय कारण दिए गए हैं।

frCcr dh fLFkfr

समिति ने अपने विचार में यह पाया है कि जिस समय 1951 में शांतिपूर्ण उपायों का समझौता हुआ तिब्बत एक स्वतंत्र विधिवत –'डि–फेक्टो' राज्य था और तिब्बत सरकार द्वारा 1959 में इस समझौते का परित्याग भी पूरी तरह न्यायोचित था। अपने प्रमाणों की जांच में समिति ने प्रमाणभूत दस्तावेजों, सरकारी प्रकाशनों तथा तिब्बत के वर्तमान इतिहास का, जिन्हें जात–अनुभव है, ऐसे विद्वानों तथा अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए दस्तावेजों का उपयोग किया। इन प्रमाणों की जांच से पाया गया कि 1913 से 1950 तक तिब्बत की स्थिति अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से मान्य स्वाधीन राज्य (स्वतंत्र देश) की थी। 1950 में तिब्बत राज्य की अपनी जनसंख्या थी, भू–भाग था और इस भू–भाग पर उनकी अपनी सरकार का शासन था जो अपने समस्त घरेलू मामलों का शासन स्वतंत्र रूप से किसी भी बाहरी दबाव के बिना चालाता था। 1913 से 1950 तक तिब्बत के सभी विदेशी मामलों का संचालन तिब्बत सरकार द्वारा किया जाता था। जिन देशों के साथ तिब्बत के विदेष संबंध थे, वे सभी तिब्बत को स्वतंत्र देश मानते थे।

1951 के 'एग्रीमेंट ऑन पीसफुल मेजर्स फॉर द लिबरेशन ऑफ तिबेत' नामक समझौते पर हस्ताक्षर करके तिब्बत ने अपनी स्वतंत्रता का समर्पण कर दिया। परिशिष्ट 2 देखें। इस समझौते के अंतर्गत जनवादी चीन गणराज्य ने तिब्बत को कई प्रकार के वचन दिए। जिनमें तिब्बत की तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था को कायम रखना; दलाई लामा और पंचेन लामा के पदों और कार्य–व्यवहार को बनाए रखना; धर्म और मठों की स्वतंत्रता की रक्षा करना; तथा तिब्बत में सुधारवादी कदमों की अनिवार्यता से इन्हें मुक्त रखना आदि शामिल थे। समिति ने पाया कि जनवादी चीन गणराज्य ने इन सभी तथा अन्य और वचनों का उल्लंघन किया तथा तिब्बत की सरकार इस समझौते को अमान्य करार देने के योग्य थी और ऐसा उसने 11 मार्च, 1959 को कर दिया।

तिब्बत की स्थिति के संबंध में पिछली जांच इस प्रश्न तक सीमित थी कि क्या तिब्बत का मामला अनिवार्य रूप में जनवादी चीन गणराज्य के घरेलू मामलों के दायरे में आता है? समिति ने यह सोचकर अपने आप को इसी प्रश्न तक सीमित रखा। आधुनिक अंतराष्ट्रीय कानून के अनुसार तिब्बत की वास्तविक न्यायिक स्थिति क्या है इसके पारभाषिक विश्लेषण का प्रयास आवश्यक नहीं समझा गया। समिति का संबंध 1950 के तिब्बत की स्थिति की यह जांच करना भी नहीं था कि उसकी स्वतंत्रता वास्तविक (डी–फेक्टो') है या न्यायिक ('डी–ज्यूरी')। समिति इस बात से ही संतुष्ट रही कि तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र के वैधानिक दायरे में आता है जो राज्य के 'अनिवार्य घरेलू अधिकार क्षेत्र' की प्रतिबंधित परिभाषा में है।

पुरुषोत्तम त्रिकमदास, चेयरमैन

सदस्य : आटुरी ए. एलाफ्रिज, के. बेंत्सी–ऐंशिल, एन.सी. चटर्जी, रोंल्फ क्रिस्टोफर्सन
टी एस फर्नांडो, आंग हुक लिम, आर.पी. मुकर्जी, एम.आर.सेनी प्रमोज

तिब्बत की हालत पर दुनिया को शर्मिंदा होने की जरूरत

तिब्बत की वास्तविक हालत के बारे में अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रिपोर्ट (1997) का सार

neu % U;k;] lekt vkj lLd`fr dk

इस रिपोर्ट में 'तिब्बत' से अभिप्राय 'तिब्बती जाति' के तिब्बत से है जो पूरे तिब्बती पठार में फैला है। इसमें तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र (टीएआर) के रूप में ज्ञात क्षेत्र तथा चीन के पड़ोसी प्रांत किचघाई, सिचुआन, गांसू और युन्नान के तिब्बती प्रवास वाले भाग भी शामिल हैं। चीन 'तिब्बत' का उपयोग केवल' तिब्बती जाति' वाले उस तिब्बत से करता है जिसे अब टार (टी ए आर, तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र) कहा जाता है।

इस रिपोर्ट में तिब्बत में कानून के शासन और मानवाधिकारों की स्थिति की जांच की गई है। जांच में आत्मनिर्णय और अन्य सामूहिक अधिकारों, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों, नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की स्थिति को भी शामिल किया गया है। यद्यपि रिपोर्ट में मध्य तिब्बत पर चीन द्वारा 1950 में किए गए अतिक्रमण से अब तक की अवधि पर चर्चा की गई है, लेकिन हाल के वर्षों की घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है।

रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि 1994 में तिब्बत मामलों पर तृतीय राष्ट्रीय फोरम के बाद से तिब्बत का निरंतर दमन किया जा रहा है। इस फोरम के वरिष्ठ अधिकारियों की एक गुप्त बैठक में निष्कर्ष निकाला गया कि तिब्बत की अस्थिरता का मूल कारण तिब्बतियों पर तिब्बती बौद्धधर्म के शीर्षस्थ व्यक्ति निर्वासित दलाई लामा के बहुत अधिक प्रभाव का होना है। और तब इस क्षेत्र के लिए एक नई रणनीति बनाई गई। फोरम ने क्षेत्र में आर्थिक विकास में गति लाने, तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र–टिबेट ऑटोनॉमस रीजन (टार) में चीनियों को अधिक बसाने, दलाई लामा का प्रभाव कम करने तथा विरोधियों का सफाया करने के उपायों की सिफारिश भी की। इसके फलस्वरूप धार्मिक गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ा दिया गया, दलाई लामा के विरूद्ध चरित्र हनन का ऐसा महा–अभियान छेड़ा गया जो कि सांस्कृतिक क्रांति के बाद वाले समय में अद्वितीय था, राजनैतिक गिरफ्तारियों में वृद्धि हुई, संभावित विरोधियों पर सख्त नजर रखी गई और यहां तक कि गैर–राजनैतिक प्रदर्शनों पर भी शिकंजा कसा गया।

1996 के आरंभ से ही तिब्बत में इस दमन चक्र को और जोर से लागू किया गया, मठों की शिक्षा पद्धति में व्यापक फेरबदल किया गया और भिक्षुओं को निष्कासन की धमकी देकर निष्ठा की शपथ पर हस्ताक्षर कराए गए, तिब्बत से आने वाली सूचनाओं पर शिकंजा कसा गया, एक वरिष्ठ धार्मिक नेता को जेल भेजा गया तथा सार्वजनिक स्थलों पर दलाई लामा का चित्र लगाने पर पाबंदी लगा दी गई। आठ वर्षीय जिस बालक को दलाई लामा ने तिब्बती बौद्ध समाज में दूसरे सबसे बड़े पद पंचेन लामा के रूप में अधिष्ठित किया, उसे नजरबंद कर दिया गया। इस दौरान चीनी नेताओं ने पारंपरिक

तिब्बती संस्कृति के कुछ पहलुओं का संबंध तिब्बती राष्ट्रवाद से जोड़ते हुए उन्हें विकास में रुकावट माना गया और उनके विरूद्ध अभियान छेड़ दिया। 1997 में तो बौद्ध धर्म को विदेशी संस्कृति घोषित कर दिया गया।

मानवाधिकारों पर इस प्रकार का जुल्म और तिब्बत की संस्कृति पर किया गया हमला, तिब्बती लोगों के सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकार–आत्म निर्णय के अधिकार के हनन के साथ हुआ। वहां विदेशी और अलोकप्रिय शासन को बनाए रखने के लिए ही चीन तिब्बती राष्ट्रवादी लोगों को कुचल रहा है और तिब्बत की संस्कृति को नष्ट कर रहा है। अनिच्छुक जनता को उपनिवेश बनाने के लिए चीन ने तिब्बत में चीनी लोगों की गतिविधियों को बढ़ावा और सुविधाएं दीं। आज वे वहां राजनीति, सुरक्षा और अर्थव्यवस्था पर कब्जा किए हुए हैं।

Lok;Rrrk

चीन के संविधान और कानून के अंतर्गत तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र और अन्य स्वायत्त तिब्बती क्षेत्रों को जो आंशिक स्वायत्तता प्रदान की गई है वह बहुत सीमित है क्येंकि अधिकतर स्थानीय सत्ता केंद्रो के लिए केंद्रीय अनुमोदन जरूरी होता है। तिब्बती लोग अपने मामलों की व्यवस्था भी बहुत सीमित दायरे में ही कर सकते हैं। इसका कारण है चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का केंद्रीय प्रभुत्व तथा क्षेत्रीय और स्थानीय प्रशासन में तिब्बती लोगों को सार्थक भागीदारी से वंचित रखना। जहां तिब्बतियों के पास आंशिक सत्ता है वहां भी प्रायः अधिक शक्तिशाली चीनी अधिकारी उन पर हावी रहते हैं। प्रत्येक स्थानीय निकाय पर कम्युनिस्ट पार्टी की समिति अथवा 'नेतृत्व गुट' का दबदबा होता है, इससे वह स्वायत्त रूप में कार्य नहीं कर सकती। सेना और पुलिस में भी चीनी लोगों का प्रभुत्व है। इतिहास में प्रायः तिब्बत विभाजित होता ही रहा है, तिब्बत क्षेत्र के वर्तमान बंटवारे से भी तिब्बत के स्व–शासन को धक्का लगा है क्योकि अधिकतर तिब्बतवासी स्वायत्त क्षेत्र के बाहर चार चीनी प्रांतों में है, जहां वे अल्पसंख्यक हैं।

frCcr dh igpku vkSj laLd`fr dks [krjk

1959 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 'तिब्बत के लोगों के मौलिक मानव अधिकारों और उनकी विशिष्ट संस्कृति तथा धार्मिक जीवन के सम्मान' के लिए आह्वान किया। 1961 और 1965 में महासभा ने दुबारा तिब्बत वासियों को विशिष्ट संस्कृति और धार्मिक जीवन के दमन पर दुख प्रकट किया। 1991 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के 'अल्पसंख्यक संरक्षण और भेदभाव निवारक उप–आयोग' ने उल्लेख किया कि वह मौलिक मानवाधिकारों और स्वतंत्रता पर निरंतर हो रहे आघात के फलस्वरूप तिब्बत के लोगों की विशिष्ट संस्कृति, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान के विरूद्ध खतरे के प्रति अब भी चिंतित है।

आज की बहुत सी चीनी नीतियां तिब्बत की पहचान और संस्कृति के विशिष्ट तत्वों को या तो लगातार नष्ट करने में लगी हैं, या खतरा बनी हुई हैं। वे नीतियां इस प्रकार हैं –

tula[;k LFkkukarj.k

1950 से तिब्बत में भारी संख्या में चीनी आ रहे हैं। इसके पीछे मुख्य कारण हैं – चीनियों को, विशेषकर पेशेवर और पार्टी संगठन के लोगों को, तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र तथा अंदरूनी तिब्बती इलाकों में लाकर बसाने की सरकारी नीति और कार्यक्रम, सरकार द्वारा स्वैच्छिक पलायन को प्रोत्साहन, निर्माण कार्यों के लिए सामान्य श्रमिकों को तिब्बत में लाना तथा सामान्य चीनियों का जीवन–यापन और रोजी रोटी के लिए तिब्बत में आकर बसना। तिब्बत में नए चीनी कस्बे बनाए जा रहे हैं। तिब्बत के शहरी

केंद्रों को चीनी बनाया जा चुका है। पूर्वी तिब्बत में तिब्बतियों की भूमि को कृषि के लिए हथिया लिया गया है। जहां चीनी बस गए हैं वहां उन्होंने व्यापार पर कब्जा कर लिया है तथा समस्त विकास योजनाएं उन्हीं को केंद्र में रखकर बनाई गई हैं। 1994 के तृतीय कार्य फोरम (थर्ड वर्क फोरम) ने तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में चीनियों के आवागमन तथा गतिविधियों को बढ़ाया। जो अंदाज लगाए गए हैं उनसे पता चलता है कि इस समय तिब्बत स्वायत्त स्तर के सभी क्षेत्रों में चीनियों की जनसंख्या लगभग एक तिहाई है (जबकि 1949 में यह मात्र 6 से 10 प्रतिशत थी) तथा तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में 12 से 14 प्रतिशत लोग चीनी हैं (1949 में 0.1 प्रतिशत)।

frCcr dh lkLdfrd /kjkgj

चीनी प्रशासन के आरंभिक वर्षों में ही मठ व्यवस्था को ध्वस्त कर तिब्बती संस्कृति के एक विशेष पहलू को नष्ट कर दिया गया। सांस्कृतिक क्रांति के दौर में भी यह कार्य जारी रहा तथा तिब्बतियों के अद्वितीय धार्मिक भवनों और स्मारकों का विध्वंस किया गया। यही नहीं, तिब्बती लोगों की व्यक्तिगत सांस्कृतिक पहचान पर भी हमले किए गए। अंत में, तिब्बत की भौतिक और प्रचलित संस्कृति का वास्तविक रूप में नाश कर दिया गया, तिब्बत के हजारों मठों में से कुछ ही बच सके। 1979 से चीन सरकार ने तिब्बत में कुछ सांस्कृतिक स्वतंत्रता की अनुमति दी है तथा बहुत से मठ आंशिक रूप से पुनः कार्य करने लगे हैं। लेकिन जिन सांस्कृतिक गतिविधियों की छूट दी गई है, वे नियंत्रित हैं और उनमें किसी प्रकार की राष्ट्रीय भावना का नामो–निशान नहीं रहने दिया गया है। 1979 से चीन के आधुनिकीकरण ने शहरी इलाकों में पारंपरिक तिब्बती धर्मनिरपेक्ष संरचना को नष्ट कर दिया है। ल्हासा में तिब्बतियों के हजारों घरों को ध्वस्त कर दिया गया तथा समूचे आस पड़ोस को तहस–नहस कर जमींदोज कर दिया गया है।

Hkk"kk

शिक्षा, व्यापार और प्रशासन में चीनी भाषा के प्रभुत्व तथा विश्वव्यापी आधुनिकीकरण से तिब्बती लोग मजबूर होकर चीनी भाषा सीख रहे हैं और अपनी छोड़ रहे हैं। तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में लगभग माध्यमिक और उच्च शिक्षा की सभी कक्षाओं में सभी विषयों की पढ़ाई चीनी भाषा में होती है। यहां तक कि तिब्बती कला जैसे विषय भी चीनी भाषा में पढ़ाए जाते हैं। हाल ही में कम्युनिस्ट पार्टी के निर्णय के फलस्वरूप ऐसे कदम उठाए गए हैं जिनके अंतर्गत तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र के तिब्बती भाषा के प्रायोगिक मीडिल स्कूलों को बंद किया जा रहा है तथा साथ ही शिक्षा में तिब्बती भाषा के उपयोग को घटाया जा रहा है, क्योंकि तिब्बती भाषा तिब्बतियों को अपनी स्वाधीन अवस्था के समय के विचारों से जोड़ती है।

fodkl

तिब्बत के विकास कार्यों के अंतर्गत स्वास्थ्य, परिवहन और संचार जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकियां तिब्बत में पहुंची तो हैं लेकिन इन सब में तिब्बतियों को प्रभावी भागीदारी से दूर रखा गया है। इससे विकास के मूलभूत तत्व का कोई अर्थ ही नहीं रहा। अधिकतर तिब्बती छोटे ग्रामीण समुदायों में रहते हैं। उनके जीवन–निर्वाह और रोजी–रोटी की समस्या को अनदेखा किया गया है। चीन के निवेश का उनको किंचित भी लाभ नहीं पहुंचा है। तिब्बती समाज पर तिब्बतियों की गरीबी, चीन के विकास के लिए तिब्बती साधनों के दोहन तथा नए शहरी क्षेत्रों में चीनियों की बसावट से उलटा प्रभाव पड़ा है।

i;koj.k

चालीस वर्ष के दौरान अधिकांश तिब्बती वन्य जीवों को नष्ट कर दिया गया है। वनों को काट डाला गया है। जलागमन क्षेत्र और पहाड़ी ढलानों का विनाश किया गया है, जिसके चलते नीचे के इलाकों में बाढ़ का प्रकोप बढ़ गया है। चीन के इन कार्यों का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव चरागाह भूमि पर तथा वनों पर पड़ा है जो अभी तक पालतू एवं जंगली जानवरों के जीवन–निर्वाह के काम आता था। उसे बंजर बना दिया गया है। चरागाहों का विनाश उस चरम बिंदु पर पहुंच गया है कि यदि इसे बचाने के उपाए नहीं किए गए तो खानाबदोश तिब्बती समाज का अस्तित्व ज्यादा देर तक बना नहीं रह पाएगा।

0;fDr d vf/kdkj

U;k;ikfydk dh Hkfedk % तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में कार्यरत न्यायिक प्रणाली का मूलभूत लक्ष्य चीनी शासन के प्रति तिब्बतियों के विरोध को कुचलना है। वैसे तो कम्युनिस्ट पार्टी की गोद में बैठी न्यायपालिका के कारण पूरे चीन में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, लेकिन तिब्बत का मामला और गंभीर है। इसका कारण है – तिब्बती राष्ट्रवाद के विरूद्ध चीन का निरंतर दमन अभियान। हाल ही में शुरु किए गए अपराध विरोधी अभियान 'कुचल डालो' ने न्यापालिका को 'अलगाववाद' के विरूद्ध और अधिक अधिकार दे दिए हैं। बहुत से तिब्बतियों, विशेषकर राजनैतिक नजरबंदियों को तो न्यायिक प्रक्रिया को सुरक्षित करने वाले प्राथमिक किस्म के अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया है।

f'k{kk dk vf/kdkj % चीन सरकार ने तिब्बती बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने के लिए बड़े कदम उठाए हैं। लेकिन तिब्बत की शिक्षा प्रणाली में चीनी बच्चों की तुलना में तिब्बती बच्चों को कमजोर स्थिति में रखा गया है। तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में मीडिल और माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम सिर्फ चीनी भाषा है। तिब्बती बच्चे कम भर्ती होते हैं और काफी संख्या में पढ़ाई अधूरी छोड़ जाते हैं। तिब्बतियों की शिक्षा के क्षेत्र में पहुंच बहुत कम है तथा तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में अशिक्षा की दर राष्ट्रीय औसत से तिगुनी है। इन तथ्यों से भेदभाव पूर्ण नीति उजागर होती है। ऐसी शिक्षा पद्धति से तिब्बती बच्चों में अपनी सांस्कृतिक पहचान, भाषा और मूल्यों के प्रति सम्मान के स्थान पर हीन भावना आती है क्योंकि वहां चीनी संस्कृति और मूल्यों का प्रभुत्व है।

vkokl dk vf/kdkj % तिब्बती बस्तियों के विनाश, उनका जबरन घरों से निष्कासन और नई आवास व्यवस्था में चीनियों को प्राथमिकता आदि ऐसे कार्य है जिनसे तिब्बतियों के प्रति आवास के मामले में भेदभाव और पक्षपातपूर्ण रवैऐ का प्रमाण मिलता है।

LokLF; dk vf/kdkj % प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं तथा बीमारियों को रोकने वाली दवाओं के कारण तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र के लोगों के स्वास्थ्य स्तर में महत्वपूर्ण सुधार आया है। तिब्बतियों की औसत आयु काफी बढ़ी है, हालांकि यह पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना के सभी समुदायों में सबसे कम है। चीन गणराज्य के राष्ट्रीय औसत की तुलना में तिब्बतियों में शिशु मृत्यु दर तिगुनी है। शिशुओं में कुपोषण की भी गंभीर समस्या है। प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं की महंगी और शोचनीय दशा तथा ग्रामीण स्तर पर प्रशिक्षित चिकित्सा कर्मचारियों को कमी के फलस्वरूप तिब्बतियों का स्वास्थ्य स्तर वैसा नहीं है जैसा कि होना चाहिए।

euekuh utjcfn;k % तिब्बतियों को काफी लंबे समय तक बगैर किसी अभियोग के नजरबंद कर दिया जाता है। तिब्बत की आजादी की शांतिपूर्ण वकालत करने या दलाई लामा के साथ संबंध रखने पर उन्हें जेल भेजना भी निरंतर जारी है। हाल ही के वर्षों में तिब्बत के राजनैतिक बंदियों

की संख्या बढ़कर 600 से अधिक हो गई है। निरंकुश रूप से लोगों को नजरबंद बनाने पर संयुक्त राष्ट्र कार्यकारी दल ने चीन के तथाकथित 'प्रतिक्रांतिवादी' अपराधों की आलोचना की है। उसने मांग की है कि जिन सैकड़ों तिब्बतियों को विचार और धर्म की स्वतंत्रता की अंतर्राष्ट्रीय गारंटी का उल्लंघन करते हुए बंद किया हुआ है, उन्हें रिहा किया जाए। अधिकतर तिब्बती राजनैतिक बंदियों को शांतिपूर्ण प्रदर्शन, प्रचार सामग्री बांटने या लिखने, विदेशियों के साथ अथवा निर्वासित तिब्बत सरकार के लोगों से विचार–विमर्श करने अथवा आजादी समर्थक सामग्री रखने पर गिरफ्तार किया गया है। ज्ञात राजनैतिक कैदियों में एक चौथाई से एक तिहाई तक भिक्षुणियां हैं। कैदियों के बीच 1977 में चीन ने 'प्रतिक्रांतिवादी' अवधारणा के स्थान पर 'राज्य की सुरक्षा के विरूद्ध अपराध' की धारा लागू की जिसमें 'राज्य को तोड़ने' के कार्यों का विशेष तौर पर उललेख करते हुए एक धारा जोड़ी।

;kruk,a % तिब्बत में नजरबंदों को यातनाएं देना और उनके साथ दुर्व्यवहार करना बड़े पैमाने पर जारी है। राजनैतिक कैदियों को बिजली के झटके देना आम बात है। पुलिस अभियानों में गिरफ्तारी के दौरान, नजरबंदों को लाने–ले जाने के दरम्यान तथा नजरबंदी केंद्रों और जेलों में कई तरह की यातनाएं दी जाती हैं और उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। तिब्बतियों को यातनाएं देने की लिखित विधियों में सलाखों, छड़ियों और चेन से पिटाई, नाखून उखाड़ना, शरीर के कोमल अंगों में बिजली के झटके देना, गुप्तांगों और मुंह में बिजली के विशेष यातना यंत्र घुसेड़ना, हाथों को पीठ पीछे बांध कर लटकाना, तथा ठंडे पानी से और ठंडे वातावरण में यातना देना आदि का उल्लेख है। स्त्रियों को, और खासकर भिक्षुणियों को, बहुत ही अशोभनीय और दर्दनाक प्रताड़नाएं उनके महिला होने को लक्ष्य करके दी जाती हैं। उनके वक्षस्थल और गुप्तांगों पर बिजली के डंडों से जुल्म किए जाते हैं और उनके साथ बलात्कार भी किया जाता है।

euekus e`R;qnaM % 1987–89 में जब भारी संख्या में शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे तिब्बतियों पर गोलियां चलाई गई और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया गया, उसके बाद से शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने की कोई पक्की रिपोर्ट नहीं है। उत्पीड़न और लापरवाही के कथित परिणामस्वरूप हाल ही के वर्षों में तिब्बती जेलों में युवा भिक्षुणियों और राजनैतिक कैदियों की मृत्यु हुई है जिनकी संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। तिब्बत में मृत्युदंड लागू होने पर तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में इसका 34 बार उपयोग हुआ बताया जाता है। इन मृत्युदंडों का न्याय या उचित प्रक्रिया से कोई लेना–देना नहीं था।

vfHkO;fDr dh Lora=rk : तिब्बतियों की वैचारिक स्वतंत्रता कठोरता के साथ प्रतिबंधित है। राजनैतिक राष्ट्रवाद को सहन नहीं किया जाता। नेबरहुड–कमेटियां असहमति रखने वाले लोगों की पहचान कर उनमें 'सही विचार' भरती हैं। अपने राजनैतिक विचारों की शांतिपूर्ण अभिव्यक्ति पर तिब्बतियों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है या उन्हें शारीरिक श्रम के काम में लगा कर 'शिक्षित' करने के लिए जेल भेज दिया जाता है। तिब्बत में आने वाली सूचनाओं पर तिब्बत से बाहर जाने वाली सूचनाओं पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। 'कुचल डालो' (स्ट्राईक हार्ड) नामक अपराध विरोधी अभियान के तहत हाल ही के वर्षों में प्रतिबंधों को और कठोर किया गया है। दलाई लामा के चित्रों को सार्वजनिक स्थानों पर प्रदर्शित करने तथा मठों संबंधी शिक्षा देने पर प्रतिबंध है।

/kkfeZd Lora=rk % बौद्ध धर्म तिब्बती लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। फिर भी, तिब्बत में धार्मिक स्वतंत्रता और गतिविधियों में व्यापक हस्तक्षेप किया जाता है। मठों पर स्थानीय सरकार और दलीय संगठनों, पार्टी कार्यकर्ताओं और पुलिस की निगरानी होती है। प्रत्येक मठ का प्रशासन लोकतंत्रीय व्यवस्था समिति–'डेमोक्रेटिक मैनेजमेंट कमेटी'– (डी.एम.सी.) करती है।

1994 के फोरम के बाद से, जब पार्टी ने तिब्बत की अस्थिरता के मूल में दलाई लामा और 'दलाई गुट' के प्रभाव को कारण पाया, तब से तिब्बती बौद्धों पर कड़ी नजर और नियंत्रण रखा जाता है। डीएमसी पर पार्टी का प्रभुत्व बढ़ाया गया है, बिना सरकारी अनुमति के धार्मिक निर्माण नहीं किए जा सकते, किसी भी मठ में सीमित संख्या से अधिक भिक्षु व भिक्षुणियां नहीं रह सकतीं, भिक्षुओं और भिक्षुणियों को कड़ी जांच के बाद प्रवेश दिया जाता है तथा भिक्षु–भिक्षुणियों को दलाई लामा की निंदा के लिए कहा जाता है। इन सभी नियमों का पालन सख्ती से कराया जाता है।

पंचेन लामा के नए अवतार को तलाश और चयन का उपयोग चीन सरकार ने दलाई लामा के राजनैतिक और धार्मिक प्रभाव को समाप्त करने के अपने अभियान को और तेज करने के लिए किया। चयन प्रक्रिया में शामिल वरिष्ठ भिक्षु को नजरबंद किया गया और बाद में जेल में डाल दिया गया। पंचेन लामा के मठ से 'अवांछित तत्वों' को निकाल कर मठ की 'साफ–सफाई' की गई तथा तिब्बती मतावलंबियों और धाार्मिक नेताओं की निष्ठा की जांच उनसे पंचेन लामा को मान्यता देने के मामले में दलाई लामा के हस्तक्षेप की निंदा और चीनी पसंद के पंचेन लामा को स्वीकार करा कर की गई। पहले तो दलाई लामा के चित्र के सार्वजनिक प्रदर्शन पर रोक लगाई गई और बाद में इसे निजी तौर पर रखना भी प्रतिबंधित कर दिया गया।

1996 में मठों में 'देश भक्ति शिक्षा अभियान' आरंभ किया गया जो अभी भी जारी है। बड़े मठों के भिक्षुओं को 'पुनर्शिक्षित' करने हेतु गहन अभियान चलाने के लिए वहां बड़े–बड़े कार्यदल भेजे गए। इन शिक्षा कक्षाओं में भिक्षुओं से दलाई लामा की निंदा कराई जाती है। इस पुनर्शिक्षा कार्यक्रम का विरोध करने वाले सैकड़ों भिक्षुओं को मठों से निकाल दिया गया जबकि 90 ऐसे भिक्षुओं को गिरफ्तार कर लिया गया। चीनी सैनिकों ने इन मठों पर गोलीबारी भी की जिसके फलस्वरूप एक भिक्षु मारा गया और तीन घायल हुए।

,d= gkus dh Lor=rk % तिब्बत में शांतिपूर्ण प्रदर्शनों को मिनटों में तितर–बित्र कर दिया जाता है। इन प्रदर्शनों में भाग लेने वालों को मारा पीटा जाता है और गिरफ्तार कर लिया जाता है। यह सब कुछ आजादी समर्थक भावनाओं के प्रदर्शन को कुचलने की नीति के तहत किया जाता है।

tul[;k fu;=.k % वैसे तो तिब्बतियों की जनसंख्या बहुत कम और यत्र–तत्र बसी हुई है। फिर भी, चीन सरकार ने तिब्बती महिलाओं के मातृत्व पर सीमा लगाई हुई है। हालांकि यह सीमा उतनी कठोर नहीं है, जितनी चीनी महिलाओं पर है। हर क्षेत्र के लिए यह सीमा अलग–अलग है, जिसे अनिवार्य जुर्माने, गर्भपात और नसबंदी द्वारा लागू किया जाता है। विभिन्न कानूनी अधिकारों के उल्लंघन और महिलाओं के स्वास्थ्य को गंभीर खतरों के बावजूद यह होता है। इससे 'अनाधिकृत' बच्चों को स्कूल में प्रवेश और अन्य लाभों तथा अधिकारों को प्राप्त करने में आमतौर पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

frCcr dh dkuuh fLFkfr % केंद्रीय तिब्बत ने, तिब्बत का वह भाग जिसका शासन ल्हासा से संचालित था, 1913 से 1950 तक राज्य (स्वतंत्र देश) होने की उन शर्तों को पूरा किया जो आमतौर पर अंतर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत स्वीकार्य हैं। 1950 में जनसंख्या, भूमि और उस भूमि पर ऐसी सरकार अस्तित्व में थी जो बगैर किसी बाहरी प्रभुत्व के अपने घरेलू मामलों का स्वतंत्रता से संचालन कर रही थी। 1913 से 1950 तक केंद्रीय तिब्बत के विदेश संबंध मात्र तिब्बत सरकार के द्वारा संचालित थे। इस प्रकार 1951 में चीनी अतिक्रमण के समय, जब उसने चीन के समक्ष अपनी स्वतंत्रता का समर्पण किया तब '17 सूत्री समझौते' के अंतर्गत चीन ने कई प्रकार के आश्वासन दिए जिनमें–तिब्बत की तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखना, दलाई लामा के कार्य और पद को बनाए रखना,

धर्म की और मठों की स्वतंत्रता की रक्षा करना तथा उन्हें अनिवार्य 'सुधारों' के दायरे से बाहर रखना आदि शामिल था। चीन ने इन तथा अन्य आश्वासनों का आगे चलकर खुला उल्लंघन किया। तिब्बत सरकार को इस समझौते के परित्याग का पूरा अधिकार था और उसने 1959 में ऐसा ही किया।

vkRe&fu.k; % तिब्बत के लोग 'विदेशी दासता की प्रजा' हैं और अंतराष्ट्रीय कानून के अंतर्गत उन्हें आत्म–निर्णय का अधिकार है जिससे वे अपनी राजनैतिक स्थिति का स्वतंत्रता से निर्धारण कर सकते हैं। तिब्बती लोगों ने अभी तक इस अधिकार का उपयोग नहीं किया है, जो कि उनकी इच्छा की वास्तविक और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।

fl Qkfj'k

इस रिपोर्ट की मुख्य सिफारिश तिब्बत के लोगों की इच्छा ज्ञात करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में जनमत संग्रह कराने की है। इस जनमत संग्रह में वोट देने का अधिकार, 1950 से पूर्व तिब्बत में रह रहे तिब्बतियों तथा अन्य लोगों और उनके उत्तराधिकारियों तथा तिब्बती शरणार्थियों और उनके उत्तराधिकारियों को है। जनमत संग्रह उन स्थानों पर कराया जाना चाहिए जहां जातिगत तिब्बती समाज के लोग ऐतिहासिक तौर पर बहुसंख्यक थे तथा जहां वे निर्वासित समुदाय के रूप मे हैं। आत्मनिर्णय के इस अधिकार के उपयोग का परिणाम एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना के रूप में, एक वास्तविक स्व–शासन के रूप में, चीन के साथ तिब्बत की वर्तमान स्थिति को निरंतर रखने के रूप में या अन्य किसी ऐसी स्थिति के रूप में हो सकता है जिसे तिब्बत की जनता स्वतंत्रता से निर्धारित करे।

इस रिपोर्ट की अन्य विशिष्ट सिफारिशें अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून पर चीन की बाध्यताओं के उल्लंघन के रूप में हैं तथा उनका यहां विस्तृत विवरण आवश्यक नहीं है। फिर भी, कुछ मुख्य सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैं –

tuoknh phu x.kjkT; ls fl Qkfj'k

0 तिब्बत के लोगों की भावना का आदर करते हुए तिब्बत समस्या के समाधान हेतु दलाई लामा और तिब्बत की निर्वासित सरकार के साथ बातचीत शुरू करना।

0 इस रिपोर्ट में व्यक्त अतिक्रमणों को समाप्त कर यह सुनिश्चित करना कि तिब्बतियों के मौलिक मानवाधिकारों का सम्मान हो।

0 तिब्बती लोगों की विशिष्ट संस्कृति, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान पर खतरे को समाप्त करना, विशेषकर उन नीतियों पर रोक लगाना जिनसे चीनी लोग तिब्बत क्षेत्र में जाकर बस रहे हैं।

0 मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र की प्रक्रिया के साथ सहयोग करना। विशेषकर संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा दमन, मुकदमों, निरंकुश, मनमाने और न्याय प्रक्रिया से बाहर प्राणदंड, महिलाओं के प्रति हिंसा, लापता होने, मनमानी नजरबंदी तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता की स्थिति के आकलन के लिए उन्हें निर्बाध और अर्थपूर्ण दौरों की सुविधाएं प्रदान करना। जिन लोगों की नजरबंदी को 'निरंकुश नजरबंदी कार्यदल' (वर्किंग ग्रुप ऑन आर्बिट्रेरी डिटेंशन) ने मनमाना करार दिया हो, उन नजरबंदों और ऐसे ही अन्य कैदियों को रिहा करना। 'धार्मिक असहिष्णुता पर इस प्रक्रिया द्वारा नियुक्त विशेष संपर्ककर्ता' की सिफारिशों को लागू करना तथा उसे बाद में तिब्बती लोगों तक निर्बाध रूप से पहुंचते रहने के लिए अनुमति देना।

0 नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय मान्यता के दस्तावेज (इंटरनेशनल कोवेनंट ऑन सिविल एंड पोलिटिकल राइट्स) और इसके ऐच्छिक प्रोटोकॉल तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय मान्यता के दस्तावेज (इंटरनेशनल कोवेनंट ऑन इकॉनामिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स) की बिना किसी शर्त के पुष्टि करना।

0 स्वतंत्र मानवाधिकार पर्यवेक्षकों को बिना किसी बाधा के तिब्बत पहुंचने की अनुमति देना।

l;Dr jk"V egklHkk l &

0 तिब्ब्त के प्रश्न पर अपने 1959, 1961 और 1965 के संकल्पों पर विचार–विमर्श पुनः जारी करें।

l;Dr jk"V ekuokf/kdkj vk;kx l –

0 तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति की जांच के लिए विशेष संपर्ककर्ता नियुक्त करें जो मानवाधिकार स्थिति पर सही रपट दे।

l;Dr jk"V egklfpo l &

0 अपने उच्च पद का उपयोग करके तिब्बत समस्या के शांतिपूर्ण समाधान के प्रयत्न के लिए विशेष दूत की नियुक्ति तथा तिब्बत के लोगों की भावनाओं को जानने के लिए संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में जनमत संग्रह सुनिश्चित करें।

vrjk"Vh; lenk; l &

0 इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के अनुसार जब तक तिब्बत में जनमत संग्रह का आयोजन न हो, तब तक राष्ट्रों अथवा अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा तिब्बत की कानूनी स्थिति पर कोई दृष्टिकोण तय करने से दूर रहना चाहिए।

0 तिब्बत के विकास के लिए दी जाने वाली सहायता का लाभ तिब्बत के लोगों को मिलना चाहिए। इसके लिए उसे परियोजना निर्माण के हर चरण में तिब्बती लोगों की भागेदारी सुनिश्चित करनी चाहिए, पर्यावरण और विकास के संबंध में तिब्बत की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए तथा तिब्बत क्षेत्र में चीन की गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए।

frCcr dh fuokflr ljdkj l &

0 तिब्बत के लोगों की भावनाओं के अनुसार तिब्बत समस्या के समाधान हेतु चीन सरकार के साथ बातचीत आरंभ करें।

0 तिब्बत के लोगों की इच्छा जानने के लिए तिब्बत में और निर्वासित तिब्बती समुदाय के बीच संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में होने वाले जनमत संग्रह के आयोजन में सहयोग करें।

——

उपनिवेशवाद की 17–सूत्री 'संधि'
चीन मे तिब्बत के विलय के लिए तिब्बती प्रतिनिधिमंडल पर बीजिंग यात्रा के दौरान जबरन थोपी गई संधि

बीजिंग में हुई उस तथाकथित '17–सूत्री संधि' का चीनी आलेख जिसके बारे में चीन सरकार का दावा है कि इस पर मई 1951 में चीन और तिब्बत की सरकारों ने हस्ताक्षर करके चीन में तिब्बत के 'विलय' का फैसला किया था। इस बारे में दलाई लामा की तिब्बत सरकार का दावा है कि जिस प्रतिनिधिमंडल के साथ यह तथाकथित 'समझौता' किया गया उसे तिब्बत की ओर से किसी तरह का समझौता करने का अधिकार नहीं दिया गया था। समझौते का मसौदा भी चीनी पक्ष ने ही तैयार किया था। दलाई लामा ने अपनी आत्मकथा में आशंका व्यक्त की है कि संभवतया तिब्बती प्रतिनिधिमंडल को धमकाकर उसे हस्ताक्षर करने पर मजबूर किया गया। उनका आरोप है कि इस 'समझौते' पर तिब्बत सरकार की नकली मुहर लगाई गई क्योंकि असली मुहर दलाई लामा के पास थी जो चीन के हमले के बाद ल्हासा से भागकर भारत की सीमा के निकट दक्षिणी तिब्बत में रह रहे थे। बाद में मार्च 1959 में तिब्बत छोड़ कर भारत में शरण लेने से पहले दलाई लामा ने इस संधि को निरस्त करने की आधिकारिक घोषणा की थी। – संपादक

''केंद्रीय जनतांत्रिक सरकार तथा तिब्बत की स्थानीय सरकार के बीच तिब्बत की शांतिपूर्ण मुक्ति हेतु लिए जाने वाले उपायों पर समझौता'' : 23 मई, 1951

चीनी सीमाओं के भीतर तिब्बती राष्ट्रीयता कई राष्ट्रीयताओं में से एक है जिसका लंबा इतिहास है। इसने महान मातृभूमि के निर्माण तथा विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है। परंतु पिछले सौ वर्षों से अधिक समय से साम्राज्यवादी शक्तियां चीन में प्रवेश करती रहीं। परिणामस्वरूप ये तिब्बत में भी घुस आए तथा धोखाधड़ी और भड़काने वाले कृत्य करना आरंभ कर दिया। पिछली प्रतिक्रियावादी सरकारों की भांति के.एम.टी. प्रतिक्रियावादी सरकार ने राष्ट्रीयताओं के बीच कठोरता और मतभेद बनाए रखने की नीति जारी रखी ताकि तिब्बती लोगों में मतभेद व पृथकता बनी रहे। तिब्बत की स्थानीय सरकार ने साम्राज्यवादी धोखे और भड़काऊ कृत्यों का विरोध नहीं किया परंतु अपनी मातृभूमि के प्रति बेइमानी का दृष्टिकोण अपनाया। ऐसी परिस्थिति में तिब्बती राष्ट्रीयता वाले लोग गुलामी और कष्टों के अथाह सागर में डूब गए। सन 1949 में राष्ट्रीय स्तर पर चीन के जनवादी आक्रमण के परिणामस्वरूप तिब्बत–मुक्ति आंदोलन सफल हुआ और सभी राष्ट्रवादियों के आंतरिक शत्रु के.एम.टी. (कुओ मिन तांग) की प्रतिक्रियावादी सरकार को हरा दिया गया; सभी राष्ट्रवादियों के आम विदेशी शत्रुओं आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को निकाल बाहर किया गया। इस बुनियाद पर पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना एवं सेंट्र पीपुल्स गवर्नमेंट की स्थापना की घोषणा हुई। चीनी जनवादी राजनीतिक सलाहकार परिषद के अनुसार केंद्रीय जनवादी सरकार ने घोषणा की कि पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना की अपनी सीमाओं

में सभी राष्ट्र समान हैं और यह कि वे एकता और परस्पर सहयोग की स्थापना करेंगे, साम्राज्यवाद एवं अपने सार्वजनिक शत्रुओं का विरोध करेंगे ताकि पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना अपने समस्त राष्ट्रवादियों समेत भ्रातृत्व एवं सहयोग से परिपूर्ण एक बृहत राष्ट्रीय परिवार बन सके। चीनी जनवादी गणतंत्र के इस बड़े परिवार में उन क्षेत्रों को जहां राष्ट्रीय अल्पसंख्यकता है क्षेत्रीय स्वायतता प्रदान की जाएगी। सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को अपने लिखित एवं बोलने वाली भाषाओं के विकास की स्वतंत्रता होगी, अपने रीति, रिवाज, धार्मिक विश्वासों के संरक्षण एवं सुधार की स्वतंत्रता होगी और केंद्रीय जनवादी सरकार राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को अपने राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक रचनात्मक कार्यों के विकास हेतू सहयोग देगी। तब से तिब्बत और ताइवान के क्षेत्र में रह रहे राष्ट्रवादियों के अलावा सभी ने आजादी का उपभोग किया है। चीनी जनवादी सरकार के एकीकृत नेतृत्व के और जनवादी सरकार के ऊंचे स्तर के प्रत्यक्ष नेतृत्व के तहत सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता का उपभोग किया है और राष्ट्रीय क्षेत्रवादी स्वायतता का उपभोग कर रहे हैं। तिब्बत से आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को खत्म करने के लिए, क्षेत्र का एकीकरण व चीन के जनवादी गणतंत्र की संप्रभुता की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा की मजबूती के लिए, अन्य राष्ट्रवादियों की तरह तिब्बतियों को भी आजाद किया जा सकता है ताकि वे भी चीनी जनवादी गणतंत्र के बृहत परिवार में राष्ट्रीय समानता के सभी अधिकारों का उपभोग कर सकें और राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक कार्यों का विकास कर सकें। केंद्रीय जनवादी सरकार ने जन वाहिनी सेना को तिब्बत में मार्च करने का आदेश दिया, तिब्बत की स्थानीय सरकार को तिब्बत में शांतिपूर्ण मुक्ति की बहाली हेतु वार्ता करने को प्रतिनिधि भेजने की सूचना दी। अप्रैल 1951 के उत्तरार्द्ध में पूर्ण अधिकार युक्त तिब्बती स्थानीय सरकार के प्रतिनिधि पेकिंग पहुंचे। तिब्बत के इन प्रतिनिधियों से दोस्ताना बातचीत के लिए चीनी जनवादी सरकार ने भी पूर्ण अधिकार युक्त प्रतिनिधि नियुक्त किए। वार्ता का परिणाम है कि दोनों पार्टियां प्रस्ताव की स्थापना पर यह आश्वासन देने हेतु कि उसका क्रियान्वयन होगा सहमत हुई हैं–

1. तिब्बती लोग एक होंगे और तिब्बत से आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को खदेड़ेंगे व तिब्बती लोग मातृभूमि के वृहत परिवार चीनी जनवादी गणतंत्र में लौटेंगे।

2. राष्ट्रीय सुरक्षा की बहाली हेतु तिब्बत में जनमुक्ति सेना के प्रवेश को तिब्बत की स्थानीय सरकार मदद देगी।

3. चीनी लोगों की राजनीतिक सलाहकार समिति की योजना के मुताबिक तिब्बतियों को भी चीन की जनवादी केंद्रीय सरकार के नेतृत्व में क्षेत्रीय स्वायत्तता के उपभोग का हक होगा।

4. केंद्रीय सत्ता, तिब्बत की राजनीतिक व्यवस्था, दलाई लामा की प्रतिष्ठित छवि, अधिकार व कार्यों में फेरबदल नहीं करेगी और विभिन्न पदों पर नियुक्त अधिकारी पूर्ववत कायम रहेंगे।

5. पंचेन लामा की प्रतिष्ठित छवि, अधिकार व कार्यों को बहाल रखा जाएगा।

6. दलाई लामा और पंचेन लामा की प्रतिष्ठित छवि, अधिकार व कार्यों से तात्पर्य तेरहवें दलाई लामा और नवें पांचेन लामा की छवि अधिकारों व कार्यों से है जब इनके संबंध दोस्ताना थे।

7. चीनियों की राजनीतिक सलाहकार समिति योजना में जिन धार्मिक विश्वासों की बात कही गई है उन्हें संरक्षण दिया जाएगा। केंद्रीय सत्ता मठों की आमदनी में किसी प्रकार का फेरबदल नहीं करेगी।

8. तिब्बती फौज चीन की जनमुक्ति सेना का अंग समझी जाएगी और राष्ट्रीय सुरक्षा बल के रूप में केंद्रीय जनवादी सरकार का अंग बनेगी।

9. तिब्बत की वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार तिब्बत की बोलचाल व लिखाई की भाषा एवं राष्ट्रीयता का विकास होगा।

10. तिब्बती कृषि, उद्योग व वाणिज्य का क्रमिक विकास होगा और तिब्बत की वास्तविक परिस्थितियों के हिसाब से ही तिब्बतियों की जीविका का विकास होगा।

11. तिब्बत में विभिन्न प्रकार के सुधारों के प्रश्न पर केंद्रीय सत्ता किसी दबाव का इस्तेमाल नहीं करेगी। तिब्बत की स्थानीय सरकार को अपने हिसाब से सुधार करने चाहिए और जब लोग सुधार के लिए आवाज उठाएं तिब्बत के स्तरीय अधिकारियों से संपर्क के द्वारा इसका समाधान होना चाहिए।

12. अगर पूर्व साम्राज्यवादी विचारधारा वाले और के.एम.टी. के समर्थक अधिकारी दृढ़ता से साम्राज्यवाद एवं के.एम.टी. से संबंधों को पृथक करने का फैसला करेंगे और प्रतिरोध एवं तोड़फोड़ में हिस्सा नहीं लेंगे तो उनके अतीत की परवाह किए बिना उन्हें उनके सरकारी पदों पर रहने दिया जाएगा।

13. तिब्बत में प्रवेश करने वाली जनमुक्ति सेना ऊपर वर्णित नीतियों का पालन करेगी और हर प्रकार के क्रय–विक्रय में ईमानदार रहेगी तथा आम जनता से सूई या धागा के बराबर कोई चीज भी जबरन या मुफ्त नहीं लेगी।

14. केंद्रीय जनवादी सरकार तिब्बती क्षेत्र के सभी बाहरी मामलों को संचालित करेगी। पड़ोसी राष्ट्रों से शांतिपूर्ण सद्भाव कायम रखा जाएगा और समानता, पारस्परिक लाभ एवं एक दूसरे के क्षेत्र एवं संप्रभुता के सम्मान को ध्यान में रखकर वाणिज्यिक एवं व्यापारिक संबंध कायम किए जाएंगे।

15. प्रस्तावना में वर्णित तथ्यों के क्रियान्वयन की तसल्ली हेतु केंद्रीय जनवादी सरकार तिब्बत में एक सैनिक व प्रशासकीय समिति का गठन करेगी और मुख्य सैनिक क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना करेगी और केंद्रीय जनवादी सरकार से अधिकारियों को भेजने के अलावा कार्य संपादन हेतु तिब्बत की स्थानीय सरकार में से भी कुछ अधिकारियों की नियुक्ति करेगी। सैनिक और प्रशासकीय समिति के लिए कार्य करने वाले स्थानीय तिब्बती अधिकारियों में तिब्बत की स्थानीय सरकार के देशभक्त तत्व, विभिन्न जिलों और प्रमुख मठों के लोग हो सकते हैं जिनके नामों की सूची केंद्रीय जनवादी सरकार के प्रतिनिधि एवं विभिन्न हेडक्वाटर्स से बातचीत के आधार पर तैयार की जाएगी। उनके नामों के अनुमोदन हेतु केंद्रीय जनवादी सरकार को भेजा जाएगा।

16. सैनिक और प्रशासकीय समिति, सैनिक क्षेत्र हेडक्वाटर्स एवं तिब्बत में प्रवेश करने वाली जनमुक्ति सेना के रख–रखाव पर होने वाले खर्च का वहन केंद्रीय जनवादी सरकार करेगी।। जनमुक्ति सेना को भोजन, चारा और दैनिक आवश्यकता की अन्य वस्तुओं की खरीद एवं परिवहन में तिब्बत की स्थानीय सरकार मदद करेगी।

17. यह प्रस्तावना उस पर मुहर और हस्ताक्षर होने के तुरंत बाद से लागू हो जाएगी।

dsanh; tuoknh ljdkj ls i.k vf/kdkj iklr ifrfuf/k;ksa }kjk gLrk{kfjr o eqgjcan

e[; ifrfuf/k – ली.वी. हान 'राष्ट्रीयताओं के मामलों संबंधी के कमीशन के अध्यक्ष'
ifrfuf/kx.k – चांग चिंग–वू, चांग कुओ हुआ, सुन चिह–युआन।

frCcr dh LFkkuh; ljdkj dh vksj ls i.k vf/kdkj iklr ifrfuf/kx.kA

e[; ifrfuf/k : कालोन न्गाबो न्गावाड. जिग्मे 'न्गाबो शापे'
ifrfuf/kx.k : छासाक खेमे, सोनम वांग्दी, खेंत्रुंग थुप्तेन, तेन्थर खेनचुंग, थुप्तेन लेक्मुन रिम्शी, सैम्पोजे तेनज़िन ठुंदुप।

स्ट्रासबोर्ग प्रस्ताव

तिब्बत की समस्या केवल शांति और अहिंसा से सुलझेगी

यूरोपीय संसद में दलाई लामा का ऐतिहासिक पांच–सूत्री प्रस्ताव

स्ट्रासबोर्ग, फ्रांस 15 जून, 1988

आज हम एक दूसरे पर आश्रित दुनिया में रह रहे हैं किसी एक राष्ट्र की समस्याएं अब अकेले उससे हल नहीं हो सकतीं। सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की भावना के बिना हमारा अपना ही वजूद खतरे में है। लिहाजा, मैंने हमेशा दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों के बीच बेहतर समझ, निकट सहयोग और अधिक सम्मान की जरूरत में विश्वास किया है। यूरोपीय संसद एक प्रेरणादायक मिसाल है। युद्ध की अराजकता से अलग जो कभी दुश्मन थे एक ही पीढ़ी में साथ–साथ रहना और सहयोग करना सीख गए हैं। लिहाजा, मुझे यूरोप संसद में इस सभा को संबोधित करते हुए प्रसन्नता हो रही है और सम्मान लग रहा है।

जैसा कि आप जानते हैं कि मेरा देश–तिब्बत बहुत मुश्किल दौर से गुजर रहा है। तिब्बती–खासकर जो चीनी कब्जे में जी रहे हैं– स्वतंत्रता, न्याय और खुद से तय भविष्य चाहते हैं ताकि वे अपनी अनोखी पहचान को बचाने में पूरी तरह सक्षम हो सकें और अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्वक रह सकें।

एक हजार साल से भी अधिक अरसे से हम तिब्बतियों ने आध्यात्मिक और पर्यावरण संबंधी मान्यताओं को बरकरार रखा ताकि ऊंचे पठार पर, जहां रहते हैं, जीवन के कोमल संतुलन को साधा जा सके। अहिंसा और करूणा के बौद्ध संदेश से प्रेरित और अपने पहाड़ों से सुरक्षित होकर हमने जीवन के हर रूप का सम्मान किया और युद्ध को त्याग दिया।

दो हजार वर्षों से भी अधिक पुराना हमारा इतिहास स्वतंत्रता का इतिहास है। 127 ई. पूर्व अपने राष्ट्र की नींव रखे जाने के बाद से हम तिब्बतियों ने कभी अपनी प्रभुता विदेशी ताकत को नहीं सौंपी। जैसा की हर राष्ट्र के साथ हुआ तिब्बत ने ऐसा समय देखा जिसमें हमारे पड़ोसियों–मंगोल, मंचू, चीनी, ब्रिटिश और नेपाल के गोरखाओं ने हमें प्रभावित करने की कोशिश की। ये युग जल्द ही बीत गए और तिब्बती लोगों ने कभी भी उन्हें स्वीकार नहीं किया क्योंकि उससे राष्ट्रीय संप्रभुता समाप्त हो जाती। सच तो यह है कि कई बार तिब्बत के शासकों ने चीन और पड़ोसी देशों के बड़े इलाकों पर कब्जा कर लिया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम तिब्बती उन क्षेत्रों पर अपना दावा कर सकते हैं।

1949 में चीनी गणराज्य ने तिब्बत पर जबरन कब्जा किया। तब से तिब्बत ने अपने इतिहास के सबसे काले युग को बर्दाश्त किया है। कब्जे की वजह से हमारे दस लाख से अधिक लोग जान गंवा चुके हैं। एक पूरी पीढ़ी ऐसी आ गई है जो शिक्षा, आर्थिक अवसर अपना राष्ट्रीय चरित्र की भावना से वंचित है। हालांकि वर्तमान चीनी नेतृत्व ने कुछ सुधार लागू किया है लेकिन वह तिब्बती इलाके बड़े पैमाने पर जनसंख्या स्थानांतरण को भी बढ़ावा दे रहा है। इस नीति के चलते 60 लाख तिब्बती अपने ही देश में अल्पसंख्यक हो गए हैं। सभी तिब्बतियों की ओर मैं आपको दुख के साथ बता रहा हूं कि

हमारी विभीषिका जारी है।

मैंने हमेशा अपने लोगों से आग्रह किया है कि अपने दुखों को दूर करने के प्रयास में हिंसा पर न उतरें। फिर भी मेरा मानना है कि सभी लोगों को अन्याय के खिलाफ शांतिपूर्वक विरोध करने का नैतिक अधिकार है। दुर्भाग्यवश, तिब्बत में चीनी पुलिस और सेना विरोध प्रदर्शनों को हिंसक तरीकों से दबाती रही है। मैं अहिंसा की सलाह देता रहूंगा लेकिन जब तक चीन अपने बर्बर तरीकों को नहीं छोड़ेगा तब तक तिब्बतियों को स्थिति के और बिगड़ने के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

प्रत्येक तिब्बती को अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता की उम्मीद है और वह उसके लिए प्रार्थना करता है। हमारे हजारों लोगों ने अपने जीवन की बलि चढ़ा दी है और हमारा पूरा राष्ट्र इस संघर्ष में दुख झेल रहा है। यहां तक कि हाल के महीनों में तिब्बतियों ने इस बेशकीमती लक्ष्य को हासिल करने के लिए बहादुरी के साथ अपने जीवन की बलि चढ़ाई है। दूसरी ओर चीनी तिब्बती लोगों की आकांक्षाओं को समझने में पूरी तरह विफल रहे और बर्बर दमन की नीति को जारी रखा।

मैंने अपने राष्ट्र की दुर्दशा दूर करने के लिए वास्तविक हल के बारे में लंबे समय तक विचार किया। मेरे मंत्रिमंडल और मैंने कई मित्रों और संबंधित लोगों के विचार मांगे। परिणामस्वरूप, 21 सितंबर, 1987 को वाशिंगटन, डीसी, कांग्रेस नेशनल ह्यूमन राइट्स कॉकस के सामने मैंने तिब्बत के लिए पांच सूत्रीय शांति योजना की घोषणा की। उसमें मैंने तिब्बत को शांतिपूर्ण क्षेत्र, एक ऐसा अभयारण्य बनाने का आह्वान किया जिसमें मानव और प्रकृति दोनों सामंजस्य के साथ रह सकते हैं। मैंने मानवाधिकारों और लोकतांत्रिक आदर्शों का सम्मान, पर्यावरण संरक्षण और तिब्बत में चीनी आबादी के स्थानांतरण पर रोक लगाने का भी आह्वान किया।

शांति योजना के पांचवें बिंदु में तिब्बतियों और चीनियों के बीच शीघ्र और गंभीर समझौते का आह्वान किया गया। लिहाजा हमने कुछ विचार तैयार करने की पहल की जो हमें उम्मीद है, तिब्बत के मुद्दे को सुलझाने का आधार बन सकता है। मैं इस मौके से यहां सम्मानित सभा को अपने विचार के मुख्य बिंदुओं से अवगत कराना चाहूंगा।

'चोलका– सुम' (त्रि–प्रांत) यानी ऊत्सांग, खम और आम्दो नाम वाले तीन प्रांतों के रूप में मशहूर पूरे तिब्बत को चीनी गणराज्य के साथ सबकी भलाई, उनके और पर्यावरण के संरक्षण की खातिर लोगों की सहमति से कानून पर आधारित स्वशासी, लोकतांत्रिक राजनैतिक हस्ती बना देना चाहिए।

चीनी गणराज्य की सरकार तिब्बत की विदेश नीति के लिए जिम्मेदार रह सकती है। लेकिन तिब्बत सरकार अपने विदेशी मामलों के ब्यूरो के जरिए धर्म, वाणिज्य, शिक्षा, संस्कृति, पर्यटन, विज्ञान, खेलकूद और दूसरी अराजनैतिक गतिविधियों के क्षेत्र में संबंध कायम कर उन्हें बरकरार रख सकती है। तिब्बत को इस तरह की गतिविधियों से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में शामिल होना चाहिए।

तिब्बत सरकार बुनियादी नियम को जारी रखते हुए बनाई जानी चाहिए। बुनियादी कानून में लोकतांत्रिक सरकार की व्यवस्था होनी चाहिए और सरकार को समानता, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि तिब्बत की सरकार को तिब्बत और तिब्बतियों से जुड़े हर मामले में फैसला करने का अधिकार होगा।

चूंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता किसी समाज के विकास का असली स्रोत और ताकत है लिहाजा तिब्बत की सरकार भाषण, सभा करने और धर्म मानने के अधिकारों समेत सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा पर अमल करते हुए इस स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी। चूंकि धर्म तिब्बत की राष्ट्रीय

पहचान का स्रोत है, आध्यात्मिक मान्यताएं तिब्बत की संपन्न संस्कृति में निहित हैं लिहाजा अपनी प्रथा की रक्षा और विकास तिब्बत सरकार का विशेष कर्तव्य होगा।

सरकार में लोगों द्वारा चुना गया मुख्य कार्यकारी, दो सदनों वाली विधायिका और स्वतंत्र न्यायपालिका होनी चाहिए। उसकी राजधानी ल्हासा में होनी चाहिए।

तिब्बत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था तिब्बती लोगों की इच्छाओं के मुताबिक तय की जानी चाहिए। उसमें पूरी आबादी के जीवन स्तर को बढ़ाने की जरूरत को ध्यान में रखना चाहिए।

तिब्बत की सरकार को वन्यजीवन और पेड़—पौधों के संरक्षण के लिए सख्त कानून बनाना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों का ध्यान से दोहन करना चाहिए। परमाणु और दूसरे हथियारों के निर्माण, परीक्षण और भंडारण के साथ ही परमाणु ऊर्जा और खतरनाक कचरा उत्पन्न करने वाली दूसरी प्रौद्योगिकियां होनी चाहिए। तिब्बत को इस उपग्रह का सबसे बड़ा प्राकृतिक भंडार बनाना तिब्बत सरकार का लक्ष्य होगा।

यह सुनिश्चित करने के लिए एक क्षेत्रीय शांति सम्मेलन आयोजित किया जाना चाहिए ताकि असैन्यीकरण के जरिए तिब्बत वास्तव में शांति का अभयारण्य बन जाए। जब तक इस तरह का शांति सम्मेलन आयोजित नहीं किया जाएगा और असैन्यीकरण और निर्गुटता नहीं लाई जाएगी चीन को तिब्बत में सीमित सैन्य साजो—सामान रखने का अधिकार होगा। ये सिर्फ रक्षा के उद्देश्य से रखे जाने चाहिए।

सार्थक समझौता वार्ताओं के लिए विश्वासमय माहौल बनाने की खातिर चीन को तिब्बत में मानवाधिकारों का हनन बंद कर देना चाहिए और तिब्बत में चीनियों के स्थानांतरण की नीति त्याग देनी चाहिए।

मेरे जेहन में ये ही विचार हैं। मुझे मालूम है कि कई तिब्बतियों को इस संयत रवैए से निराशा होगी। निस्संदेह, आने वाले महीनों में तिब्बत और निर्वासित दोनों जगह हमारे समुदाय में काफी चर्चा होगी। लेकिन यह किसी भी परिवर्तन की प्रक्रिया का जरूरी और महत्वपूर्ण हिस्सा है। मेरा मानना है कि बातचीत के जरिए चीन के अपने हितों को बरकरार रखने के साथ तिब्बत की अलग पहचान और तिब्बती लोगों को मौलिक अधिकार दोबारा मिल सकते हैं। लेकिन मैं यहां स्पष्ट करना चाहूंगा कि चीनियों के साथ समझौतों का चाहे जो भी निष्कर्ष निकले आखिरी फैसले का अधिकार खुद तिब्बती लोगों को दिया जाना चाहिए। लिहाजा, किसी तरह के प्रस्ताव में एक व्यापक प्रक्रियात्मक योजना होगी ताकि राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह में तिब्बती लोगों की मंशा का पता चल सके।

मैं इस अवसर पर यह बताना चाहूंगा कि मैं तिब्बत की सरकार में कोई सक्रिय भूमिका नहीं चाहता। फिर भी, जब तक जरूरी होगा मैं तिब्बती लोगों की भलाई और खुशी के हर संभव काम करना जारी रखूंगा।

हम चीनी गणराज्य की सरकार को इन्हीं विचारों पर आधारित प्रस्ताव पेश करने के लिए तैयार हैं। तिब्बती सरकार की ओर समझौता दल का चयन कर लिया गया है। हम न्यायसंगत हल के उद्देश्य वाले इस तरह के प्रस्ताव पर चीनियों के साथ विस्तार से बातचीत करने को तैयार हैं।

हम संयुक्त राज्य के पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर समेत कई सरकारों और राजनैतिक नेताओं के हमारी स्थिति गहरी दिलचस्पी दिखाने से प्रोत्साहित हुए हैं। हम हाल में हुए चीन में बदलावों से भी उत्साहित हैं जहां अधिक व्यावहारिक और उदार नेताओं की नई जमात आई है।

मैं चीनी सरकार और नेतृत्व से उन विचारों पर गंभीर और पर्याप्त विचार करने का आग्रह जिनका मैंने उल्लेख किया। केवल बातचीत और तिब्बत की हकीकत को ईमानदारी और स्पष्ट ढंग से देखने की इच्छा से ही व्यावहारिक समाधान निकल सकता है। हम मानवत के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए चीनी सरकार से बातचीत करना चाहते हैं। लिहाजा हम सुलह की भावना से प्रस्ताव रखेंगे और हमें आशा है कि चीनी भी उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया जताएंगे।

मेरे देश का अनोखा इतिहास और गहरी आध्यात्मिक विरासत उसे एशिया के केंद्रं में शांति के अभयारण्य बनाने के लिए आदर्श बनाते हैं। निर्गुट शांतिपूर्ण देश के रूप में उसकी हैसियत, जिससे पूरे महाद्वीप में स्थिरता थी, को वापस दिलाया जा सकता है। एशिया के साथ ही विश्व के लिए शांति और सुरक्षा बढ़ाई जा सकती है। भविष्य में तिब्बत को अधिग्रहीत क्षेत्र बनने, शक्ति से दमित करने और मुसीबतों के चलते अनुष्पादक और दागदार होने की जरूरत नहीं है। वह मुक्त स्वर्ग बन सकता है जहां मानव और प्रकृति संतुलन साधकर रह सकते हैं, यह दुनियाभर के कई इलाकों में व्याप्त तनावों को सुलझाने के लिए रचनाशील आदर्श होगा।

चीनी नेतृत्व को अहसास करने की जरूरत है कि आज अधिग्रहीत क्षेत्रों में औपनिवेशिक शासन अराजकता से भरा है। केवल स्वेच्छा से ही वास्तविक विलय या जुड़ाव हो सकता है। स्वेच्छा भी तभी होगी जब सभी संबंधित पक्षों को संतोषजनक लाभ होगा। यूरोपीय संसद इसकी स्पष्ट मिसाल है। दूसरी तरफ, विश्वास या लाभ न होने और शासन के लिए शक्ति प्रयोग करने से यहां तक कि एक देश या समुदाय दो या उससे भी अधिक टुकड़ों में बंट सकता है।

मैं यूरोपीय संसद के माननीय सदस्यों और उनके जरिए उनके संबंधित इलाकों से अपने प्रयासों के प्रति समर्थन की विशेष अपील के साथ अपनी बात खत्म करना चाहूंगा। हमारे प्रस्ताव के तहत तिब्बत की समस्या के लिए एक प्रस्ताव न केवल तिब्बत और चीन के परस्पर फायदे में होगा बल्कि इससे क्षेत्रीय और विश्व शांति में भी योगदान मिलेगा। मैं आप सबको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे अपने विचार रखने का अवसर दिया।

—

Edited

'वास्तविक स्वायत्ता' पर तिब्बती पक्ष का मेमोरेंडम

तिब्बती समस्या के समाधान के लिए सिर्फ चीनी ईमानदारी की जरूरत है

वास्तविक स्वायत्तता की रूपरेखा पर तिब्बत सरकार की ओर से चीनी पक्ष को नवंबर, 2008 को दिया गया ज्ञापन

जुलाई 2008 में तिब्बत–चीन वार्ता के 7वें दौर में चीनी पक्ष ने तिब्बती प्रतिनिधिमंडल से मांग की थी कि वे तिब्बती स्वायत्ता के बारे में अपनी परिकल्पना को एक दस्तावेज़ के रूप में रखे। इस चीनी मांग के जवाब में 30 अक्तूबर से 5 नवंबर, 2008 के बीच चले वार्ता के 8वें दौर में यह दस्तावेज़ पेश किया गया। 'यहां पूरा दस्तावेज़ प्रस्तुत किया जा रहा है – संपादक

1- ifjp;

साल 2002 में चीन जनवादी गणतंत्र (पीआरसी) की क्रेंद्रीय सरकार के साथ सीधा संपर्क नए सिरे से कायम होने के बाद परम पावन चौदहवें दलाई लामा के दूतों और केंद्रीय सरकार के प्रतिनिधियों के बीच गहन चर्चा हुई। इन चर्चाओं में हमने तिब्बतियों की आकांक्षाओं को स्पष्ट रूप से सामने रखा। मध्यम मार्ग नीति का सार यह है कि चीन के संविधान के भीतर ही तिब्बती लोगों को वास्तविक स्वायत्तता सुनिश्चित हो सके। यह तिब्बती और चीनी, दोनों जनता के परस्पर हित में है और दोनों के दीर्घकालिक हितों पर आधारित है। हम इस बात पर दृढ़ हैं कि हम चीन से अलगाव या आज़ादी नहीं चाहते। हम वास्तविक स्वायत्तता के द्वारा तिब्बत की समस्या का ऐसा हल चाहते हैं जो चीन जनवादी गणतंत्र के संविधान में दिए गए स्वायत्तता के सिद्धांतों के अनुरूप हो। तिब्बत की विशिष्ट पहचान के सभी पहलुओं का संरक्षण एवं विकास पूरी मानवता के वृहद हित में है, खासकर तिब्बती और चीनी जनता के।

बीजिंग में 1 और 2 जुलाई, 2008 को आयोजित वार्ता के सातवें दौर में चीन की पीपुल्स पॉलिटिकल कंसल्टेटिव कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष और सेंट्रल यूनाइटेड फ्रंट वर्क डिपार्टमेंट के मंत्री श्री दू चिंगलिन ने तिब्बत में स्थिरता और विकास के लिए परम पावन दलाई लामा के स्पष्ट सुझाव मांगे थे। सेंट्रल यूनाइटेड फ्रंट वर्क डिपार्टमेंट के कार्यकारी उप मंत्री श्री झू वाई चुन ने कहा था कि हम जिस तरह की स्वायत्तता चाहते हैं उसके स्वरूप या उसकी मात्रा के बारे में, साथ ही चीन के संविधान के दायरे में क्षेत्रीय स्वायत्तता के सभी पहलुओं पर वे हमारे विचार जानना चाहते हैं।

इसके अनुसार ही यह ज्ञापन वास्तविक स्वायत्तता के बारे में हमारी राय को सामने रखता है और यह भी बताता है कि किस प्रकार स्वायत्तता और स्वशासन की तिब्बती राष्ट्रीयता की विशिष्ट जरूरतों को चीन जनवादी गणतंत्र के संविधान में निहित स्वायत्तता के सिद्धांतों को लागू करके ही

पूरा किया जा सकता है।

इस आधार पर परम पावन दलाई लामा को पूरा भरोसा है कि चीन के भीतर ही वास्तविक स्वायत्तता देकर तिब्बती राष्ट्रीयता की बुनियादी जरूरतों को पूरा किया जा सकता है।

चीन जनवादी गणतंत्र एक बहुराष्ट्रीयता वाला देश है और जैसा कि दुनिया के अन्य हिस्सों में होता है, चीन भी राष्ट्रीयता और अल्पसंख्यक नागरिकता के सवालों को स्वायत्तता और स्वशासन के द्वारा हल करना चाहता है। चीन के संविधान में स्वायत्तता और स्वशासन के बुनियादी सिद्धांतों को शामिल किया गया है, जिनका लक्ष्य तिब्बती जरूरतों और आकांक्षाओं के अनुरूप है। हान अंध देशभक्ति और स्थानीय राष्ट्रीयता दोनों को खारिज करते हुए दमन और राष्ट्रीयता के अलगाव दोनों का विरोध करते हुए क्षेत्रीय राष्ट्रीय स्वायत्तता को पूरा किया जाना है। इसका इरादा अल्पसंख्यक नागरिकता को खुद अपने मामलों का स्वामी बनने की ताकत प्रदान करके उनकी संस्कृति और पहचान की रक्षा करना है।

जहां तक हम समझते हैं काफी हद तक तिब्बती जरूरतों को स्वायत्तता के संवैधानिक सिद्धांतों के भीतर ही पूरा किया जा सकता है। कई बिंदुओं पर संविधान में राज्य के अंगों को निर्णय लेने और स्वायत्तता की व्यवस्था के संचालन के लिए काफी विवेकाधीन शक्तियां दी गई हैं। इन विवेकाधीन ताकतों का इस्तेमाल तिब्बतियों के लिए वास्तविक स्वायत्तता को इस तरीके से सुगम बनाने के लिए किया जा सकता है कि वह तिब्बत की विशिष्टता के अनुकूल हो। इन सिद्धांतों को लागू करने के लिए स्वायत्तता से जुड़े कानूनों की समीक्षा की जा सकती है या उनमें बदलाव किया जा सकता है ताकि वे तिब्बती राष्ट्रीयता के विशिष्ट लक्षणों और जरूरतों के अनुरूप हों। दोनों पक्षों की भलाई के लिए अनसुलझे मुद्दों को स्वायत्तता के संवैधानिक सिद्धांतों के आधार पर सुलझाया जा सकता है। इस तरीके से राष्ट्रीय एकता और स्थिरता और तिब्बती एवं अन्य राष्ट्रीयताओं के बीच शांतिपूर्ण संबंध कायम किए जा सकते हैं।

2- frCcrh jk"Vh;rk dh v[kMrk ,o lEi.krk d fy, lEeku

वर्तमान प्रशासनिक विभाजनों के बावजूद तिब्बती एक अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता से जुड़े हैं। तिब्बतियों की राष्ट्रीयता की इस अखंडता का सम्मान निश्चित रूप से होना चाहिए। क्षेत्रीय स्वायत्तता की राष्ट्रीय संवैधानिक अवधारणा और साथ ही साथ राष्ट्रीयताओं की समानता के सिद्धांत में भी यही भावना, उद्देश्य और तत्व निहित है।

इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि सभी तिब्बतियों की भाषा, संस्कृति, आध्यात्मिक परंपराएं, प्रमुख मूल्य एवं रीति–रिवाज एक हैं, वे एक ही जातीय समूह से जुड़े हैं और उनके बीच साझा पहचान की प्रबल चेतना है। तिब्बतियों का एक साझा इतिहास है और राजनीतिक या प्रशासनिक विभाजनों के कई दौर के बावजूद तिब्बती अपने धर्म, संस्कृति, शिक्षा, भाषा, जीवनचर्या और अपने विशिष्ट ऊंचे पठारी पर्यावरण के माध्यम से लगातार संगठित बने हुए हैं। तिब्बती नागरिकता तिब्बती पठार के एक आपस में जुड़े हुए क्षेत्र में निवास करती है। इस क्षेत्र में वे हजारों साल से निवास कर रहे हैं और इसलिए वे देशज कहे जाते हैं।

राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता के संवैधानिक सिद्धांतों के लिहाज से भी देखें तो वास्तव में चीन जनवादी गणतंत्र में रहने वाले सभी तिब्बती समूचे तिब्बती पठार पर एक नागरिकता के रूप में हैं। इन वजहों से ही चीन ने तिब्बती नागरिकता को 55 अल्पसंख्यक नागरिकताओं में से एक माना है।

3- frCcrh vkdk{kk,a

तिब्बतियों का एक समृद्ध और अलग इतिहास, संस्कृति एवं आध्यात्मिक परंपराएं हैं और ये सब मानवता की विरासत के कीमती हिस्से हैं। तिब्बती अपने ह्रदय में संजोई हुई अपनी विरासत का न केवल संरक्षण करना चाहते हैं, बल्कि वे अपनी संस्कृति, आध्यात्मिक जीवन और जानकारियों का इस तरीके से और विकास करना चाहते हैं जो खासतौर पर 21वीं शताब्दी में मानवता की जरूरतों और दशाओं के अनुकूल हो।

एक बहुराष्ट्रीय देश चीन जनवादी गणतंत्र के एक हिस्से के रूप में तिब्बती वहां हो रहे तेज आर्थिक एवं सामाजिक विकास का अच्छी तरह से फायदा उठा सकते हैं। हम इस विकास में सक्रियता से भागीदारी एवं योगदान करना चाहते हैं। साथ ही यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि यह सब तिब्बती पहचान, संस्कृति और प्रमुख मूल्यों को खत्म किए बिना हो और उस तिब्बती पठार के नाजुक पर्यावरण के विनाश के बिना हो जो तिब्बतियों की भूमि है।

तिब्बत की परिस्थिति की विशिष्टता को चीन में लगातार स्वीकार किया जाता रहा है और '17–सूत्री समझौते' और चीन के नेताओं के बयानों एवं नीतियों से भी यह प्रकट होता रहा है। इसलिए इस विशिष्टता को ही चीन जनवादी गणतंत्र के भीतर तिब्बती नागरिकों को दिए जाने वाली विशिष्ट स्वायत्तता की पहुंच और उसका ढांचा परिभाषित करने का आधार बनाना चाहिए। संविधान में यह बुनियादी सिद्धांत प्रतिबिंबित है कि खास परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए लचीलापन दिखाया जाए। इनमें अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं की जरूरतें और विशिष्ट लक्षण भी हैं।

चीन जनवादी गणतंत्र के भीतर ही तिब्बती नागरिकों की समस्याओं का हल तलाशने की परम पावन दलाई लामा की प्रतिबद्धता साफ और सुस्पष्ट है। उनका यह नजरिया देंग सिआओ पिंग के उस बयान के अनुकूल और मानने वाला है जिसमें उन्होंने जोर दिया था कि स्वतंत्रता के अलावा अन्य सभी मसलों को बातचीत के द्वारा हल किया जा सकता है।

इसलिए हम चीन की क्षेत्रीय अखंडता का पूरा सम्मान करने के लिए प्रतिबद्ध तो हैं हीं, साथ ही यह उम्मीद करते हैं कि केंद्र सरकार तिब्बती नागरिकता की एकता और चीन जनवादी गणतंत्र के भीतर वास्तविक स्वायत्तता हासिल करने के उसके अधिकार को मान्यता दे और उसका पूरा सम्मान करे। हम मानते हैं कि हमारे मतभेदों को दूर करने का यही आधार है और इससे विभिन्न नागरिकताओं के बीच एकता, स्थिरता और सामजंस्य कायम हो सकता है।

तिब्बती यदि चीन के भीतर एक विशिष्ट नागरिकता के रूप में आगे बढ़ना चाहते हैं तो उन्हें इस तरह से आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक तरक्की और विकास करना होगा जो चीन और पूरी दुनिया में हुए विकास से मेल खा सके। साथ ही, उन्हें इस प्रकार के विकास के लिए तिब्बती विशिष्टताओं का सम्मान और पोषण भी करना होगा। ऐसा होने के लिए यह जरूरी है कि स्वयं पर शासन के तिब्बतियों के अधिकार को मान्यता दी जाए और इसे तिब्बती नागरिकता की अपनी जरूरतों, प्राथमिकताओं और विशिष्टताओं के अनुसार उस पूरे क्षेत्र में लागू किया जाए जहां वे एक सघन समुदाय के रूप में निवास करते हैं। तिब्बती संस्कृति एवं पहचान का संरक्षण और संवर्द्धन तिब्बती जनता ही कर सकती है, कोई और नहीं।

इसलिए तिब्बतियों को अपनी सहायता, अपना विकास करने और खुद शासन चलाने में सक्षम होना चाहिए। इन सबके और तिब्बत के लिए केंद्रीय सरकार और अन्य प्रांतों के जरूरी मार्गदर्शन एवं सहायता के बीच अच्छा संतुलन कायम करने की जरूरत होगी।

4- frCcfr;k dh cfu;knh t:jr vkj Lo'kklu d fo"k;

तिब्बती जनता की मुख्य आवश्यकताएं और चिंताएं इस प्रकार हैं:

1½ Hkk"kk

2½ lLd'fr

3½ /ke

4½ f'k{kk

5½ Ik;k0kj.k lj{k.k

6½ ikd'frd lalk/kuk dk mi;kx

7½ vkfFkd fodkl vkj 0;kikj

8½ tu LokLF;

9½ tu lj{kk

10½ tul[;k d gLrkrj.k lca/kh fu;e(vkj

11½ vU; n'kk d lkFk lkLd'frd] 'k{kf.kd vkj /kkfed vknku&inku

1½ Hkk"kk

तिब्बती जनता की पहचान के लिए भाषा सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। तिब्बती भाषा संचार का प्राथमिक साधन है, इस भाषा में ही उनका साहित्य, उनके आध्यात्मिक ग्रंथ और ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक कार्य लिखित हैं। व्याकरण की दृष्टि से तिब्बती भाषा न सिर्फ संस्कृत जैसी उच्च स्तर की है, बल्कि यह एकमात्र ऐसी भाषा है जिसका संस्कृत से अनुवाद लेशमात्र भी गलती के बिना किया जाता है। इसलिए तिब्बती भाषा में न केवल सबसे समृद्ध और सबसे अच्छी तरह अनुवाद होने वाले साहित्य रचे गए हैं, बल्कि कई विद्वानों का तो यह भी कहना है कि इसमें सबसे समृद्ध और सबसे ज्यादा साहित्यिक रचनाएं की गई हैं। चीन के संविधान की धारा 4 में सभी नागरिकताओं को इस बात की गारंटी दी गई है कि उन्हें 'अपनी बोली और लिखी जाने वाली भाषाओं के उपयोग और विकास की आजादी होगी।' तिब्बती यदि अपनी भाषा का उपयोग एवं विकास करना चाहते हैं तो उन्हें चीन में बोली और लिखी जाने वाली मुख्य भाषा का भी सम्मान करना होगा।

चीनी संविधान की धारा 121 में इस सिद्धांत को व्यापक तौर पर मान्यता दी गई है, ''राष्ट्रीय स्वायत्त क्षेत्र के अंगों को स्थानीय तौर पर आम बोली या लिखी जाने वाली भाषा को लागू करना होगा।'' क्षेत्रीय राष्ट्रीय स्वायत्तता पर कानून (एलआरएनए) की धारा 10 में कहा गया है कि इन अंगों को, ''अपने क्षेत्र के नागरिकों को अपनी बोली और लिखी जाने वाली भाषा के उपयोग और विकास का अवसर देना चाहिए।''

तिब्बती क्षेत्र में तिब्बती भाषा को मुख्य भाषा के रूप में मान्यता देने के सिद्धांत के साथ ही एलआरएनए (धारा 36) स्वायत्त सरकार के अधिकारियों को यह निर्णय करने का अधिकार देता है

कि ''शिक्षा से संबंधित निर्देशों और नामांकन प्रक्रिया में कौन सी भाषा का इस्तेमाल किया जाएगा, इसका निर्णय वे करें।''

इससे इस सिद्धांत को मान्यता मिलती है कि शिक्षा का प्रमुख माध्यम तिब्बती होगा।

2½ lLd'fr

क्षेत्रीय स्वायत्तता की राष्ट्रीय अवधारणा प्राथमिक रूप से अल्पसंख्यक नागरिकताओं की संस्कृति के संरक्षण के लिए बनायी गयी है। इसलिए चीन जनवादी गणतंत्र के संविधान की धारा 22, 47 एवं 119 और साथ ही एलआरएनए की धारा 38 में संस्कृति के संरक्षण की बात की गयी है। हम तिब्बतियों के लिए तिब्बती संस्कृति हमारे धर्म, परंपरा, भाषा और पहचान से गहराई से जुड़ी हुई है और इस सबको विभिन्न स्तरों पर खतरे का सामना करना पड़ रहा है। तिब्बती जनता चीन जनवादी गणतंत्र के बहुराष्ट्रीय राज्य के भीतर निवास करती है इसलिए अलग तरह की तिब्बती सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण समुचित संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा करने की जरूरत है।

3½ /ke!

धर्म तिब्बतियों की बुनियाद है और बौद्ध धर्म उनकी पहचान से गहराई से जुड़ा है। हम इस बात के महत्व को स्वीकार करते हैं कि धर्म को राज्य से अलग रखना चाहिए। लेकिन इससे हमारी स्वतंत्रता और धर्म को मानने वालों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। धार्मिक विश्वास, अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता के बिना तिब्बती व्यक्तिगत या सामुदायिक स्वतंत्रता की कल्पना भी नहीं कर सकते। संविधान में धर्म की महत्ता को स्वीकार किया गया है और इसे खुलकर अपनाने वालों का भी संरक्षण किया गया है।

संविधान की धारा 36 के द्वारा सभी नागरिकों को धार्मिक विश्वास के स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी दी गई है। कोई भी किसी को इस बात के लिए मजबूर नहीं कर सकता कि वह किसी धर्म में विश्वास करे या न करे। धर्म के आधार पर किसी तरह का भेदभाव वर्जित है।

अंतरराष्ट्रीय मानकों के आलोक में संवैधानिक सिद्धांतों की व्याख्या में भी विश्वास या पूजा के तरीके की स्वतंत्रता की बात कही गई है। इस स्वतंत्रता के तहत बौद्ध मठों की परंपरा के अनुसार मठों की स्थापना और संचालन, शिक्षण और अध्ययन कार्य करना, इन नियमों के आधार पर कितनी भी संख्या में या किसी भी आयु के भिक्षुओं और भिक्षुणियों की भर्ती करना आदि शामिल हैं। इस स्वतंत्रता के तहत ही सार्वजनिक रूप से प्रवचन की सामान्य परंपरा और बड़े पैमाने पर भीड़ जुटाने के अधिकार की भी रक्षा होती है। इसलिए राज्य को किसी गुरु और शिष्य के बीच संबंध, मठों से जुड़ी संस्थाओं के प्रबंधन और पुनर्जन्म को मान्यता जैसे धार्मिक प्रचलन एवं परंपराओं में दखल नहीं देना चाहिए।

4½ f'k{kk

तिब्बती लोग केंद्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय के साथ सहयोग एवं समन्वय के द्वारा खुद की शिक्षा प्रणाली का विकास और प्रबंधन करना चाहते हैं और उनकी इस इच्छा का समर्थन संविधान में निहित शिक्षा से जुड़े सिद्धांतों में भी किया गया है। इसी प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में लगने या उसमें योगदान करने का भी समर्थन किया गया है। हमने यह देखा है कि बौद्ध मनोविज्ञान, मेटाफिजिक्स, ब्रह्मांड विज्ञान और मस्तिष्क की समझ ने आधुनिक विज्ञान को विकसित होने में जो योगदान किया है उसकी अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक विकास में मान्यता बढ़ती जा रही है।

संविधान की धारा 19 के तहत राज्य अपने सभी नागरिकों को शिक्षा उपलब्ध करने की पूरी जिम्मेदारी लेता है, तो धारा 119 इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान करती है कि, ''राष्ट्रीय स्वायत्तशासी क्षेत्रों की स्वायत्त सरकारें अपने क्षेत्रों में शैक्षणिक मामलों को स्वतंत्र तरीके से प्रबंधित कर सकती हैं।'' एलआरएन की धारा 36 में भी यह सिद्धांत प्रदर्शित होता है।

हालांकि निर्णय लेने के मामले में किस हद तक स्वायत्तता होगी यह साफ नहीं है, लेकिन मुख्य बात यह है कि तिब्बतियों को अपनी राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने में वास्तविक स्वायत्तता मिले और संविधान में स्वायत्तता के सिद्धांतों में भी इसका समर्थन किया गया है।

जहां तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में योगदान करने की आकांक्षा की बात है, संविधान की धारा 119 और एलआरएन की धारा 39 में साफ तौर पर इस बात को मान्यता दी गई है कि स्वायत्तशासी क्षेत्रों के लोग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास कर सकते हैं।

5½ lk;k0kj.k lj{k.k

तिब्बत एशिया की महान नदियों का मुख्य स्रोत है। वहां पृथ्वी की सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखलाएं हैं। साथ ही साथ दुनिया का सबसे विशाल और सबसे ऊंचा पठार भी है। तिब्बत देश प्रचुर खनिज संसाधनों, प्राचीन वनों और कई ऐसी गहरी घाटियों से भरा पड़ा है जो मानवीय हलचलों से दूर है।

पर्यावरण संरक्षण का यह प्रचलन तिब्बती लोगों के जीवन के सभी रूपों में निहित पर्यावरण के प्रति सम्मान की परंपरा से बढ़ता रहा है, जिसमें किसी भी तरह के प्राणियों को नुकसान पहुंचाना वर्जित है, चाहे वह मनुष्य हो या जानवर। तिब्बत को एक विशिष्ट प्राकृतिक पर्यावरण में अछूते सुनसान अभ्यारण्य के रूप में देखा जाता था।

आज तिब्बत के परंपरागत पर्यावरण को इस तरह का नुकसान पहुंचाया जा रहा है कि उसकी भरपाई नहीं की जा सकती। इन सबका प्रभाव खासतौर से घास के मैदानों, फसली खेतों, जंगलों, जल संसाधनों और वन्यजीवन में देखा जा सकता है।

यह सब देखते हुए एनएनआर की धारा 45 और 66 के अनुसार तिब्बती लोगों को अपने पर्यावरण पर अधिकार मिलना चाहिए और उन्हें इस बात की इजाजत मिलनी चाहिए वे पर्यावरण संरक्षण के अपने पारंपरिक चलन को जारी रख सकें।

6½ ikdfrd llk/kuk dk mi;kx

प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण एवं प्रबंधन और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के बारे में संविधान और एलआरएन में स्वायत्तशासी सरकार के अंगों की केवल सीमित भूमिका को ही स्वीकार किया गया है (एलआरएन की धारा 27, 28, 45, 66 और संविधान की धारा 118 देखें जिसमें यह वायदा किया गया है कि ''राज्य को स्वायत्तशासी क्षेत्रों के हितों का ध्यान रखना चाहिए''।)

स्वायत्तशासी क्षेत्र द्वारा वनों और घास के मैदानों के संरक्षण एवं विकास के महत्व को एलआरएनए में मान्यता दी गई है (धारा 27) और कहा गया है कि ''स्थानीय प्रशासन जिन प्राकृतिक संसाधनों का विकास करता है उनके तार्किक दोहन और उपयोग को प्राथमिकता दी जाएगी।'' लेकिन यह केवल राज्य की योजनाओं और कानूनी नियमों के दायरे में ही किया जा सकता है। वास्तव में इन मामलों में राज्य की केंद्रीय भूमिका को संविधान में भी प्रकट (धारा 9) किया गया है।

हमारा मानना है कि संविधान में स्वायत्तता के जिन सिद्धांतों को जगह दी गई है उनके बल

पर वास्तव में तिब्बती तब तक अपने भाग्य के नियंता खुद नहीं बन सकते जब तक कि उन्हें खनिज संसाधनों, जल, वनों, पर्वतों, घास के मैदानों आदि के उपयोग के मामले में निर्णय लेने की प्रक्रिया में पूरी तरह शामिल नहीं किया जाता।

प्राकृतिक संसाधनों और किसी अर्थव्यवस्था के लिए करों एवं राजस्व का विकास इसी बुनियाद पर हो सकता है कि जमीन का मालिकाना हक मिले। इसलिए यह जरूरी है कि किसी जमीन के हस्तांतरण या लीज पर देने का कानूनी अधिकार सिर्फ स्वायत्तशासी क्षेत्र की राष्ट्रीयता वाले नागरिकों को मिले, सिवाय उन मामलों के जब जमीन राज्य की हो। इसी प्रकार केंद्र सरकार की योजनाओं के अनुरूप ही स्वायत्तशासी क्षेत्र में भी ऐसे स्वतंत्र प्राधिकरण होने चाहिए जो विकास योजना तैयार एवं लागू कर सकें।

7½ vkfFkd fodkl vkj 0;kikj

तिब्बत में आर्थिक विकास का स्वागत किया जाना चाहिए और यह बहुत जरूरी है। चीन जनवादी गणतंत्र के भीतर तिब्बती जनता आर्थिक रूप से सबसे पिछड़े वर्गों में से है। संविधान में इस सिद्धांत को मान्यता दी गई है कि स्थानीय लक्षणों और जरूरतों को देखते हुए स्वायत्तशासी प्रशासन को अपने क्षेत्रों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी (संविधान की धारा118, एलआरएन की धारा 25 में भी यही संकेत हैं)। संविधान में वित्तीय मामलों के प्रशासन और प्रबंधन के मामले में भी स्वायत्तता के सिद्धांत को मान्यता दी गई है (धारा 117 और एलआरएन की धारा 32)। संविधान स्वायत्तशासी क्षे़त्र में तेज विकास के लिए केंद्र सरकार द्वारा फंड देने और सहयोग करने के महत्व को भी प्रकट करता है (धारा 122, एलआरएन की धारा 22)।

इसी प्रकार एलआरएन की धारा 31 में स्वायत्तशासी क्षेत्रों, खासकर तिब्बत जैसे क्षेत्रों की इस क्षमता को मान्यता दी गई है कि वे सीमा व्यापार और साथ ही पड़ोसी देशों के साथ व्यापार कर सकें। इन सिद्धांतों को मान्यता तिब्बती राष्ट्रीयता के लिए काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह क्षेत्र कई देशों से सटा हुआ है और उन देशों के लोगों के साथ इसके सांस्कृतिक, धार्मिक, नस्लीय और आर्थिक जुड़ाव हैं। केंद्र सरकारों और प्रांतों द्वारा दिए जाने वाले सहयोग का फायदा अस्थायी ही होगा, लेकिन दीर्घकालिक तौर पर यदि तिब्बती लोग आत्मनिर्भर नहीं होंगे और दूसरों पर ही निर्भर रहेंगे तो इसका बहुत नुकसान होगा। इस प्रकार स्वायत्तता का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह भी है कि तिब्बती लोगों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए।

8½ tu LokLF;

संविधान में कहा गया है कि नागरिकों को स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाएं देने की जिम्मेदारी राज्य की होगी (धारा 21)। धारा 119 में कहा गया है कि यह स्वायत्तशासी क्षेत्र की भी जिम्मेदारी होगी। एलआरएनए की धारा 40 में यह भी कहा गया है कि स्वायत्तशासी क्षेत्र में स्वशासन के अंगों को ''स्थानीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के विकास और आधुनिक एवं राष्ट्रीयताओं के पारंपरिक, दोनों तरह की औषधियों के विकास के लिए योजना बनाने हेतु निर्णय लेने की आजादी होगी।''

तिब्बत में जो स्वास्थ्य व्यवस्था फिलहाल मौजूद है वह ग्रामीण जनसंख्या की जरूरतों को समुचित रूप से पूरा कर पाने में नाकाम रही है। उपरोक्त वर्णित कानूनों के सिद्धांतों के अनुसार क्षेत्रीय स्वायत्तशासी विभागों मे इतनी क्षमता और संसाधन होने चाहिए कि वे समूची तिब्बती जनसंख्या की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकें। उन्हें इसमें भी सक्षम होना चाहिए कि पूरी तरह पारंपरिक प्रचलन के अनुसार पारंपरिक तिब्बती चिकित्सा और एस्ट्रो प्रणाली का विकास कर सकें।

9½ tu lqj{kk

जन सुरक्षा के मामले में यह महत्वपूर्ण है कि सुरक्षा कर्मियों का बहुसंख्य हिस्सा स्थानीय समुदाय से हो जो स्थानीय रीति–रिवाजों और परंपराओं से वाकिफ हो और उनका सम्मान करता हो। तिब्बती क्षेत्र में हालत यह है कि निर्णय लेने वाले अधिकार स्थानीय तिब्बतियों के हाथ में नहीं है।

स्वायत्तता और स्वशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि स्वायत्तशासी क्षेत्रों में आंतरिक नागरिक व्यवस्था और और सुरक्षा की जिम्मेदारी ली जाए। संविधान की धारा 120 और एलआरएन की धारा 24 में इस बात का महत्व स्वीकार किया गया है कि ''राज्य की सैनिक व्यवस्था, व्यावहारिक जरूरतों और राज्य परिषद की मंजूरी के साथ" सुरक्षा व्यवस्था में स्थानीय भागीदारी हो और स्वायत्त क्षेत्र को प्राधिकार दिया जाए।

10½ tul[;k dk gLrkarj.k lca/kh fu;e

राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता और स्वशासन का बुनियादी लक्ष्य अल्पसंख्यक पहचान, संस्कृति, भाषा और अन्य जुड़ी चीजों की पहचान का संरक्षण करना और यह सुनिश्चित करना है कि ये लोग अपने मामलों के मालिक हों। जब किसी ऐसे खास क्षेत्र में राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता की व्यवस्था लागू की जाती है जहां अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता के लोग एक संकेंद्रित समुदाय या समुदायों के रूप में रहते हैं तो यदि बड़े पैमाने पर वहां बहुसंख्यक हान राष्ट्रीयता और अन्य राष्ट्रीयताओं के स्थानांतरण और बसने को प्रोत्साहित किया जाता है या उसकी इजाजत दी जाती है तो मूल सिद्धांत और उद्देश्य का ही अनादर होगा। इस प्रकार के स्थानांतरण से जो बड़े जनसांख्यिकीय बदलाव होते हैं उससे तिब्बती राष्ट्रीयता के हान राष्ट्रीयता से एकीकरण की जगह अलगाव को ही बढ़ावा मिलेगा और धीरे–धीरे तिब्बती राष्ट्रीयता की विशिष्ट संस्कृति एवं पहचान का लोप हो जाएगा।

साथ ही, तिब्बती क्षेत्र में बड़े पैमाने पर हान और अन्य राष्ट्रीयताओं के लोगों के अंतर्प्रवाह से क्षेत्रीय स्वायत्ता की व्यवस्था को लागू करने के लिए जरूरी शर्तों में बुनियादी बदलाव आ जाएगा। जनसंख्या के भारी हस्तांतरण और आवाजाही से स्वायत्तता हासिल करने का वह संवैधानिक मानदंड भी खत्म हो जाएगा जिसके अनुसार यह ऐसा क्षेत्र है जहां अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता 'सघन समुदाय' के रूप में रहती हो। यदि इस प्रकार के आव्रजन और बस्तियों पर नियंत्रण नहीं किया गया तो तिब्बती लोग बहुत दिनों तक एक सघन समुदाय या समुदायों के रूप में नहीं रह पाएंगे और तब उन्हें संविधान के तहत राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता का भी लाभ नहीं मिल पाएगा। इससे राष्ट्रीयता के मसले पर रवैए के मामले में संविधान के मूल सिद्धांतों का प्रभावी तौर पर उल्लंघन होगा।

चीन जनवादी गणतंत्र में पहले यह उदाहरण देखे गए हैं कि नागरिकों के कहीं बसने या उनकी आवाजाही पर प्रतिबंध लगाया गया है। लेकिन स्वायत्तशासी क्षेत्रों के इस अधिकार को बहुत कम स्वीकार किया गया है कि इन क्षेत्रों में 'अस्थायी जनसंख्या' के बसने पर नियंत्रण के लिए वह कोई उपाय कर सकें।

हमारे लिए यह काफी महत्वपूर्ण होगा कि स्वशासन के स्वायत्त अंगों को ऐसे व्यक्तियों के आवास, बस्ती बनाने और रोजगार एवं आर्थिक गतिविधियों में लगने के मामलों को विनियमित करने का अधिकार हो जो चीन के अन्य हिस्सों से तिब्बती क्षेत्र में जाना चाहते हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि स्वायत्तता के सिद्धांतों का लक्ष्य व्यावहारिक रूप से पूरा हो।

हमारा इरादा तिब्बत में स्थायी तौर पर बस चुके उन गैर तिब्बतियों को बाहर निकालने का नहीं है जो काफी समय से वहां रह रहे हैं और वहीं पले–बढ़े हैं। हमारी चिंता तिब्बत के कई क्षेत्रों में मुख्यतः

हान और कई अन्य राष्ट्रीयताओं के लोगों के भारी पैमाने पर स्थानांतरण को लेकर है जिससे मौजूदा समुदाय विचलित हो रहे हैं, तिब्बती जनसंख्या हाशिए पर जा रही है और नाजुक प्राकृतिक पर्यावरण को खतरा पैदा हो रहा है।

11½ vU; n'kk d lkFk lkLdfrd] 'k{kf.kd vkj /kkfed vknku&inku

तिब्बती राष्ट्रीयता के चीन के अन्य राष्ट्रीयताओं, प्रांतों एवं क्षेत्रों के साथ स्वायत्तता के विषयों जैसे संस्कृति, कला, शिक्षा, विज्ञान, जन स्वास्थ्य, खेल, धर्म, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था आदि के मामलों में आदान–प्रदान एवं सहयोग तो महत्वपूर्ण है ही, साथ ही स्वायत्तशासी क्षेत्र को यह अधिकार भी देना चाहिए कि वह इस प्रकार का आदान–प्रदान अपने पड़ोस के अन्य देशों से भी कर सके जैसा कि एलआरएनए की धारा 42 में भी कहा गया है।

5- ihvkjlh e frCcrh jk"Vh;rk d fy, ,d i'kklu dk ykx djuk

तिब्बती राष्ट्रीयता ऊपर वर्णित बुनियादी तिब्बती जरूरतों के आधार पर स्वशासन लागू करने के लिए अपनी विशिष्ट पहचान, संस्कृति और आध्यात्मिक परंपराओं का विकास और पोषण कर सके इसके लिए यह जरूरी है कि चीन जनवादी गणतंत्र द्वारा तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र के रूप में निर्धारित समूचे क्षेत्र के पूरे समुदाय को एक प्रशासनिक इकाई के अंदर लाया जाए।

चीन के विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों के रूप में तिब्बती समुदाय पर फिलहाल जिन प्रशासनिक विभाजनों द्वारा शासन किया जा रहा है, वह मूर्खतापूर्ण तरीके से विघटन पैदा करने वाला है, असमान विकास को बढ़ावा देता है और साझा संस्कृति, अध्यात्म एवं नस्लीय पहचान के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के मामले में तिब्बती राष्ट्रीयता की क्षमता को कमजोर करता है। राष्ट्रीयताओं के एकीकरण का सम्मान करने की जगह यह नीति उनमें विघटन को बढ़ावा देती है और स्वायत्तता की भावना का असम्मान करती है।

उइगुर एवं मंगोल जैसी अन्य बड़ी अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को जहां पूरी तरह अपने एक स्वायत्तशासी क्षेत्र के भीतर शासित करने का अधिकार है वहीं तिब्बती लोगों को ऐसा बनाए रखा गया है जैसे वे एक नहीं बल्कि कई अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताएं हैं।

वर्तमान निर्धारित तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र में रहने वाले सभी तिब्बतियों को एक स्वायत्त प्रशासन के भीतर लाना पूरी तरह से संविधान की धारा 4 और एलआरएन की धारा 2 में वर्णित इस सिद्धांत के अनुरूप है कि, ''क्षेत्रीय स्वायत्तता उन क्षेत्रों में लागू की जाएगी जहां अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता के लोग सघन समुदायों के रूप में रहते हों।''

एलआरएन राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता को ''चीन में राष्ट्रीय मसलों को हल करने के लिए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्वीकार की गई बुनियादी नीति'' माना है और अपनी प्रस्तावना में इसके अर्थ एवं आशय की व्याख्या इस प्रकार की है:

एकीकृत केंद्रीय नेतृत्व के तहत ऐसे क्षेत्रों की अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को क्षेत्रीय स्वायत्तता का लाभ मिलेगा जो उस क्षेत्र में सघन समुदायों के रूप में रह रही हों और वे स्वायत्तता का अधिकार लागू करने के लिए स्वशासन के विभिन्न अंगों का गठन कर सकेंगी। क्षेत्रीय स्वायत्तता में यह बात भी शामिल है कि केंद्र सरकार अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के अपने आंतरिक मामलों को प्रशासित करने के अधिकार के लिए मिली गारंटी का पूर्ण सम्मान करेगी और समानता, एकता और सभी राष्ट्रीयताओं की साझा समृद्धि के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखेगी।

यह बात साफ है कि पीआरसी के भीतर तिब्बती राष्ट्रीयता खुद पर शासन करने और आंतरिक मामलों को प्रशासित करने का अधिकार हासिल करने में प्रभावी तौर पर तभी सक्षम होगी जब यह सब स्वशासन के ऐसे अंग के द्वारा किया जाए जिसका अधिकार क्षेत्र समूची तिब्बती राष्ट्रीयता पर एक साथ हो।

एलआरएनए इस सिद्धांत को भी मान्यता प्रदान करता है कि राष्ट्रीय स्वायत्तशासी क्षेत्रों की सीमाओं में सुधार करने की जरूरत है। तिब्बती राष्ट्रीयता की एकता के सम्मान के माध्यम से क्षेत्रीय स्वायत्तता के बारे में संविधान के बुनियादी सि़द्धांतों के पालन करने की जरूरत न केवल पूरी तरह वैधानिक है, बल्कि इसे हासिल करने लिए जरूरी प्रशासिनक बदलाव किसी तरह से भी संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करते। पहले ऐसे कई उदाहरण देखे गए हैं जब ऐसा वास्तव में किया गया है।

6- Lok;Rrrk dh idfr vkj <kpk

पूर्वगत विषयों के मामले में किस सीमा तक खुद की सरकार और खुद के प्रशासन का अधिकार लागू किया जा सकता है यह काफी हद तक तिब्बती स्वायत्तता के वास्तविक चरित्र पर निर्भर करता है। इसलिए इस समय यह देखना है कि स्वायत्तता को किस प्रकार से लागू और नियंत्रित किया जा सकता है कि यह तिब्बती राष्ट्रीयता की बुनियादी जरूरतों और विशेष परिस्थिति का प्रभावी तरीके से ध्यान रख सके।

वास्तविक स्वायत्तता को लागू करने में तिब्बतियों का यह अधिकार शामिल होगा कि वे अपने लिए ऐसी क्षेत्रीय सरकार, सरकारी संस्थाओं और कार्यप्रणाली का विकास कर सकें जो उनकी जरूरतों और विशिष्टताओं के बिल्कुल अनुकूल हो।

इसमें इस बात की जरूरत होगी कि स्वायत्तशासी क्षेत्र की पीपुल्स कांग्रेस को क्षेत्र की क्षमतओं के भीतर (ऊपर वर्णित विषयों) सभी मामलों में कानून बनाने का अधिकार हो और स्वायत्तशासी सरकार के अन्य अंग सभी निर्णयों को स्वायत्त रूप से लागू और प्रशासित कर सकें।

स्वायत्तता के लिए यह भी जरूरी है कि केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर लिए जाने वाले निर्णयों में प्रतिनिधित्व और सार्थक भागीदारी हो। स्वायत्तता को प्रभावी बनाने के लिए यह भी जरूरी है कि साझा हितों के मामले में केंद्र सरकार और क्षेत्रीय सरकार के बीच प्रभावी परामर्श, गहन सहयोग या संयुक्त रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया चलती रहे।

वास्तविक स्वायत्तता का एक महत्वपूर्ण तत्व यह भी है कि स्वायत्तशासी क्षेत्र को संविधान या अन्य कानूनों के द्वारा जिन शक्तियों और जिम्मेदारियों की गारंटी दी गई है उसे एकपक्षीय तरीके से बदला या नेस्तनाबूद न किया जा सके। इसका मतलब यह है कि केंद्र सरकार या स्वायत्तशासी क्षे़त्र की सरकार, कोई भी एक–दूसरे की सहमति के बिना स्वायत्तता की बुनियादी विशेषताओं में बदलाव करने में सक्षम न हो।

तिब्बत के लिए वास्तविक स्वायत्तता का मानदंड और विशिष्टताएं जो तिब्बती लोगों और क्षेत्र की अलग तरह की जरूरतों और दशाओं के अनुकूल हों उन्हें स्वायत्तता को लागू करने के नियमों में विस्तार से दिया गया हो, जैसा कि संविधान की धारा 116 में दिया गया है (एलआरएएन की धारा 19 मे जिनका विधान है), यदि ज्यादा उपयुक्त लगे तो इसके लिए अलग से कानून या नियम बनाए जा सकते हैं। संविधान में (धारा 31 के साथ) तिब्बत जैसी विशिष्ट अवस्था के लिए खास कानून बनाने

की छूट दी गई है, लेकिन यह भी कहा गया है कि देश में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का सम्मान किया जाएगा।

संविधान का खंड 6 राष्ट्रीय स्वायत्तशासी क्षेत्र में स्वशासन के अंगों की व्यवस्था करता है और यह भी स्वीकार करता है कि उन्हें कानून बनाने का अधिकार है। इस प्रकार धारा 116 (एलआरएन की धारा 19) भी उनके इस अधिकार से जुड़ा है कि वे ''क्षेत्र की नागरिकता या नागरिकताओं के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक लक्षणों को देखते हुए अलग से कानून बना सकें।''

इसी प्रकार संविधान में कई क्षेत्रों (धारा 117–120) में स्वायत्त प्रशासन के अधिकार को मान्यता दी गई है और साथ ही साथ स्वायत्त सरकार के इस अधिकार को भी स्वीकार किया गया है कि केंद्र सरकार और सरकार के अन्य उच्च विभागों के कानूनों एवं नीतियों को लागू करने के मामले में इस प्रकार का लचीलापन बरते ताकि वह स्वायत्तशासी क्षेत्र की दशा के अनुकूल हो (धारा 115)।

ऊपर वर्णित कानूनी प्रावधानों से स्वायत्त सरकार के अंगों में निर्णय लेने वाले अधिकारियों पर पर्याप्त अंकुश लगता है। इसके बावजूद संविधान में इन सिद्धांतों को मान्यता दी गई है कि स्वशासन के अंग ऐसे कानून या नीतियां बना सकेंगे जो स्थानीय जरूरतों का समाधान कर सकें और यह कानून केंद्रीय सरकार सहित अन्य जगहों पर लागू कानून से भिन्न हो सकते हैं। हालांकि तिब्बती लोगों की जरूरतें व्यापक तौर पर संविधान में दिए गए स्वायत्तता के सिद्धांतों के काफी अनुकूल हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं कि इनको हासिल कर पाने में कई तरह की समस्याओं की वजह से अड़चनें आई हैं। इन समस्याओं की वजह से ही उक्त सिद्धांतों को लागू करना आज काफी कठिन या अप्रभावी हो चुका है।

उदाहरण के लिए वास्तविक स्वायत्तता को लागू करने के लिए इस बात की जरूरत है कि जिन मामलों में टकराव होने की गुंजाइश हो उनमें केंद्र सरकार और स्वायत्तशासी क्षेत्र की सरकार के बीच अधिकारों एवं जिम्मेदारियों का स्पष्ट विभाजन हो।

फिलहाल इस प्रकार की स्पष्टता नहीं है और स्वायत्तशासी क्षेत्र के लिए विधायी शक्तियों की संभावना अनिश्चित तो है ही, यह काफी सीमित भी है। इस प्रकार जहां संविधान यह चाहता है कि स्वायत्तशासी क्षेत्रों को उन मसलों पर कानून बनाने की जरूरतों को मान्यता दी जाए जो उनको प्रभावित करते हैं, वहीं इसके लिए पहले केंद्रीय सरकार से उच्च स्तर पर (नेशनल पीपुल्स कांग्रेस यानी एनपीसी की स्थायी समिति) मंजूरी हासिल करने की धारा 116 की शर्त स्वायत्तता के सिद्धांतों को लागू करने की व्यवस्था को सीमित कर देती है। व्यावहारिक तौर पर केवल स्वायत्तशासी क्षेत्र की क्षेत्रीय विधायिका को ही इस प्रकार की मंजूरी लेनी पड़ रही है, जबकि चीन के गैर स्वायत्तशासी क्षेत्रों के सामान्य प्रांतों की विधायिका को पहले से ऐसी मंजूरी की जरूरत नहीं है वे सिर्फ अपने कानूनों के अंश को रिकॉर्ड के लिए एनपीसी की स्थायी समित को भेज देते हैं। (धारा 100) इसके अलावा संविधान की धारा 115 के अनुसार स्वायत्तता की व्यवस्था को लागू करने में बहुत से अन्य कानूनों और नियमों का पालन करना होगा।

कई तरह के ऐसे कानून हैं जो प्रभावी तौर पर स्वायत्तशासी क्षेत्र की स्वायत्तता को सीमित करते हैं, जबकि कई अन्य ऐसे कानून हैं जो एक–दूसरे से मेल नहीं खाते। इसका परिणाम यह है कि स्वायत्तता की सही गुंजाइश साफ नहीं है और निश्चित भी नहीं है क्योंकि केंद्र में उच्च स्तर पर किसी भी कानून या नियम के लागू करने से इसमें पूरी तरह बदलाव आ सकता है। केंद्र सरकार और क्षेत्रीय सरकारों के बीच स्वायत्तता की गुंजाइश और उसे लागू करने के मामले में उठने वाले

विवादों को निपटाने या सलाह देने के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। व्यवहारिक रूप में इससे जो अनिश्चितता पैदा होती है वह क्षेत्रीय प्रशासन की पहल को सीमित कर देती है और तिब्बतियों को मिलने वाली वास्तविक स्वायत्तता के पालन को बाधित करती है।

इस समय हम इस सबके बारे में विस्तार में नहीं जाना चाहते कि आज तिब्बतियों को वास्तविक स्वायत्तता को लागू करने के मामले में कितनी तरह की अड़चनें आ रही हैं, लेकिन इनका उल्लेख ऐसे उदाहरणों में करना चाहते हैं ताकि भविष्य में हमारे बीच होने वाली वार्ताओं में उनका समाधान पर्याप्त तरीके से किया जा सके।

हम संविधान और अन्य प्रासंगिक कानूनी प्रावधानों का अध्ययन जारी रखेंगे। जब भी उपयुक्त होगा अपनी समझ के हिसाब से और विश्लेषण उपलब्ध करना चाहेंगे।

7- vkx dk jkLrk

जैसा कि हमने इस ज्ञापन के प्रारंभ में ही कहा है, हमारा इरादा ये संभावनाएं तलाशना है कि चीन जनवादी गणतंत्र के ढांचे के भीतर तिब्बती राष्ट्रीयता की जरूरतों को किस प्रकार पूरा किया जा सकता है क्योंकि हमारा यह मानना है कि ये जरूरतें सविधान में वर्णित स्वायत्तता के सिद्धांतों के अनुरूप ही हैं। जैसा कि परम पावन दलाई लामा कई अवसरों पर कह चुके हैं, हमारा कोई छिपा हुआ एजेंडा नहीं है। हमारा ऐसा कोई इरादा नहीं है कि स्वायत्तता के किसी समझौते का लाभ उठाकर चीन से तिब्बत को अलग करने की तरफ बढ़ें।

निर्वासित तिब्बती सरकार का भी लक्ष्य तिब्बती जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करना और उनकी तरफ से अपनी बात रखना है। इसलिए एक बार जब हमारे बीच कोई समझौता हो जाता है तो इस सरकार की जरूरत नहीं रहेगी और इसे भंग कर दिया जाएगा। तथ्य तो यह है कि परम पावन दलाई लामा ने कई बार अपना यह निर्णय दोहराया है कि तिब्बत में कभी भी कोई भी राजनीतिक पद स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन फिर भी परम पावन दलाई लामा की योजना इस प्रकार के किसी समझौते तक पहुंचने में अपना पूरा व्यक्तिगत प्रभाव लगा देने की है। लेकिन इसे वैधानिकता देने के लिए यह जरूरी होगा कि तिब्बती जनता इसका समर्थन करे।

अपनी मजबूत प्रतिबद्धता की वजह से हम यह प्रस्तावित करते हैं कि समझौते की प्रक्रिया के लिए अगला चरण यह होगा कि ज्ञापन में उठाए गए बिंदुओं पर गंभीरता से चर्चा शुरू की जाए। इस उद्देश्य से हम यह भी प्रस्तावित करते हैं कि इसे प्रभावी तौर पर करने के लिए हम एक परस्पर स्वीकार्य तंत्र या तंत्रों के बारे में चर्चा कर इसे निर्धारित टाइमटेबल के अनुसार प्रभावी तरीके से उन पर सहमति बना सकते हैं।

—

तिब्बत का शांतिपूर्ण हल चीन के हित में
यूरोपीय संसद के पूर्ण सत्र को दलाई लामा का संबोधन

ब्रसेल्स, 4 दिसंबर, 2008

महामहिम अध्यक्ष महोदय, संसद के माननीय सदस्य गण, भाइयों एवं बहनों, आज आपके सामने कुछ बोलना मेरे लिए परम सम्मान की बात है और आपने मुझे यहां बुलाया इसके लिए आपका धन्यवाद देना चाहता हूं। जहां भी मैं जाता हूं मेरी प्रमुख रुचि या प्रतिबद्धता सहृदयता जैसे मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देने की होती है जो, मेरी समझ में, व्यक्तिगत स्तर, पारिवारिक स्तर या सामुदायिक स्तर पर खुशहाल जीवन के लिए प्रमुख घटक है। आधुनिक समय में ऐसा लगता है कि इन आंतरिक मूल्यों की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा। इन्हें बढ़ावा देना मेरी पहली प्राथमिकता है।

मेरी दूसरी रुचि या प्रतिबद्धता अंतर–धार्मिक सामंजस्य को बढ़ावा देना है। हम सब राजनीति और लोकतंत्र में बहुलवाद की जरूरत को स्वीकार करते हैं। लेकिन विश्वासों और धर्मों की बहुलता के बारे में हम अक्सर हिचक दिखाते हैं। अपनी धारणाओं और दर्शनों के बावजूद दुनिया की सभी प्रमुख धार्मिक परंपराओं में प्रेम, करुणा, सहनशीलता, संतोष और आत्मानुशासन का ही संदेश दिया गया है। इसी प्रकार मानव को खुशहाल जीवन जीने में मदद करने के मामले में इनमें समान क्षमता है। इसलिए इन दो बातों में मेरी मुख्य रुचि या प्रतिबद्धता है।

निश्चित रूप से तिब्बत का मसला भी मेरे लिए खास चिंता का विषय है और तिब्बत के लोगों के प्रति मेरी विशेष जिम्मेदारी है, जो तिब्बत के इतिहास के इस कठिन समय में मुझमें लगातार भरोसा और उम्मीद बनाए हुए हैं। तिब्बती लोगों का कल्याण मेरे लिए निरंतर प्रेरणा का स्रोत रहा है और मैं अपने को निर्वासन में उनका स्वतंत्र प्रवक्ता मानता हूं।

पिछली बार मुझे 24 अक्टूबर, 2001 को यूरोपीय संसद को संबोधित करने का सौभाग्य मिला था। तब मैंने घोषित किया था कि कुछ विकास और आर्थिक तरक्की के बावजूद तिब्बत लगातार अपने अस्तित्व की बुनियादी समस्याओं का सामना कर रहा है। पूरे तिब्बत में मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन किया जा रहा है और अक्सर यह नस्लीय एवं सांस्कृतिक भेदभाव की नीतियों की वजह से होता है। वास्तव में ये तो केवल लक्षण मात्र हैं। इनका परिणाम बहुत गंभीर हो सकता है। चीनी प्रशासन तिब्बत की भिन्न संस्कृति एवं धर्म को अलगाव के खतरे के स्रोत के रूप में देखता है। इस प्रकार जानबूझकर ऐसी नीति अपनाई जा रही है जिससे विशिष्ट संस्कृति और पहचान वाले समूचे तिब्बती लोगों के विलुप्त होने का खतरा सामने है।

इस साल मार्च से ही जनजीवन के हर क्षेत्र से जुड़े और समूचे तिब्बती पठार के तिब्बती लोग तिब्बत में चीनी प्रशासन की भेदभावपूर्ण और दमनकारी नीतियों का विरोध कर रहे हैं। अपने जीवन के प्रति बड़े खतरे के प्रति पूरी तरह सचेत चोल्का–सुम (तीनों तिब्बती प्रांत ऊ–त्सांग, खम और आम्दो) कहलाने वाले समूचे तिब्बत के तिब्बती युवा एवं वृद्ध, महिलाएं एवं पुरुष, मठों से जुड़े लोग एवं आम

जनता, धर्म में विश्वास करने वाले या न करने वाले, विद्यार्थी आदि सहज रूप से एक साथ आए हैं और उन्होंने चीन सरकार की नीतियों के खिलाफ अपने गुस्से, असंतोष और वाजिब शिकायतों को साहस के साथ प्रकट किया है। तिब्बती और चीनी दोनों पक्षों की तरफ लोगों की जानें जाने से मुझे गहरा दुःख हुआ और मैंने तत्काल चीनी प्रशासन से अनुरोध किया कि वे संयम बरतें।

चीनी प्रशासन ने मेरे ऊपर आरोप लगाया है कि हाल में तिब्बत में हुई घटनाओं का सूत्रधार मैं हूं। इसलिए मैंने लगातार यह अपील की कि एक स्वतंत्र और सम्मानित अंतरराष्ट्रीय संस्था द्वारा इस मामले की गहन जांच की जाए और इस तरह की संस्था को मैं धर्मशाला आने का भी आमंत्रण देता हूं। इस तरह के गंभीर आरोपों के समर्थन में यदि चीन सरकार के पास कोई प्रमाण हैं तो उन्हें इसे दुनिया के सामने पेश करना चाहिए।

दुःख की बात यह है कि दुनिया के कई नेताओं, एनजीओ और अंतरराष्ट्रीय स्तर के व्यक्तित्वों द्वारा हिंसा को टालने और संयम बरतने की अपील के बावजूद चीनी प्रशासन ने तिब्बत की स्थिति से निपटने के लिए क्रूर तरीकों का सहारा लिया है। इस प्रक्रिया में बड़ी संख्या में तिब्बती लोग मारे गए हैं, हजारों घायल हुए हैं और नजरबंद कर दिए गए हैं। कई लोगों के बारे में तो कुछ नहीं पता चल पा रहा कि वे कहां हैं। आज मैं जब आपके सामने खड़ा हूं, तब भी तिब्बत के कई हिस्सों में भारी संख्या में सशस्त्र बल और सेना के जवान मौजूद हैं। तिब्बत के कई क्षेत्रों में पूरी तरह सैनिक शासन जैसी स्थिति है। वहां गुस्से और भय का माहौल है। तिब्बत में रहने वाला हर तिब्बती लगातार इस डर के वातावरण में जी रहा है कि न जाने कब उसे गिरफ्तार कर लिया जाए। तिब्बत के किसी भी हिस्से में किसी अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षक, पत्रकार या पर्यटक को जाने की इजाजत नहीं है। इससे मैं तिब्बती लोगों की हालत को लेकर बहुत चिंतित हूं।

फिलहाल, चीनी प्रशासन तिब्बत में कुछ भी करने के लिए पूरी तरह से आजाद है। हालत यह हो गई है कि कई तिब्बती नागरिकों को मौत की सजा सुनाई गई है, जो तिब्बती लोगों के जीवट को तोड़ने का प्रयास है।

यूरोपीय संसद के कई माननीय सदस्य इस बात से अच्छी तरह वाकिफ हैं कि संवाद और समझौते के द्वारा तिब्बती समस्या का एक परस्पर स्वीकार्य हल निकालने के लिए मैं किस तरह लगातार प्रयास कर रहा हूं। इसी प्रयास के तहत 1988 में स्ट्रासबोर्ग की यूरोपीय संसद में मैंने वार्ता का एक औपचारिक प्रस्ताव पेश किया था जिसमें तिब्बत को अलग करने या आजाद करने जैसी मांग नहीं थी। इसके बाद से चीन सरकार के साथ हमारे संबंधों में कई उतार–चढ़ाव आए हैं।

करीब 10 साल के व्यवधान के बाद 2002 में हमने चीनी नेतृत्व के साथ फिर से सीधा संपर्क कायम किया। मेरे दूतों और चीनी नेतृत्व के बीच गहन चर्चाएं हुईं। इन चर्चाओं में हमने तिब्बती जनता की आकांक्षा को स्पष्ट तौर पर रखा। मेरी मध्यम मार्ग नीति का सार यही है कि चीन जनवादी गणतंत्र के संविधान के भीतर ही तिब्बती जनता को वास्तविक स्वायत्तता दी जाए।

इस साल 1 और 2 जुलाई को बीजिंग में हुई सातवें दौर की वार्ता में चीन सरकार ने वास्तविक स्वायत्तता के स्वरूप के बारे में हमें अपना विचार रखने के लिए आमंत्रित किया।

इसके बाद 31 अक्टूबर, 2008 को तिब्बती जनता के लिए वास्तविक स्वायत्तता पर हमने चीनी नेतृत्व को एक ज्ञापन दिया। हमारे ज्ञापन में यह बताया गया था कि वास्तविक स्वायत्तता के बारे में हमारी क्या राय है और तिब्बती राष्ट्रवाद की स्वायत्तता और स्वशासन की बुनियादी जरूरतों को कैसे पूरा किया जा सकता है।

इन सब सुझावों के पीछे हमारा एकमात्र उद्देश्य यह था कि तिब्बत की वास्तविक समस्याओं का समाधान हो सके। हमें पूरा विश्वास था कि हमने ज्ञापन के माध्यम से जो रास्ते बताए है, चीन सरकार सदभाव दिखाते हुए उनको लागू करेगी। लेकिन दुर्भाग्य से चीन ने हमारे ज्ञापन को पूरी तरह से खारिज कर दिया और हमारे सुझावों के बारे में कहा कि वे *अर्द्ध स्वतंत्रता* और *छद्म रूप में स्वतंत्रता* हासिल करने के प्रयास हैं जिसकी वजह से उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा चीनी पक्ष ने हम पर *जातीय सफाया* जैसे आरोप लगाए क्योंकि हमारे ज्ञापन में स्वायत्त क्षेत्र के इस अधिकार को मान्यता देने की मांग थी कि, ''चीन जनवादी गणतंत्र के दूसरे हिस्से से तिब्बती क्षेत्रों में आने के इच्छुक लोगों के आवास, बस्ती, रोजगार और अन्य आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित किया जा सके।''

हमने अपने ज्ञापन में साफ तौर पर कहा था कि हमारा उद्देश्य गैर तिब्बतियों को बाहर निकालना नहीं है। हमारी चिंता यह थी कि तिब्बत के कई हिस्सों में हान और कई अन्य राष्ट्रीयताओं के लोगों के बड़े पैमाने पर बसने से मूल तिब्बती जनसंख्या हाशिए पर जा रही है और इससे तिब्बत का नाजुक प्राकृतिक वातावरण भी खतरे में पड़ रहा है। बड़े पैमाने पर लोगों को बसाने से हुए व्यापक जनसांख्यिकीय बदलावों से तिब्बती राष्ट्रीयता के चीन में एकीकरण की जगह विलय को ही बढ़ावा मिलेगा और इससे धीरे–धीरे तिब्बती लोगों की विशिष्ट संस्कृति और पहचान नष्ट होती जाएगी।

मंचूरिया, आंतरिक मंगोलिया और चीन में पूर्वी तुर्किस्तान के लोगों का मामला इस बात का साफ प्रमाण है कि अल्पसंख्यक नागरिकता पर प्रभावी हान नागरिकता के भारी जनसंख्या हस्तांतरण का विनाशकारी परिणाम क्या हो सकता है। आज मंचू लोगों की भाषा, लिपि और संस्कृति का पूरी तरह से लोप हो चुका है। आज आंतरिक मंगोलिया की कुल 2.4 करोड़ जनसंख्या में से मूल मंगोलियाई जनसंख्या का हिस्सा सिर्फ 20 फीसदी है।

चीन के कठोर रवैए वाले अधिकारियों के दावों के विपरीत, ज्ञापन की जो प्रति आपको प्रस्तुत की गई है उसमें यह बात साफ है कि हमने चीन जनवादी गणतंत्र की प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता की चीन सरकार की चिंताओं का पूरी तरह से ध्यान रखा है। इस ज्ञापन की व्याख्या अपने–अपने तरीके से की जा सकती है। इस बारे में आपकी टिप्पणियों और सुझावों का स्वागत है।

इस अवसर पर मैं यूरोपीय संघ और संसद के अधिकारियों से निवेदन करना चाहता हूं कि वे अपने संपर्कों का उपयोग करते हुए चीनी नेतृत्व को समझाने का प्रयास करें ताकि तिब्बती और चीनी, दोनों जनता के साझे हित के लिए तिब्बत मसले का हल वार्ताओं के माध्यम से निकाला जाए।

अपने संघर्ष के साधन में हिंसा के उपयोग को मैंने दृढ़ता से खारिज कर दिया है। निश्चित रूप से हमें अधिकार है कि हम सभी उपलब्ध अन्य राजनीतिक उपायों की तलाश करें। लोकतांत्रिक भावना के तहत ही मैंने तिब्बती जनता की स्थिति, तिब्बत मसले की स्थिति और तिब्बत आंदोलन की आगे की रणनीति पर विचार के लिए एक विशेष बैठक बुलाने का आह्वान किया। यह बैठक 17 से 22 नवंबर, 2008 को धर्मशाला (भारत) में आयोजित हुई। हमारे प्रयासों पर चीनी नेतृत्व द्वारा कोई सकारात्मक पहल न होने की वजह से कई तिब्बती लोगों में यह धारणा पुष्ट हो गई है कि चीन सरकार किसी भी तरह के परस्पर स्वीकार्य हल के लिए इच्छुक ही नहीं है। कई तिब्बती नागरिकों का अब भी यह मानना है कि चीन सरकार तिब्बत का जबरन और पूरी तरह से चीन में विलय करना चाहती है। इसलिए ऐसे लोगों की मांग है कि तिब्बत की पूर्ण आजादी की मांग की जाए। कुछ अन्य लोगों का तर्क था कि तिब्बत के लोगों को आत्मनिर्धारण का अधिकार हो और वहां एक जनमत संग्रह कराया जाए।

इस प्रकार के विभिन्न मतों के बावजूद विशेष बैठक में आए प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर मुझे यह अधिकार सौंपा कि तिब्बत, चीन और पूरी दुनिया की वर्तमान हालत और वहां हो रहे बदलावों के मद्देनजर मैं सबसे अच्छा रास्ता अख्तियार करूं। बैठक में पूरी दुनिया के तिब्बती समुदाय के 600 नेताओं और प्रतिनिधियों के द्वारा आए सुझावों का मैं अध्ययन करूंगा। इसमें तिब्बत में रहने वाले अलग–अलग वर्गों के तिब्बतियों के भी विचार जानने में सफलता मिली है।

मैं लोकतंत्र का पूर्ण समर्थक हूं। इस वजह से ही मैंने निर्वासित तिब्बतियों को लगातार इस बात के लिए प्रोत्साहित किया है कि वे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का पालन करें। आज तिब्बती शरणार्थी समुदाय ऐसे कुछ ही शरणार्थी समुदायों में शामिल है जिन्होंने लोकतंत्र के तीनों स्तंभों विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका को स्थापित किया है। साल 2001 में हमने लोकतांत्रिक प्रक्रिया की दिशा में एक और बड़ा कदम उठाया, जब निर्वासित तिब्बत सरकार के कालोन ट्रीपा (प्रधानमंत्री) का चुनाव जनता के मत से हुआ।

मैं हमेशा यह कहता रहा हूं कि आखिरकार तिब्बती जनता को ही तिब्बत का भविष्य तय करने में सक्षम होना चाहिए। जैसा कि भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने 7 दिसंबर 1950 को भारतीय संसद में कहा था, ''तिब्बत के बारे में अंतिम आवाज तिब्बती जनता की होनी चाहिए किसी और की नहीं।'' तिब्बत के मसले के इतने आयाम और निहितार्थ हैं कि वे 60 लाख तिब्बतियों के भविष्य के अलावा भी प्रभाव रखते हैं। तिब्बत भौगोलिक रूप से भारत और चीन के बीच स्थित है। शताब्दियों तक तिब्बत धरती के दो सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले देशों को अलग करने वाले एक शांतिपूर्ण बफर जोन के रूप में था। लेकिन तथाकथित 'तिब्बत की शांतिपूर्ण मुक्ति' के कुछ साल बाद ही 1962 में दुनिया ने दो एशियाई ताकतों के बीच पहली बार युद्ध होते देखा।

इससे यह बात साफ होती है कि तिब्बत के मसले के तत्काल और शांतिपूर्ण समाधान से ही एशिया के दो सबसे ताकतवर देशों के बीच हमेशा के लिए और वास्तविक भरोसा और मित्रता कायम की जा सकती है। तिब्बत का मसला वहां के नाजुक पर्यावरण से भी जुड़ा है, जिसके बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि इसका प्रभाव एशिया के अधिकांश हिस्से में कई अरब लोगों तक है।

तिब्बत का पठार एशिया की कई महान नदियों का स्रोत है। ध्रुवों के बाहर पृथ्वी के सबसे बड़े बर्फ भंडार तिब्बत के ग्लेशियर ही हैं। कई पर्यावरणविद तो अब तिब्बत को तीसरा ध्रुव मानने लगे हैं। लेकिन वहां यदि इसी तरह से तापमान बढ़ता रहा तो अगले 15–20 साल में सिंधु नदी सूख सकती है। इसके अलावा तिब्बत की सांस्कृतिक विरासत बौद्ध धर्म के करुणा और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित है। इसलिए इससे न सिर्फ 60 लाख तिब्बती लोगों बल्कि हिमालय, मंगोलिया और रूस में कालमिकिया एवं बुरियात के लोगों का भी जुड़ाव है। इसमें चीनी भाइयों एवं बहनों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इन सबमें यह क्षमता है कि एक शांतिपूर्ण और सुव्यवस्थित दुनिया के निर्माण में योगदान दे सकें।

मेरा नियम यही है कि हमेशा सबसे अच्छे की उम्मीद करें और सबसे खराब के लिए तैयार रहें। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने निर्वासित तिब्बतियों को सलाह दी है कि वे निर्वासन की अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओं को मजबूत करने के बारे में युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए ज्यादा कठोर प्रयास करें। इसमें उद्देश्य यह हो कि समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण हो और तिब्बती शरणार्थी समुदाय के बीच लोकतांत्रिक संस्थाओं और नागरिक समाज को मजबूत किया जा सके और उनका प्रसार हो सके।

हमारे निर्वासित समुदाय के प्रमुख लक्ष्यों में से यह भी है कि जहां तक संभव हो अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण किया जाए और हम तिब्बत के भीतर रहने वाले लोगों की स्वतंत्र आवाज बनें। हमें जिन लक्ष्यों और चुनौतियों का सामना करना है वे काफी भयभीत करने वाले हैं। एक शरणार्थी समुदाय के रूप में हमारे संसाधन स्वाभाविक रूप से बहुत सीमित हैं। हम तिब्बतियों को इस वास्तविकता का भी सामना करना होगा कि हमारा निर्वासन काफी लंबे समय तक खिंच सकता है। इसलिए हमारे शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रयासों में मदद के लिए मैं यूरोपीय संघ के प्रति कृतज्ञ रहूंगा।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यूरोपीय संघ के चीन के साथ सैद्धांतिक और लगातार संपर्क से चीन में पहले से चल रही बदलाव प्रक्रिया पर असर पड़ेगा। अब पूरी दुनिया में लोग ज्यादा खुलापन, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और मानवाधिकारों के सम्मान की तरफ बढ़ रहे हैं। आज या कल चीन भी इस वैश्विक चलन का हिस्सा बनेगा। इस परिप्रेक्ष्य में मैं यूरोपीय संसद की इस बात के लिए तारीफ करना चाहूंगा कि उन्होंने चीन में मानवाधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले हु जिया को प्रतिष्ठित सरकोजी पुरस्कार से सम्मानित किया है। हम यह देख रहे हैं कि चीन तेजी से आगे बढ़ रहा है। यह एक महत्वपूर्ण संकेत है। अपने इस नए दर्जे में अब चीन दुनिया के मंच पर प्रमुख भूमिका निभा सकता है। मैं समझता हूं कि इस भूमिका को सही तरीके से निभाने के लिए चीन के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वहां ज्यादा खुलापन, पारदर्शिता, कानून का शासन और सूचना एवं विचार की स्वतंत्रता हो।

इसमें कोई संदेह नहीं चीन के प्रति अंतरराष्ट्रीय समुदाय के रवैए और नीतियों से चीन में हो रहे बदलावों की दिशा तय होगी। यहां तक कि इसका प्रभाव वहां के घरेलू आयोजनों और विकास कार्यों पर भी होगा। चीन सरकार के तिब्बत के प्रति लगातार अत्यंत कठोर रवैए के विपरीत सौभाग्य से चीनी जनता में, खासकर जानकार और शिक्षित लोगों में, तिब्बती लोगों के अधिकारों की समझ और समर्थन बढ़ता जा रहा है। हालांकि तिब्बत के बारे में चीनी नेतृत्व के प्रति मेरा विश्वास कम से कम होता जा रहा है, लेकिन चीनी जनता के प्रति मेरे भरोसे में कोई कमी नहीं आई है।

चीनी बुद्धिजीवियों ने इस साल मार्च में चीन सरकार द्वारा तिब्बती प्रदर्शनों के कठोर दमन की खुलकर आलोचना की थी और यह मांग की थी कि चीन सरकार संयम बरते तथा तिब्बत की समस्या का समाधान करने के लिए संवाद का सहारा ले। बंदी बनाए गए तिब्बती प्रदर्शनकारियों का मुकदमा लड़ने के लिए चीनी वकीलों ने खुलकर पेशकश की। आज तिब्बतियों की कठिन परिस्थिति और उनकी वैधानिक आकांक्षाओं के लिए हमारे चीनी भाइयों एवं बहनों के बीच समझ, समर्थन, सहानुभूति और एकात्मता बढ़ती जा रही है। यह सबसे ज्यादा उत्साहित करने वाली बात है। मैं इस अवसर पर अपने बहादुर चीनी भाई—बहनों को धन्यवाद देना चाहूंगा कि उन्होंने तिब्बती जनता के लिए एकात्मता दिखाई।

अहिंसक तिब्बती संघर्ष के प्रति लगातार चिंता और समर्थन जताने के लिए मैं यूरोपीय संसद को भी धन्यवाद देता हूं। आपकी सहानुभूति, समर्थन और एकात्मता तिब्बत के भीतर और बाहर रहने वाली तिब्बती जनता के लिए हमेशा प्रेरणा और प्रोत्साहन का महान स्रोत रही है। मैं यूरोपीय संसद के तिब्बत इंटर—ग्रुप को विशेष धन्यवाद देना चाहता हूं जिन्होंने तिब्बती जनता के दुःख को न केवल अपने राजनीतिक कार्य का केंद्र बनाया, बल्कि उनके हृदय को जीतने का काम किया है। तिब्बत के मसले पर यूरोपीय संसद के कई प्रस्तावों से तिब्बती जनता के अधिकारों को प्रकाश में लाने और यूरोप सहित पूरी दुनिया के लोगों एवं सरकारों में तिब्बत मसले के प्रति जागरूकता बढ़ाने में काफी मदद मिली है।

यूरोपीय संसद द्वारा तिब्बत के लगातार समर्थन की चीन अनदेखी नहीं कर सकता। अगर इससे यूरोपीय संघ और चीन के रिश्तों में कोई खटास आई हो तो मैं इसके लिए क्षमा चाहूंगा। लेकिन मैं

आपके साथ अपनी इस सच्ची उम्मीद और विश्वास को साझा करना चाहता हूं कि तिब्बत एवं चीन का भविष्य अविश्वास की जगह परस्पर सम्मान, भरोसे और एक–दूसरे के हितों को मानने के रिश्ते पर आधारित होगा, भले ही आज तिब्बत में स्थिति काफी गंभीर है और मेरे दूतों एवं चीनी नेतृत्व के बीच बातचीत की प्रक्रिया बाधित हो गई है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि तिब्बत के लिए आपके द्वारा व्यक्त की गई लगातार चिंता और समर्थन का दीर्घकालिक अवधि में सकारात्मक असर होगा और इससे तिब्बत मसले के शांतिपूर्ण समाधान के लिए जरूरी राजनीतिक वातावरण तैयार करने में मदद मिलेगी। इसलिए आपका लगातार समर्थन हमारे लिए महत्वपूर्ण है।

इस बात के लिए धन्यवाद कि आपने मुझे अपने विचार आपसे साझा करने का सम्मान दिया।

c/l/Yl] 4 fnl/cj] 2008

तेरहवें दलाई लामा द्वारा तिब्बत की स्वतंत्रता की ऐतिहासिक घोषणा

तिब्बत पर दो साल से कब्जा जमाए बैठी चीनी सेना को मार भगाने के बाद तिब्बती शासक द्वारा 1913 में की गई ऐतिहासिक घोषणा

जल–बैल वर्ष (1913) के पहले माह के आठवें दिवस पर तेरहवें दलाई लामा की उद्‌घोषणा का तिब्बती से अनुवाद

मैं, दलाई लामा, बौद्ध विश्वासों का सर्वज्ञ प्रवक्ता, जिसकी विभूति भगवान बुद्ध के आदेश पर गौरवशाली भारत के द्वारा दी गई आपको संबोधित करता हूं:

मैं तिब्बतियों के सभी वर्गों से संबोधित हूं। गौरवशाली राष्ट्र भारत के भगवान बुद्ध ने बताया कि अवलोकितेश्वर के अवतार प्रारंभ के धार्मिक राजाओं से वर्तमान के वारिस शासकों तक के माध्यम से तिब्बत के कल्याण की देख–रेख करेंगे।

मंगोलों के चंगेज खान और अल्तान खान, चीनियों के मिंग वंश, मांचुओं के चिंग वंश के समय से लेकर अब तक तिब्बत और चीन ने गुरू एवं रक्षक के आधार पर सहयोग किया है। कुछ वर्षों पूर्व सिचुआन और युन्नान के चीनी अधिकारियों ने हमारे क्षेत्र में कॉलोनियां बसाने की चेष्टा की। व्यापार के मकसद से उन्होंने मध्य तिब्बत में अपने बहुत से लोग लाकर बसाए। इस कारण यह उम्मीद लेकर मैं अपने कुछ मंत्रियों के साथ भारत तिब्बत सीमा की ओर चला गया कि तार के द्वारा मांचू शासक के सामने यह स्पष्ट करूंगा कि चीनियों और तिब्बतियों के बीच संबंध के अस्तित्व का आधार गुरू–संरक्षक संबंध है न कि मालिक और मातहत का संबंध। सीमा के पार आने के अलावा मेरे पास कोई और चारा न था क्योंकि चीनी दल मुझे जीवित या मृत पकड़ने के उद्‌देश्य से मेरा पीछा कर रहे थे।

भारत आने के बाद मैंने चीनी शासक के पास कई तार भेजे पर मुझे उनके उत्तर पेकिंग के भ्रष्ट अधिकारियों की वजह से देर से मिलते रहे। उस बीच मांचू शासन का पतन हुआ। तिब्बतियों को प्रोत्साहन मिला कि वे मध्य तिब्बत से चीनियों को निकाल बाहर करें। मैं भी अपने पवित्र देश से अपने हक से पहुंचा और अब मैं पूर्वी तिब्बत के दोखाम से अत्याचारी चीनी दल को निकालने की कोशिश में हूं। गुरू संरक्षक संबंधों की आड़ में तिब्बत में कॉलोनियां बसाने की चीन की प्रवृत्ति अब आकाश से इंद्रधनुष की भांति गायब हो चुकी है। खुशहाली और शांति के समय की फिर से प्राप्ति के बाद मैंने आप सब के लिए कुछ कर्तव्य निर्धारित किए हैं जिनका पालन बिना किसी लापरवाही के करना है।

1. बौद्ध विश्वासों को बरकरार रखने में ही विश्व में शांति व खुशहाली बहाल की जा सकती है। उस कारण तिब्बत में बौद्ध संस्थाओं जैसे जोखांग मंदिर, ल्हासा के रेमोचे, साम्ये और दक्षिणी तिब्बत के त्रादुक और तीन महान मठों का संरक्षण जरूरी है।

2. तिब्बत के विभिन्न बौद्ध संप्रदायों का विशुद्ध रूप कायम रखना होगा। बौद्धधर्म के अध्ययन

व इसका ध्यान उचित रूप में करना चाहिए। विशेष व्यक्तियों के अलावा मठों के प्रशासकों को व्यापार, लेन–देन या दूसरों के मातहतों को अपने अधीन करने पर प्रतिबंध होगा।

3. तिब्बती सरकार के असैनिक व सैनिक अधिकारियों को नागरिकों से कर वसूली के समय न्याय और ईमानदारी से पेश आना चाहिए जिससे सरकार को भी लाभ हो और नागरिकों को भी हानि न हो। पश्चिमी तिब्बत के न्गारी कोरसम और पूर्वी तिब्बत के दोखम में कार्यरत कुछ सरकारी अधिकारी ऊंची कीमत पर व्यापारिक वस्तुएं खरीदने को विवश कर रहे हैं। सरकार द्वारा निर्धारित यातायात व्यय भी अधिक लागू किया गया है। नागरिकों के मकान, संपत्ति व भूमि को छोटे–मोटे कानून भंग करने के आधार पर जब्त किया गया है। सजा के रूप में नागरिकों का अंगभंग किया जा रहा है। अतः ऐसे कठोर दंडों पर प्रतिबंध होगा।

4. प्राकृतिक स्रोतों की दृष्टि से तिब्बत एक धनी देश है पर अन्य देशों की तरह यह वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत नहीं है। हम एक छोटा, धार्मिक व स्वतंत्र राष्ट्र हैं। शेष विश्व की धारा में बने रहने के लिए हमें अपने देश की सुरक्षा करनी चाहिए। अतीत में विदेशियों द्वारा किए गए आक्रमणों की वजह से हमारे लोगों को कुछ मुश्किलें सहनी पड़ सकती हैं जिसकी उन्हें उपेक्षा करनी चाहिए। अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हमें स्वेच्छा से कठिन मेहनत करनी चाहिए। सीमा के निकट रहने वाले हमारे नागरिकों को सजग रहना चाहिए और संदिग्ध क्रिया–कलापों की जानकारी विशेष दूतों के माध्यम से सरकार को देनी चाहिए। छोटी–मोटी घटनाओं के कारण हमारे लोगों को दो राष्ट्रों के बीच बड़े झगड़ों को जन्म नहीं देना चाहिए।

5. तिब्बत कम जनसंख्या वाला परंतु विस्तृत देश है। कुछ स्थानीय अधिकारी व जमींदार ईर्ष्यावश निर्जन जमीन के विकास के लिए बांधाएं खड़ी कर रहे हैं। हालांकि वे स्वयं भी ऐसा नहीं कर रहे हैं। ऐसी प्रवृत्ति के लोग राज्य और हमारी प्रकृति के शत्रु हैं। अब से निर्जन जगह पर खेती करने से रोकने की किसी को अनुमति नहीं है। तीन वर्ष गुजरने के पहले कोई भूमि टैक्स नहीं लिया जाएगा, उसके बाद जमीन पर काम करने वालों को ठेके के अनुपात में सरकार व जमींदार को कर देना पड़ेगा। जमीन उसी की हो जाएगी जो उस पर काम करेगा।

सरकार व लोगों के प्रति आपका फर्ज उस समय पूरा होगा जिस समय आप इन कार्यों को पूरा कर लेंगे जो मैंने कहे हैं। इस पत्र को तिब्बत के हर जिले में घोषित करना होगा और रिकार्ड की एक कॉपी को हर जिले में रखना होगा।

पोताला महल से दलाई लामा की मुहर

नोट्स 1. स्रोत : डब्ल्यू. डी. शक्बपा ''तिब्बतः ए पॉलिटिकल हिस्ट्री'' (न्यू हैबेन, 1967 पृ. 246–248)

तिब्बती जनता तिब्बत की भूमि पर प्रसन्न रहेगी और चीन की जनता चीन की भूमि पर

तिब्बत और चीनी राजाओं के बीच संधि

821–22 ई. में हुई तिब्बत–चीन संधि का आलेख

जोखांग मंदिर तिब्बत का सबसे पवित्र माना जाने वाला मंदिर है। इसे सातवीं शताब्दि ई. में तिब्बत के महान राजा स्रोंगसेन गोम्पो ने अपनी नेपाली रानी भृकुटी देवी द्वारा लाई गई मूर्ति के लिए बनवाया था। स्रोंगसेन गोम्पो की चार अन्य रानियां भी थीं जिनमें से तीन तिब्बती और एक तांग घराने के दूसरे चीनी राजा की बेटी राजकुमारी वांगचेन कोंग्जो थी। जोखांग मंदिर का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग पत्थर का वह स्मारक है जो तिब्बत की शानदार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का प्रमाण है। पत्थर के इस स्तंभ पर तिब्बती और चीनी भाषा में तिब्बत और चीन के बीच 821–22 ई. में हुई शांति संधि का आलेख खुदा हुआ है, जो इस प्रकार हैः

पत्थर पर लिखा इतिहास

''तिब्बत के चमत्कारी दैवी शक्ति वाले महान राजा और चीन के महान राजा हुआंग–ती, जो कि चाचा–भतीजे हैं, के बीच सलाह के बाद दोनों राज्यों के बीच गठबंधन की सहमति हुई है। इन दोनों ने एक महान संधि तैयार की है और उस पर हस्ताक्षर किए हैं। देवता और मनुष्य सभी इस संधि के गवाह हैं ताकि इसमें कभी भी परिवर्तन न किया जा सके। इसी दृष्टि से इस संधि का यह विवरण इस पत्थर के स्तंभ पर खुदवा दिया गया है ताकि भविष्य की पीढ़ियों को इसकी जानकारी रहे।

''चमत्कारी दैवी शक्ति वाले त्रिसोंग द्रेत्सेन और चीनी राजा वेन वू सियाओ–ते हुआंग–ती, जो कि चाचा और भतीजे हैं, उन्होंने दूरगामी विवेक का प्रयोग करते हुए, ताकि दोनों देशों के कल्याण को आज या भविष्य में किसी तरह की हानि न हो, अपनी पक्षपातहीन दया को पूरे क्षेत्र में बांटने का फैसला किया है। अपनी–अपनी प्रजा की शांति और कल्याण के लिए काम करने की एकमात्र इच्छा के साथ ये दोनों दीर्घकालिक शुभ इच्छा को लागू करने के ऊंचे कार्य के लिए सहमत हुए हैं तथा इन दोनों ने यह महान संधि इसलिए की है कि पुरातनकाल से चली आ रही आपसी मैत्री और एक दूसरे के प्रति सम्मान तथा मैत्रीपूर्ण पड़ोसी वाले भाईचारे को फिर से स्थापित किया जा सके।

''तिब्बत और चीन अपनी मौजूदा राष्ट्रीय सीमाओं का पालन करेंगे। पूर्व में महान राष्ट्र चीन है और पश्चिम में बिना किसी संशय के महान देश तिब्बत है। आज के बाद दोनों में से कोई भी देश न तो एक दूसरे के खिलाफ युद्ध करेगा न दूसरे की भूमि छीनेगा। यदि कोई भी व्यक्ति संशय का कारण बनता है तो उसे गिरफ्तार किया जाएगा, उसके कामकाज की जांच की जाएगी और उसे वापस उसके देश भेज दिया जाएगा।

''अब जबकि दोनों देशों ने इस महान संधि के आधार पर दोस्ती कर ली है इसलिए अब यह आवश्यक है कि एक दूसरे के यहां पुराने रास्ते से दूतों का आदान प्रदान फिर से शुरू किया जाए ताकि चाचा और भतीजे के बीच मधुर संबंधों को बनाए रखने के लिए तथा आपसी संपर्क बनाए रखने

के लिए संदेशों का आदान प्रदान किया जा सके। पुरानी परंपरा के अनुसार चियांग–शुन दर्रे के निचले चरण पर, जो तिब्बत और चीन की सीमा है, घोड़े बदले जाएंगे। सुईयुंग बैरियर पर चीन वाले तिब्बती दूतों से मिलेंगे और उन्हें आगे के लिए हर तरह की सुविधांए उपलब्ध कराएंगे। चिंग शुई पर तिब्बत वाले चीनी दूतों से मिलेंगे और आगे के लिए उन्हें सभी सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे। दोनों ओर उनके साथ परंपरागत सम्मान का वैसा व्यवहार होगा जैसा कि चाचा और भतीजे के बीच मैत्री संबंधों के अनुसार होना चाहिए।

''दोनों देशों के बीच किसी तरह का दुराव छिपाव नहीं होना चाहिए। ऐसा कुछ नहीं किया जाना चाहिए जो चिंतित करने वाला हो और 'शत्रु' जैसा शब्द बोला भी नहीं जाना चाहिए। यहां तक कि सीमाओं पर तैनात रक्षकों को भी एक दूसरे के प्रति संशय या डर नहीं होना चाहिए ताकि वे धरती और बिस्तर का सुविधा से इस्तेमाल कर पाएं। सभी शांति से रहेंगे और सुख का वरदान दस हजार साल तक भोगेंगे। इन संबंधों की प्रसिद्धि उन सब स्थानों तक पहुंचेगी जहां पर सूर्य और चंद्रमा की पहुंच है।

''इस संधि से एक ऐसे महान युग का सूत्रपात होगा जिसमें तिब्बती जनता तिब्बत की भूमि पर प्रसन्न रहेगी और चीन की जनता चीन की भूमि पर। इस संधि में किसी तरह का बदलाव नहीं किया जा सके इस दृष्टि से धर्म के त्रिरत्नों, संतों के संघ, सूर्य और चंद्रमा, ग्रहों और सितारों का आह्वान किया जाता है कि वे इस संधि के साक्षी रहें। इस बारे में अपनी इच्छा से कसम भी खाई गई है और इसके लिए पशुओं की बलि भी दी गई है तथा संधि पर अपनी–अपनी ओर से पुष्टि भी की गई है।

''अगर दोनों पक्ष इस संधि के अनुकूल व्यवहार नहीं करते या फिर इसका उल्लंघन करते हों तो भले ही वह तिब्बत हो या चीन, इसके जवाब में की गई किसी भी कार्रवाई को संधि का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

''तिब्बत और चीन के राजाओं तथा मंत्रियों ने इस बारे में आवश्यक कसम खाई है तथा समझौते को विस्तार से लिखा गया है। दोनों राजाओं ने अपनी–अपनी मुहरें इस पर लगाई हैं। इस संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त किये गए मंत्रियों ने इस संधि पर अपने–अपने हस्ताक्षर किये हैं और इनकी प्रतियां एक दूसरे के राजकीय दस्तावेजों में शामिल कर ली गई हैं।''

——

चीनी सेना को तिब्बत से निकालने की संधि

12 अगस्त 1912

(तिब्बती वर्णन से अनूदित)

तीन सूत्री प्रस्तावों पर वार्ता करने के लिए गोरखा साक्षी की उपस्थिति में चीनी और तिब्बती प्रतिनिधि मिले। इस प्रस्ताव को 6 वें माह के 29 वें दिन को अम्बांन लेन और चुंग द्वारा लिखे गए पत्र के जवाब के रूप में दलाई लामा द्वारा स्वीकार किया गया था। 30 तारीख को पक्षों ने सावधानीपूर्वक बातचीत की और त्रि सूत्री प्रस्ताव को चीनी, तिब्बती और नेपाली भाषाओं में पास कर उन पर हस्ताक्षर करने और मुहर लगाने का निर्णय लिया।

सूत्र 1– ल्हासा के दाब्शी और सेलिंग क्षेत्रों में फील्ड गन और मैक्सिम गन समेत जितने भी शस्त्र व साजोसामान चीनियों के कब्जे में हैं उन सबको दोनों पक्षों एवं साक्षी की उपस्थिति में सीलबंद करके तिब्बत सरकार को सौंप दिया जाएगा। चीनी अधिकारियों एवं सैनिकों के प्रस्थान से पहले, पंद्रह दिनों के भीतर, सभी हथियार व साजो सामान याब्शी लांग–दुन मकान में रख दिए जाएंगे, गोलयां और बारूद डोरिंग हाउस में इकट्ठी और जमा की जाएंगी। पंद्रह दिनों की सीमा के समाप्ति पर सभी हथियार डोरिंग हाउस में रख दिए जाएंगे और साक्षी के रूप में गोरखा दूत वहां की सुरक्षा व्यवस्था करेगा।

सूत्र 2– पंद्रह दिनों के भीतर चीनी अधिकारी व सैनिक तिब्बत छोड़ देंगे। तीन किश्तों में प्रस्थान की उनके द्वारा दी गई तिथियों के अनुसार तिब्बती हर टुकड़ी के साथ अपना एक अधिकारी नियुक्त करेंगे और उनके लिए मालवाहक पशुओं तथा सवारी के लिए ट्टटूओं के आपूर्ति की व्यवस्था करेंगे। उनसे स्थानीय कीमतों के अनुसार पर्याप्त भुगतान लेकर तिब्बत में पढ़ावस्थलों से सीमा तक चीनियों को राशन जैसे चावल, आटा, त्सम्पा, मांस, मक्खन व चाय की आपूर्ति की जाएगी। मालवाहक पशुओं और सवारी के लिए टट्टूओं की व्यवस्था बिना देरी के की जाएगी। चीनी लोग उन पशुओं को जबर्दस्ती सीमा के पारनहीं ले जाएंगे।

सूत्र 3– दोनों प्रतिनिधि शस्त्राास्त्र रखने के उद्देश्य से कल याब्शी हाउस से समस्त चीनी अधिकारियों एवं सैनिकों को तथा डोरिंग हाउस से तिब्बती सैनिकों को हटा देंगे।

ल्हासा के दाब्सी और सेलिंग क्षेत्र में चीन सरकार के कब्जे में जो भी शस्त्राास्त्र हैं, चीन के निजी व्यापारियो ंके पास भी जो शस्त्रास्त्र हैं उन्हें अम्बांन लेन व चुंग के द्वारा छठवें माह के 29 वें दिन को लिखे गए पत्र के अनुसार सातवें माह की पहली तिथि को दोनों पक्षों एवं साक्षी के समक्ष एक सूची के साथ पेश किया जाएगा। शस्त्रास्त्रों का कोई भी हिस्सा बेचा, दिया, छिपाया या फेंका नहीं जाएगा। साक्षियों की सलाह के अनुसार अम्बांन लेन औरचुंग की अपनी सुरक्षा के लिएसाठ राठफल व गोली सिक्का लेकर चलने की अनुमति दी जाएगी। शेष सभी शस्त्रास्त्र डोरिंग व याब्शी हाउसों में रखे जाएंगे जिन्हें दोनों प्रतिनिधियों व साक्षियों द्वारा सीलबंदी किया जाएगा। दोनों प्रतिनिधि व साक्षी उपरोक्त वर्णन के अनुसार गार्ड देने की व्यवस्थाकरेंगे। सभी शस्त्राास्त्र, फील्ड गन, मैक्सिम गन जिन्हें ल्हासा दाब्शी, सेलिंग से चीनी सरकार व निजी व्यापारियों से इकट्ठा किया गया है बिना दिए, बेचे, छिपाए या छोड़े हुए जमा किया जाएगा। निजी चीनी व्यापारियों के पास समस्त शस्त्रों की बाकायदा सूची बनाई जाएगी और उलकी वापसी संबंधित तथ्यों पर प्रतिनिधि व साक्षी बातचीत करेंगे।

यदि कोई पक्ष वर्णित प्रावधानों का अतिक्रमण करता है तो दोनों पक्षों एवं साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित व मुहरबंद इस संधि को निष्क्रिय माना जाएगा।

दलाई लामा के संयुक्त प्रतिनिधियों की मुहर
शेरता थितुल और शेडोन तांग्याल
अम्बांन लेन और चुंग के प्रतिनिधियों की मुहरें
लुचांग क्रांग लुंगरिन
यूलजी लूलांगरिन
यू योन क्रेपू हई क्रु
थुंग क्रिकुंग बुहु हई
क्रेफू वांग चिऊजिन
श्रु फून

लु लु कोन कोनन्गांन खूपांच श्रियों के साक्षियों की मुहरें
गोरखा दरबार का प्रतिनिधि
मेजर कैप्टन जीत बहादुर खतरी छेतरी
लेटिनेंट लाल बहादुर बसन्यात छेतरी
दिथ्था कुल प्रसाद उपाध्याय
सूबेदार रत्न गंभीर सिंह खत्री छेतरी

जल—मूशक वर्ष के छवें महीने का 30 वां दिन (12 अगस्त 1912)

नोट्स

स्रोत : राम राहुल, ''दि 1912 एग्रीमेंट बिटवीन दि चाइनीज एंड तिब्बतन्स,'' तिब्बत रिव्यू (फरवरी 1979) पृ. 20—21। इस संधि का विवरण स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली भारत के ग्रंथालय में रखा है। एफ.ओ. 535/16, नं. 258 इंक्लोजर 4 से तुलना।

——

चीनियों एवं तिब्बतियों के मध्य 14 दिसंबर 1912 का समझौता

चीनियों और तिब्बतियों में लड़ाई के कारण चीनियों के प्रतिनिधि एवं तिब्बतियों के प्रतिनिधि ा एक दूसरे को संतुष्ट करने के मकसद से नेपाली प्रतिनिधियों के साक्षी में उनके कार्यालय में मिले। विवादास्पद तथ्यों पर प्रतिनिधियों ने वार्ता की, और अंततः निम्नवत निर्णय लिए :

1. सबसे पहले याब्शी हाउस में जमा किए नए शस्त्रों की गणना करके देखना कि इनकी संख्या ठीक है या नहीं। इसके पश्चात याब्शी हाउस में रखे इन शस्त्रों को इसके बाद भी जमा किए जाने वाले शस्त्रों को तिब्बतियों को सौंप देना, तिब्बती प्रौंग गन, नई बनीं फाइव शॉट मैगजीन यूशांग गन, नू छाऊ या मार्टिन हेनरी गन जिन पर तिब्बती चिन्ह अंकित है, तोप, बिना बोल्ट वाली छोटी बड़ी बंदूकें बारूद और कारतूस जो चीनियों के पास हैं शो भंडार—कक्ष में रखे जाएंगे। भंडार कक्ष पर चीनी, तिब्बती और नेपाली प्रतिनिधियों द्वारा सील बंदी की जाएगी और नेपालियों के द्वारा इनकी रक्षा तब तक की जाएगी जब तक चीनी त्रोमो की सीमा (चुम्बी घाटी) पार नहीं कर लेते। इसके बाद तिब्बतियों को इस भंडार कक्ष का हस्तांतरण नेपालियों द्वारा किया जाएगाबदले में उन्हें बाकायदा रसीद दे दी जाएगी।

2. जब तक चीनी ल्हासा में हैं तब तक तिब्बती अपने व्यापारियों से प्रतिदिन भोजन लेकरचीनियों से कीमत लेकर भेजेंगे। यदि कोई तिब्बती पक्ष की तरफ आना चाहे उसे तुंगलिंग से एक पत्र मिलेगा और यदि तिब्बतियों की तरफ कोई वस्तु छूट गई है तो धारक चाहे चीनी हो या तिब्बती उसे ले सकता है।

3. सूची के अनुसार प्रस्थान करते समय चीनी अधिकारियों व सैनिकों के लिए तिब्बती लोग मालवाहक पशुओं एवं सवारी टट्टुओं की व्यवस्था करेंगे।

(क) तिब्बती चीनियों को (व्यापारियों व्यक्तियों को) 10 टंका पर एक मालवाहक टट्टू एवं 6 टंका पर एक सवारी टटटू के हिसाब से पशुओं की आपूर्ति करेंगे। यह व्यवस्था एक जोंग से दूसरे जोंग अर्थात जानवरों के बदलने के हर स्थान के हिसाब से होगी।

4. तुंगलिंग व चीनी अधिकारी, सैनिक एवं व्यक्ति ल्हासा से इस महीने की आठवीं (16 दिसंबर 1913) को चल देंगे। रास्ते में वे तिब्बतियों को सताएंगे या लूटेंगे नहीं और अविलंब भारत से होकर (चीन) लौटेंगे।

5. निरीक्षण के स्थलों पर चीनियों के बोरिया–बिस्तर के साथ बोल्ट के अलावा यदि किसी और प्रकार का शस्त्रास्त्र मिला तो तिब्बती सरकार इन पर कब्जा कर लेगी।

6. रास्ते में पड़ाव स्थलों पर तिब्बती लोग चीनियों को उचित मूल्य पर खाद्य की आपूर्ति करेंगे।

7. तिब्बतियों ने तिब्बत छोड़कर जा रहे तुंगलिंग, चीनी अधिकारी, सैनिक, व्यापारी, व्यक्ति या तिब्बत में रह रहे चीनी व्यापारी एवं अन्य व्यक्तियों के जानमाल को न लूटने का वादा किया है।

8. यामेन के (पड़ोस) के मकानों को तिब्बियों को दे दिया जाएगा। पुस्तक में लिखी एक सूची के अनुसार लकड़ी के संदूक एवं बरतन एक अलग मकान में रखे जाएंगे जिसे चीनी और तिब्बती प्रतिनिधि सीलबंद कर देंगे। तिब्बती इस मकान की देख–रेख करेंगे।

9. तेंग्येलिंग मठ के धर्मगुरुओं का जहां प्रश्न है जब पहली संधि हुई थी परम पूज्य दलाई लामा ने अच्छे व्यवहार करने वाले भिक्षुओं के जीवन की सुरक्षा का वादा किया था। प्रतिनिधि इसी वादे का निरीक्षण व अनुगमन करते हैं।

दोनों पक्ष (चीनी और तिब्बती) उपरोक्त संदर्भ में संतुष्ट और सहमत हो गए हैं।

(तिब्बती प्रतिनिधि तेजी तिमोन के हस्ताक्षर एवं मुहर)

(केम्पो (प्रोफेसर) त्रुंग यिक चेम्पो, मुख्य सचिव, त्रेपा, ग्याल त्सेन के हस्ताक्षर एवं मुहर)

(व्याख्याता केंचुंग लोब्सांग ग्यात्सो के हस्ताक्षर व मुहर)

राष्ट्रीय सभा, सेना, द्रेपुंग व गांदेन मठों के हस्ताक्षर व मुहर)

(चीनी प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर व मुहर)

(झा–का–मु–योन–ग्यो–खुन के हस्ताक्षर व मुहर)

(ल्हासा के ली–सी क्वान छा–देल के हस्ताक्षर व मुहर)

(दे–सी–क्वान, का–रा–क्वान के हस्ताक्षर व मुहर)

साक्षीः

ल्हासा में रह रहे नेपाली प्रतिनिधि लेटिनेंट लाल बहादुर छेत्री के हस्ताक्षर व मुहर)

(दिथ्था कुल प्रसाद उपाध्याय के हस्ताक्षर व मुहर)

से–कुशो–राणा गंभीर सिंह खत्री छेत्री के हस्ताक्षर व मुहर)

नोट्स

स्रोत : एफ ओ 535/15 नं. 181 इनक्लोजर 6.

Edited

मित्रता और गठबंधन की तिब्बत–मंगोलिया संधि

तिब्बत और मंगोलिया के बीच उर्गा में 29 दिसंबर 1912 ;11 जनवरी, 1913 को हुई संधि जिसमें मांचू वंश से मुक्त होने और चीन से अलग अपने–अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की गई

मंगोलिया और तिब्बत ने मांचू वंश से मुक्त होकर और चीन से अलग होकर अपने पृथक राज्य बनाए हैं इस बात को ध्यान में रखकर कि अतीत से दोनों ने एक ही धर्म का पालन किया है, ऐतिहासिक और परस्पर सहयोग की भावना को सुदृढ़ करने के लिए मंगोलों के शासक के महादूत के रूप में विदेशमंत्री निबता बिलिवतु दा–लामा राब्दान, और सहायक मंत्री, जनरल और मनलाई बात्यर बीस्हे दामदीन सुरून और दलाई लामा, तिब्बत के शासक के महादूत के रूप में गुदजिर छानशिब कांचेन, लोबसांग अग्वान, डोनिर अग्वान, छोजेन इशिछामात्सो बैंक के निर्देशक और क्लर्क गेंदन ग्याल्ज्सेन ने निम्नलिखित प्रस्तावना बनाई :–

धारा एकः– तिब्बत के शासक दलाई लामा स्वतंत्र राज्य के रूप में मंगोल राज्य को वैधता एवं मान्यता देते हैं एवं सूअर वर्ष के ग्यारहवें माह के नवें दिन पीले समुदाय के छेब्जुन दाम्बा लामा को राष्ट्र के शासक के रूप में घोषित करते हैं।

धारा दो – मंगोलों के शासक छेब्जुन दाम्बा लामा भी स्वतंत्र राज्य के रूप में तिब्बत को वैधता एवं मान्यता देते हैं तथा दलाई लामा को तिब्बत के शासक के रूप में घोषित करते हैं।

धारा तीन – दोनों राज्य बौद्ध धर्म के कल्याण के लिए संयुक्त समझ–बूझ से कार्य करेंगे।

धारा चार – अब से लेकर तिब्बत और मंगोल दोनों राज्य बाहरी खतरों के खिलाफ एक दूसरे की मदद करेंगे।

धारा पांच – धर्म या राज्य के मसले पर राजकीय या निजी रूप से यात्रा करने वाले किसी भी व्यक्ति को हर राज्य अपने क्षेत्र में सहायता प्रदान करेगा।

धारा छह – तिब्बत और मंगोलिया, दोनों राज्य पहले ही की तरह अपने यहां के उत्पादों पशुओं आदि के व्यापार में संलग्न होंगे और औद्योगिक प्रतिष्ठान भी खोलेंगे।

धारा सात – अब से राजकीय संस्थाओं की जानकारी में इनकी अनुमति से किसी को भी ऋण दिया जाएगा। इसकी अनुमति के बिना राजकीय संस्थाएं किसी प्रकार के दावे नहीं सुनेंगी।

वर्तमान संधि से पूर्व किए गए ऐसे किसी भी करार में जहां दोनों पार्टियों के प्रत्यक्ष सपर्क में न आने की वजह से काफी हानि हुई तो उनकी क्षतिपूर्ति राजकीय संस्थाओं द्वारा की जाएगी पर किसी भी हालत में ऐसे ऋण 'शबिनार' या 'खोशुन' से संबंधित न होंगे।

धारा आठ – वर्तमान संधि की धाराओं की शेषपूर्ति हेतु यदि आवश्यक हुआ तो मंगोल और तिब्बत सरकार विशेष प्रतिनिधियों की व्यवस्था करेंगी जो वक्त की मांग के अनुरूप ऐसे प्रस्तावों का निष्कर्ष

पेश करेंगे।

धारा नौ – हस्ताक्षर होने की तिथि से ही वर्तमान संधि लागू हो जाएगी।

संधि के निष्कर्ष हेतु मंगोल सरकार के महादूतः निक्ता बिलिक्तु दा लामा रबदान, विदेशमंत्री और जनरल तथा मनलाई बात्यर वीस्हे दामिदिनसुरून सहायक मंत्री।

संधि के निष्कर्ष हेतु तिब्बत के शासक दलाई लामा के महादूत, तिब्बत इशिछामात्सो बैंक के निर्देशक गुडजिर शानशिब कांचेन लोबसांग, अग्वान छोंजन और क्लर्क गेंदन ग्यालत्सेन।

मंगोल गणना के अनुसार हस्ताक्षर द्वितीय वर्ष के बारहवें माह के चौथे दिन और तिब्बती गणना के मुताबिक जल–मूशक वर्ष के बारहवें माह के चौथे दिन को हुए।

——

Edited

मैकमहोन लाइन और शिमला समझौता

ग्रेट ब्रिटेन, चीन और तिब्बत के बीच का घोषणा पत्र

3 जुलाई, 1914 के ब्रिटिश तिब्बती घोषणा पत्र से संयोजित

1914 में भारत की ब्रिटिश सरकार और तिब्बत की दलाई लामा सरकार के बीच भारत–तिब्बत सीमा के बारे में हुए ऐतिहासिक समझौते का आलेख। इस समझौते में भारत की ब्रिटिश सरकार, तिब्बत की दलाई लामा सरकार और चीन सरकार ने तीन अलग देशों के रूप में भाग लिया था – संपादक

युनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एवं आयरलैंड के राजा, समुद्रों के पार ब्रिटिश प्रभुत्व वाले इलाकों के व भारत के शासकों, चीनी गणतंत्र के राष्ट्रपति और तिब्बत के परमपावन दलाई लामा ने एशिया महाद्वीप के विभिन्न राज्यों में अपने हितों को सुलझाने के लिए और विभिन्न सरकारों के बीच संबंधों के संचालन हेतु उस विषय पर परस्पर सहमति से एक प्रतिज्ञा पत्र जारी करने का और इस मकसद के लिए अपने–अपने महादूतों के मनोनयन का निर्णय किया है, जिसका कहना है :

युनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के राजा, समुद्रों के पार ब्रिटिश प्रभुत्व वाले क्षेत्रों के शासक, भारत के शासक, सर आर्थर हेनरी मैकमहोन, रॉयल विक्टोरियन ऑर्डर के नाईट ग्रांड फ्रांस, भारतीय साम्राज्य के सर्वश्रेष्ठ अलंकरण नाइट कमांडर, स्टार ऑफ इंडिया का सबसे प्रशंसनीय ऑर्डर, भारत सरकार के विदेश एवं राजनीतिक विभाग के सचिव;

चीनी गणतंत्र के राष्ट्रपति श्रीमान इवानचेन, विया हो के ऑफिसर ऑफ द ऑर्डर;

तिब्बत के परमपावन दलाई लामा, लोंचेन गादेन शात्रा पालजोर दोरजे

जिन्होंने परस्पर एक दूसरे को पूर्ण अधिकार दिए और उन्हें बेहतर स्थिति में पाकर ग्यारह धाराओं के निम्नलिखित प्रतिज्ञापत्र पर सहमत हुए हैं।

/kkjk ,d : सूची में वर्णित प्रतिज्ञाएं सिर्फ उन प्रतिज्ञाओं को छोड़कर जिनमें कुछ परिवर्तन हुए हैं या जो कुछ असंगत एवं प्रतिकूल हो सकती है उच्च संविधा दलों के मध्य सेतुबंध का कार्य करेंगी।

/kkjk nk : ग्रेट ब्रिटेन और चीन की सरकार यह मानती है कि तिब्बत पर चीन का अधिराज्य है परंतु बाहरी तिब्बत की स्वायत्तता को स्वीकार करती है, राष्ट्र की क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान करते हुए बाह्य तिब्बत के प्रशासन, दलाई लामा के चुनाव व राज्याभिषेक समेत में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करती है। यह ल्हासा में तिब्बती सरकार के ही अधीन विषय होगा।

चीन सरकार तिब्बत को चीनी प्रांत के रूप में नहीं बदलने को प्रतिबद्ध है। ग्रेट ब्रिटेन की सरकार तिब्बत या इसके किसी हिस्से के संयोजन नहीं करने को प्रतिबद्ध होती है।

/kkjk rhu : भौगोलिक स्थिति के संदर्भ में तिब्बत में ग्रेट ब्रिटेन के हितों को दृष्टिगत रखते हुए, तिब्बत में एक प्रभावकारी सरकार की उपस्थिति में, भारत और अन्य सटे हुए राज्यों से शांति व भाईचारा कायम रखने के लिए चीन इस बात के लिए प्रतिबद्ध होता है कि वह बाहरी तिब्बत में सेना नहीं भेजेगा,

न सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों को पदस्थापित करेगा और न उस देश में चीनी कॉलोनियां बसाएगा। प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर होने की घड़ी तक यदि बाहरी तिब्बत में चीनी सेना या अधिकारी मौजूद हैं तो उन्हें तीन माह के अंदर ही वापस बुला लिया जाएगा।

ग्रेट ब्रिटेन की सरकार भी प्रतिबद्ध होती है कि वह तिब्बत में सैनिक, असैनिक अधिकारियों को नियुक्त नहीं करेगी ; 7 सितंबर 1904 के ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के बीच के प्रतिज्ञापत्र में वर्णित सुविधाओं के अलावा न सेना भेजेगी (अनुचर दूतों को छोड़कर) न इस देश में कालोनियां ही बसाएगी।

/kkjk pkj : छोड़े गए सूत्रों को उस व्यवस्था के परिचालन से पृथक नहीं रखा जाएगा जिसके अनुसार एक उच्चस्तरीय चीनी अधिकारी ल्हासा में काफी संख्या में अनुचरों के साथ पदस्थापित था। बल्कि यह व्यवस्था की जाती है कि किसी हालत में ऐसे अनुचर 300 से अधिक न होने पाएं।

/kkjk ikp : 7 सितंबर 1904 को ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के मध्य के प्रतिज्ञापत्र तथा अप्रैल 27, 1906 के ग्रेट ब्रिटेन तथा चीन के प्रतिज्ञापत्र में वर्णित पारस्परिक वार्ता के अनुबंधों के आधार पर तिब्बत या चीन की सरकार आपस में या किसी और ताकत के साथ तिब्बत संबंधी वार्ता या संधि नहीं करने को कटिबद्ध होती है।

/kkjk Ng : ग्रेट ब्रिटेन और चीन के बीच 27 अप्रैल 1906 के प्रतिज्ञापत्र की धारा तीन को रद्द किया जाता है और घोषित किया जाता है कि 7 सितंबर 1904 के ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के बीच संधि से संबंधित प्रतिज्ञापत्र में 'विदेशी ताकत' का विशेषण चीन पर लागू नहीं होगा।

चीन या अन्य प्रमुख राष्ट्रों की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन के साथ वाणिज्य का मूल्यांकन कम करके नहीं देखा जाएगा।

/kkjk lkr (ए) : 1893 व 1908 की तिब्बत व्यापार नियमावली रदद् की जाती है।

(बी) : 7 सितंबर 1904 के ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के बीच के प्रतिज्ञापत्र की धारा दो, चार और पांच को प्रभावकारी बनाने के लिए अविलंब बाह्य तिब्बती क्षेत्र के विषय में ग्रेट ब्रिटेन के साथ बातचीत कर नई व्यापारिक नियमावली बनाने को ग्रेट ब्रिटेन उद्यत होती है, साथ ही यह व्यवस्था भी की जाती है कि चीन सरकार की सहमति के बिना ऐसी नियमावली किसी भी कोण से वर्तमान प्रतिज्ञापत्र में फेरबदल नहीं करेगी।

/kkjk vkB : ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के बीच हुए 7 सितंबर 1904 के संधि पत्र के किसी तथ्य को लेकर किसी असहमति की स्थिति हो और ऐसा लगे कि ग्यांत्से के द्वारा पत्राचार या अन्य किसी तरीके से सुलझाया नहीं जा सकता तो ग्यांत्से में रह रहे ब्रिटिश दूत अपने अनुचर के साथ ल्हासा आकर सरकार से संपर्क कर सकते हैं।

/kkjk uk : वर्तमान प्रतिज्ञापत्र के इस्तेमाल के लिए तिब्बत की सीमाएं, भीतरी और बाहरी तिब्बत के बीच की सीमा नक्शे में क्रमशः लाल और नीले रंगों में प्रदर्शित है, जो यहां संलग्न है।

भीतरी तिब्बत में तिब्बती सरकार के अधिकारों के संबंध में वर्तमान प्रतिज्ञापत्र कोई अन्याय नहीं करेगा। मठों के उच्चस्थ पुजारियों के चयन व नियुक्ति का एवं धार्मिक संस्थाओं से संबंधित तथ्यों पर नियंत्रण का पूरा अधिकार तिब्बती सरकार के पास कायम रहेगा।

/kkjk nl : इस प्रतिज्ञापत्र के अंग्रेजी, चीनी और तिब्बती संस्करणों की जांच कर ली गई है और इसे संचार के योग्य पाया गया है, परंतु अर्थ को लेकर यदि उनके मध्य विवाद हो तो अंग्रेजी संस्करण को अधिकारिक माना जाएगा।

/kkjk X;kjg : हस्ताक्षर होने की तिथि से ही यह प्रतिज्ञापत्र लागू माना जाएगा।

जिन उद्देश्यों हेतू संबंधित महादूतों ने हस्ताक्षर किए तीन कॉपी अंग्रेजी में, तीन चीनी में, तीन तिब्बती में हैं।

यह समझौता शिमला में 3 जुलाई 1914 ईस्वी को, चीनी तिथि के मुताबिक गणतंत्र के तीसरे वर्ष के सातवें माह के तीसरे दिवस और तिब्बती तिथि के हिसाब से जल–चीता वर्ष के पांचवें माह के दसवें दिन किया गया।

लोंचेन शात्रा के हस्ताक्षर — हस्ताक्षर ए.एच.एम.

लोंचेन शात्रा की मुहर — ब्रिटिश महादूत की मुहर

सूची

1. सिक्किम और तिब्बत से संबंधित कलकत्ता में 17 मार्च, 1890 को ग्रेट ब्रिटेन और चीन के बीच जारी प्रतिज्ञापत्र।

2. 7 सितंबर 1904 को ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के बीच का ल्हासा में हस्ताक्षर किया गया प्रतिज्ञापत्र।

3. 27 अप्रैल 1906 को तिब्बत के संबंध में ग्रेट ब्रिटेन व चीन के बीच पेकिंग में हस्ताक्षर किया गया प्रतिज्ञापत्र जिसमें तिब्बत के अस्तित्व के प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया।

विनिमय किए गए नोटस निम्नलिखित हैं :–

1. संविदा के उच्च पक्षों द्वारा धारणा बनाई जाती है कि तिब्बत चीनी क्षेत्र का अंग है।

2. तिब्बती सरकार द्वारा दलाई लामा के चयन एवं राज्याभिषेक के उपरांत तिब्बती सरकार राज्याभिषेक की सूचना चीन सरकार को देगी और तब ल्हासा में चीन सरकार का प्रतिनिधि चीन सरकार द्वारा प्रस्तावित निर्देशों के मुताबिक परमपावन दलाई लामा को औपचारिक रूप से पूर्ण सम्मान के साथ उनको विभूति प्रदान करेगा।

3. यह भी समझा जाता है कि बाह्य तिब्बत में भी अधिकारियों के चयन व नियुक्ति का हक तिब्बती सरकार को होगा।

4. चीनी संसद में या समकक्ष अन्य स्थानों पर बाह्य तिब्बत का प्रतिनिधित्व नहीं होगा।

5. यह भी समझा जाता है कि ब्रिटिश व्यापारिक एजेंसियों से जुड़े अनुचरों की संख्या ल्हासा में चीनी प्रतिनिधियों के कुल के पचहत्तर प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

6. चीन सरकार को 17 मार्च 1890 को ग्रेट ब्रिटेन और चीन के बीच हुए प्रतिज्ञापत्र की धारा तीन के उस अनुबंध से मुक्त किया जाता है जिसके अंतर्गत चीन को तिब्बत–सिक्किम–सीमा के तिब्बती क्षेत्र में आक्रामक कारवाइयों की रोक करनी थी।

7. जैसे ही धारा तीन में वर्णित शर्तों की पूर्ति तीनों पक्षों की पूर्ण संतुष्टि अनुसार होगी, धारा चार में वर्णित चीनी अधिकारी तिब्बत में बेरोक–टोक जा सकेंगे। अपनी रिपोर्ट वे अविलंब देंगे।

ykpu 'kk=k d gLrk{kj — **gLrk{kj ,-,p-,e-**

लोंचेन शात्रा की मुहर — ब्रिटिश महादूत की मुहर

—

3 जुलाई 1914 के दिन शिमला में की गई ब्रिटिश–तिब्बती घोषणा

हम ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत के महादूत इस आशय के घोषणा पत्र को यहां रिकॉर्ड करते हैं कि हम संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित हुए उस घोषणापत्र की जिस पर ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत की सरकार ने हस्ताक्षर किए, सत्यता को स्वीकार करते हैं और उस बात पर सहमत होते हैं कि ऐसी पूर्वोक्त प्रतिज्ञा

पर हस्ताक्षर करने को जब तक चीन सहमत नहीं होता तब तक इस घोषणा से मिलने वाले लाभों के उपभोग से वह वंचित रहेगा।

इसलिए हमने इस घोषणा पर हस्ताक्षर किए एवं मुहर लगाए हैं। दो कॉपी अंग्रेजी एवं दो कॉपी तिब्बती भाषा में है।

3 जुलाई 1914 ईसवी, तिब्बती गणना के अनुसार काठ–चीता वर्ष के पांचवें माह के दसवें दिन को शिमला में किया गया।

ए. हेनरी मैकमहोन, ब्रिटिश महादूत लोचेन शात्रा की मुहर द्रेपुंग मठ की मुहर
ब्रिटिश महादूत की मुहर सेरा मठ की मुहर

दलाई लामा की मुहर राष्ट्रीय सभा की मुहर
लोंचेन शात्रा के हस्ताक्षर गांदेन मठ की मुहर

नोट्स

स्रोत : क्राउन कॉपीराइट दस्तावेज एफ ओ 535/17 नं. 231 इन्क्लोजर 7, भारतीय रिकॉर्ड कार्यालय के और पब्लिक रिकॉर्ड कार्यालय के क्राउन कॉपीराइट दस्तावेज

——

तिब्बत पर सं. राष्ट्र संघ के तीन प्रस्ताव

सं. राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा तिब्बत के बारे में
पारित पहले तीन प्रस्तावों (1959, 1961, 1965) का सारांश

(पहले और दूसरे प्रस्ताव की वोटिंग में भारत ने भाग नहीं लिया। लेकिन तीसरे प्रस्ताव के समय भारत सरकार ने इसका जोरदार समर्थन किया। इस अवसर पर भारतीय प्रतिनिधि श्री रफ़ीक ज़कारिया के भाषण का पाठ पुस्तक में अन्यत्र देखें – संपादक)

पहला प्रस्ताव : संख्या 1353–14

21 अक्तूबर, 1959

यह आम सभा 10 दिसंबर, 1954 को स्वीकार किए गए मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र तथा सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र में निहित मूलभूत मानवाधिकारों को ध्यान में रखते हुए; यह ध्यान में रखते हुए कि मूलभूत मानवाधिकारों, जिन पर आम लोगों की तरह तिब्बती जनता का भी अधिकार है, में नागरिक व धार्मिक स्वतंत्रता भी है; यह जानते हुए कि तिब्बत की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत है तथा उन्होंने परंपरागत रूप से स्वायत्तता का उपभोग किया है; इन रिपोर्टों, जिनमें परमपावन दलाई लामा के अधिकारिक वक्तव्य भी शामिल हैं, कि तिब्बत की जनता से जबरदस्ती उसके मूलभूत अधिकारों और स्वतंत्रताओं को छीना गया है, पर हार्दिक चिंता व्यक्त करते हुए; ऐसे समय पर जब जिम्मेवार नेताओं द्वारा तनाव घटाने और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को सुधारने के गंभीर व रचनात्मक प्रयास किए जा रहे हैं, विश्व में तनाव को बढ़ाने और देशों के बीच कटुता पैदा करने वाली इन घटनाओं की निंदा करते हुए :–

1) अपना यह विश्वास पुष्ट करती है कि सं.रा. घोषणा पत्र और मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र के सिद्धांतों के प्रति आदर एक ऐसी शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है जो न्यायपूर्ण व्यवस्था पर आधारित हो। तथा

2) यह मांग करती है कि तिब्बती जनता के मूलभूत मानवाधिकारों (को स्थापित किया जाए) तथा उसके विशिष्ट सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन का आदर किया जाए।

दूसरा प्रस्ताव : संख्या – 1723–16

दिनांक : 12 दिसंबर, 1961

तिब्बती जनता के मूलभूत मानवाधिकारों के उल्लंघन और उनके विशिष्ट सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन के दमन सहित तिब्बत के भीतर जारी घटनाक्रम पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए; इस घटनाक्रम के कारण तिब्बती जनता के लिए पैदा हुए कठिन मुसीबतों, जिसका उदाहरण भारी पैमाने पर दूसरे पड़ोसी देशों की ओर भागने वाले तिब्बती शरणार्थी हैं, के प्रति गहरी चिंता प्रकट करते हुए; यह देखते हुए कि ये घटनाएं सं. राष्ट्र संघ के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र में निहित मूलभूत मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं तथा नागरिकों और देशों के आत्म निर्णय के नियम का सीधा उल्लंघन हैं तथा इनका

निंदनीय असर अंतर्राष्ट्रीय तनाव को बढ़ाने और देशों के बीच संबंधों को कड़वा करने वाला हुआ है,

1). एक बार फिर से अपना यह विश्वास पुष्ट करती है कि सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र और मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र के सिद्धांतों के प्रति आदर एक ऐसी शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है जो न्यायपूर्ण व्यवस्था पर आधारित हो। तथा

2). अपनी इस मांग को फिर से दोहराती है कि उन सभी कार्रवाइयों को रोका जाए जिनके फलस्वरूप तिब्बती जनता अपने उन मूलभूत मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं से वंचित होती है जिनमें आत्मनिर्णय का अधिकार भी शामिल है,

3). यह आशा व्यक्त करती है कि सदस्य देश ऐसे सभी संभव प्रयास करेंगे जो कि इस प्रस्ताव में निर्दिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं।

तीसरा प्रस्ताव संख्या 2079–20
1965 में बीसवें अधिवेशन में पारित प्रस्ताव

यह आम सभा :–

सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र और मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र में निर्दिष्ट मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं से संबंधित नियमों को ध्यान में रखते हुए;

तिब्बत के बारे में अपने 21 अक्तूबर, 1959 के प्रस्ताव सं. 1353–14 और 12 दिसंबर, 1961 के प्रस्ताव सं. 1723–16 में फिर से अपना विश्वास व्यक्त करते हुए;

तिब्बती जनता के मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लगातार किए जा रहे उल्लंघन और उनके विशिष्ट सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन को कुचले जाने, पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए,

1) तिब्बती जनता के मूल अधिकारों और स्वतंत्रता के उल्लंघन की भर्त्सना करती है,

2) फिर से अपना यह विश्वास पुष्ट करती है कि सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र और मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र के सिद्धांतों के प्रति आदर एक शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है जो कि न्यायपूर्ण व्यवस्था पर आधारित हो,

3) अपने इस विश्वास की घोषणा करती है कि तिब्बत में मानवाधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं के उल्लंघन तथा जनता के सांस्कृतिक धार्मिक जीवन मूल्यों को कुचले जाने से अंतर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ता है और देशों के बीच अपसी संबंधों में कटुता बढ़ती है,

4) दृढ़तापूर्वक फिर से अपनी यह मांग दोहराती है कि ऐसी उन सभी कार्रवाइयों को रोका जाए जिनके कारण तिब्बती जनता को उसके हमेशा से चले आ रहे मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं से वंचित किया जा रहा है।

——